

प्रारम्भिक अर्थशास्त्र

लेखक

श्री नारायण अग्रवाल एम० ए०

लेक्चरर, अर्थशास्त्र विभाग
प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग



बाल भारती

२६९ कर्नलगंज, प्रयाग

प्रकाशक की ओर से

प्रस्तुत पुस्तक हायर सेकण्डरी स्कूल के कला के विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है। यों तो इस विषय पर दो-तीन पुस्तकें बाजार में उपलब्ध हैं परन्तु इस पुस्तक की कुछ नवीन विशेषतायें हैं जो नीचे दी जाती हैं :—

(१) यह पुस्तक सन् १९४९-५० के परिवर्धित पाठ्यक्रम के अनुसार लिखी गई है। अतः, इस पुस्तक में पाँच छै ऐसे नये अध्याय हैं जो अन्य पुस्तकों में नहीं मिलते। संयुक्त-प्रान्त की सरकार ने गाँव-गाँव में ग्राम पंचायत खोलने का जो सस्व्हेनीय कार्य किया है उसके विभिन्न पहलुओं को 'ग्राम-पंचायत राज्य कानून' शीर्षक अध्याय में समझाया गया है। हमारा राष्ट्र कृषि के साथ-साथ औद्योगिक उन्नति भी करता जा रहा है। अतः, श्रमिकों की विभिन्न समस्याओं का महत्व भी बढ़ता जा रहा है। श्रमिकों की विभिन्न समस्याओं का विवेचन करने के लिये 'श्रमिकों के रहने के स्थान,' 'श्रमिकों की भलाई के कार्य' तथा 'मजदूर संघ' शीर्षक तीन अध्याय इस पुस्तक में दिये गये हैं। आजकल यह सभी समझने लगे हैं कि सहकारी आन्दोलन तभी सफल हो सकता है जब बहु-धन्धी सहकारी समितियाँ गाँव-गाँव में खुले। इसी कारण 'बहु-धन्धी सहकारी समिति' शीर्षक एक अध्याय भी पुस्तक में दिया गया है।

(२) यह पुस्तक देश के स्वतन्त्र हो जाने के परचातु लिखी गई है। अतः, इस पुस्तक को लिखते समय लेखक,

सरकार की गलतियाँ बता कर ही चुप नहीं बैठ गये। देश की विभिन्न आर्थिक समस्याओं पर विचार करते समय उन्होंने रचनात्मक सुझाव भी रखे हैं जिन पर सुगमता से चला जा सकता है। हमारी कांग्रेस सरकार जो काम कर रही है तथा वह जिस नीति का अनुसरण कर रही है उसको भी लेखक ने विस्तार से बताया है। इस समय सरकार की बहुत कुछ आलोचना सरकार द्वारा किये गये जनोपयोगी कार्यों की अनभिज्ञता के कारण भी होती है। लेखक ने इन कार्यों पर भरसक प्रकाश डाला है।

(३) पुस्तक में अनेक चित्र दिये गये हैं। इस विषय पर लिखी गई पुस्तकों में यह पहली पुस्तक है जिसको चित्रों से इतनी अच्छी तरह सजाया गया है। कृषि की उन्नति के लिये देश में जिन नई-नई मशीनों तथा औजारों का आविष्कार हुआ है उन सबके चित्र देकर लेखक ने इस पुस्तक की उपयोगिता कई गुनी बढ़ा दी है।

(४) लेखक ने इस बात का ध्यान रखा है कि यह पुस्तक उन विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है जिनको अर्थशास्त्र का पहले कुछ भी ज्ञान नहीं है। अतः, उन्होंने गूढ़ बातों को समझाने के लिये केवल सरल भाषा का ही सहारा नहीं लिया बल्कि दिन-प्रति-दिन की बातों से उदाहरण देकर उनको काफी स्पष्ट बना दिया है। इसी कारण पुस्तक अन्य पुस्तकों का अपेक्षा अधिक स्थूल है।

५. लेखक ने प्रत्येक अध्याय के अंत में सारांश भी दिया है जिसमें उस अध्याय में भेताई हुई सब महत्वपूर्ण बातों को सूक्ष्म में बता दिया गया है। पाठ दुहराते समय यह बड़ा हित-

कर सिद्ध होगा। अभ्यास के प्रश्न के साथ ही हाई-स्कूल की परीक्षा में अभी तक जितने प्रश्न आये हैं उनको भी दे दिया गया है। प्रत्येक प्रश्न का उत्तर विद्यार्थी को उस अध्याय में मिल जावेगा। इस पुस्तक को पढ़ने के बाद विद्यार्थी को इस बात का सन्तोष हो सकता है कि वह हाई-स्कूल में आये हुये सभी प्रश्नों का उत्तर भी दे सकता है।

हमें पूर्ण आशा है कि प्रस्तुत पुस्तक हाई-स्कूल के कला के विद्यार्थियों की बहुत बड़ी आवश्यकता को पूरा करेगी।

विषय-सूची

अध्याय		पृष्ठ
	भाग १—विषय-प्रवेश	
१—अर्थशास्त्र का विषय	३
२—शब्दों की परिभाषायें	१०
	भाग २—उत्पत्ति	
३—उत्पत्ति तथा उसके साधन	२१
४—भारतीय खेतों की पैदावार	४०
५—बरेलू उद्योग-धन्वे	६१
	भाग ३—उपभोग	
६—आवश्यकताएँ	८५
७—रहन-सहन का दर्जा	१००
८—पारिवारिक आय-व्यय	१०६
९—भोजन की मात्रा	१२६
	भाग ४—विनिमय	
१०—विनिमय	१४१
११—वस्तु बेचने के स्थान	१५२
	भाग ५—वितरण	
१२—वितरण	१६६
१३—लगान तथा मालगुजारी	१७४
१४—भारतवर्ष में बटाई प्रथा	१८२
१५—मजदूरी	१८८
१६—सूद	२०८

१७—लाभ	२१४
भाग ६—गावों की व्यवस्था			
१८—गाँवों की समस्या	२१६
१९—गाँवों की सफाई	२२३
२०—ग्रामीण शिक्षा	२३५
२१—मनोरंजन के साधन	२४७
२२—व्याक्तिगत स्वास्थ्य तथा उसके सिद्धांत	२५८
२३—गाय-बैलों की समस्या	२७५
२४—खेती की उन्नति के उपाय	२८६
२५—मुकद्दमाबाजी	३१७
२६—ग्रामीण ऋण	३२४
२७—गाँव तथा जिले का शासन	३३६
२८—ग्राम स्वराज्य	३४६
२९—पंचायत राज्य-कानून	३५८
भाग ७—मजदूरों की समस्यायें			
३०—मजदूर बस्तियाँ	३७७
३१—श्रमिकों की भलाई के कार्य	३८४
३२—मजदूर संघ	३९४
भाग ८—सहकारिता			
३३—सहकारिता	४०७
३४—भारतवर्ष में सहकारी आन्दोलन	४१४
३५—गैर ऋण ग्रामीण सहकारी समितियाँ	४२०
३६—प्रारम्भिक ग्रामीण सहकारी ऋण समितियाँ	४२७
३७—बहु-धंधी-सहकारी समितियाँ	४४६
३८—सहकारी केन्द्रीय समितियाँ	४५३

भाग १

विषय-प्रवेश

अध्याय पहला

अर्थशास्त्र का विषय

अर्थशास्त्र क्या है ? प्रत्येक जीवधारी को—चाहे वह मनुष्य हो, पशु या जन्तु—कुछ न कुछ आवश्यकताएँ होती हैं जिनकी पूर्ति करना उसके लिये अत्यन्त आवश्यक है। इन आवश्यकताओं में सबसे प्रथम तथा मुख्य आवश्यकता भोजन या पेट भरने की है। यह आवश्यकता सभी जीवधारियों में समान रूप से पाई जाती है तथा सभी इसका निवारण सबसे पहले करते हैं। परन्तु जहाँ कुछ जीवधारियों की आवश्यकताएँ पेट भरने तक ही सीमित हैं मनुष्य की आवश्यकताएँ बहुत बड़ी-चढ़ी हैं। उसको भोजन के अतिरिक्त, पहनने को कपड़े, तथा रहने के लिये हवादार मकान भी अतिवायं रूप से चाहिये। फिर भी उसकी आवश्यकताओं का अंत नहीं होता।

इन सब आवश्यकताओं की पूर्ति करना मनुष्य के लिये बहुत ही जरूरी है क्योंकि जब तक वह उनको पूरा नहीं कर लेता उसको संतुष्टि नहीं होती। परन्तु आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये यह आवश्यक है कि मनुष्य धन पैदा करे। यही कारण है कि मनुष्य दिन-रात एड़ी-चोटी का पसीना एक कर धन पैदा करने में लगा रहता है। किसान का जेठ की दुपहरी में जब कि साँय-साँयकर गर्म लू बहता रहता है खेत में काम करना, मजदूरों का धधकती हुई आग के सामने खड़े होकर काम करना, बलकों का फायलों में सिर गढ़ाये कर्म करना तथा दूकानदारों का दिन भर दूकान पर बैठे कार्य करने का यही एक मात्र

कारण है। धन कमाने के लिये मनुष्य द्वारा की गई क्रियाओं का अध्ययन अर्थशास्त्र में किया जाता है।

• मनुष्य की आवश्यकताओं को दो भागों में बाँटा जा सकता है--(१) वह जो धन से संबंधित है तथा (२) वह जिनका धन से कोई संबंध नहीं, जैसे माता का अपने बच्चे के लिये कष्ट सहना, एक देश प्रेमी को देश के लिए कार्य करना आदि। आवश्यकताओं के अनुसार मनुष्य की क्रियाएँ भी दो प्रकार की होती हैं—कुछ का तो धन से सीधा संबंध है तथा कुछ का नहीं। अर्थशास्त्र में केवल उन्हीं क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है जो धन की प्राप्ति के लिये की जाती हैं या जिनका धन से सीधा संबंध है।

अर्थशास्त्र एक सामाजिक शास्त्र है। अतएव इसमें केवल मनुष्यों की ही धन-संबंधी क्रियाओं का अध्ययन होता है। जानवर, पशु-पक्षी या अन्य किसी जीवधारी की क्रिया से अर्थशास्त्र को कोई मतलब नहीं। मनुष्यों में भी केवल उन्हीं मनुष्यों की क्रियाओं का ज्ञान किया जाता है जो कि समाज में रहते हैं। समाज को छोड़कर चले जानेवाले व्यक्ति—जैसे साधु या सन्यासी, अर्थशास्त्र के क्षेत्र से परे हैं।

अर्थशास्त्र की परिभाषा—यह सब जान लेने के पश्चात् हम यह कह सकें हैं कि अर्थशास्त्र एक सामाजिक विद्या है जिसमें समाज में रहनेवाले स्त्री-पुरुषों की धन-सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। यही अर्थशास्त्र की परिभाषा है।

अर्थशास्त्र में धन का स्थान—यहाँ यह स्पष्ट कर देना

आवश्यक है कि यद्यपि इस अर्थशास्त्र में मनुष्य की धन-सम्बन्धी क्रियाओं का अध्ययन करने हैं, इसके यह मानो नहीं कि हमारा ध्येय एक मात्र धन का ही ज्ञान है। अर्थशास्त्र मनुष्य की धन सम्बन्धी क्रियाओं से सम्बन्ध रखता है, धन से नहीं। इस तरह इसमें मनुष्य और उसकी क्रियाओं का अध्ययन अधिक महत्वपूर्ण है। धन का तो इसलिये अध्ययन किया जाता है क्योंकि उसके द्वारा मनुष्य अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। धन तो केवल एक साधन है, उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं। इसलिये यह समझना कि अर्थशास्त्र धन का शास्त्र है सर्वथा गलत है।

अर्थशास्त्र का विषय-विभाग—अर्थशास्त्र द्वारा अध्ययन की जानेवाली मनुष्य की क्रियाएँ कई प्रकार की होती हैं। कुछ तो धन के उपार्जन या पैदा करने के लिये की जाती हैं, तो कुछ धन के उपभोग के लिये। यदि कुछ धन के विनिमय से सम्बन्ध रखती हैं तो कुछ उसके वितरण से। इसलिये अध्ययन की सुगमता के कारण अर्थशास्त्र के विषय को चार भागों में बाँट दिया गया है। इसके यह माने नहीं कि इन विभागों में आपस में कोई सम्बन्ध नहीं या यह एक दूसरे से बिल्कुल अलग हैं। इसके विपरीत इनमें घना सम्बन्ध है तथा यह एक दूसरे पर बहुत हद तक निर्भर हैं। यह विषय-विभाजन तो केवल पढ़ाई के सुगमता के कारण ही किया जाता है।

अर्थशास्त्र के चार प्रमुख विभाग हैं—(१) उत्पादन (Production), (२) उपभोग (Consumption), (३) विनिमय (Exchange), और (४) वितरण (Distribution)। इन्हीं भागों में अर्थशास्त्र को पूरी पढ़ाई होती है।

उत्पादन—अर्थशास्त्र में उत्पादन के अर्थ हैं किसी वस्तु को

अधिक उपयोगी बनाना। इसलिये इस विभाग में मनुष्य की उन सम्पूर्ण क्रियाओं को जो वह वस्तुओं को अधिक उपयोगी बनाने के लिये करता है, अध्ययन किया जाता है। उत्पत्ति में भूमि (Land), श्रम (Labour), पूँजी (Capital), प्रबन्ध (Organisation), तथा साहस (Enterprise), इन पाँचों शक्तियों की आवश्यकता पड़ती है। बिना इन पाँचों शक्तियों के आपस में सहयोग के उत्पादन हो ही नहीं सकता। इसलिये उत्पादन में इन पाँचों शक्तियों के विषय में ज्ञान प्राप्त किया जाता है।

उपभोग—मनुष्य धन उपभोग के ही लिये कमाते हैं। उपभोग से ही उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति होती है तथा उनको सन्तोष मिलता है। परन्तु मनुष्य की आवश्यकताएँ अनेक हैं और उनकी पूर्ति करने के साधन कम। इसलिये वह साधनों का व्यय इस तरह करते हैं कि उनको सबसे अधिक सन्तोष मिले। इस विभाग के अन्दर उन सब नियमों का अध्ययन किया जाता है, जिनके अनुसरण से मनुष्य को अधिक से अधिक उपयोगिता मिल सकती है। साथ में यह भी विचार किया जाता है कि मनुष्य जो तरह-तरह की वस्तुओं का उपभोग करते हैं उसका प्रभाव देश पर क्या पड़ता है।

विनिमय—आजकल आवश्यकता की प्रत्येक वस्तु मनुष्य स्वयं ही पैदा नहीं करते। वह केवल एक ही वस्तु पैदा करते हैं तथा आवश्यकता की अन्य वस्तुओं के लिये दूसरों पर निर्भर रहते हैं। उन वस्तुओं को वह विनिमय द्वारा लेते हैं। इसलिये विनिमय भी अर्थशास्त्र का एक विभाग है। इस विभाग में विनिमय के सिद्धान्त, अदला-बदली तथा उससे लाभ, विनिमय के साधनों आदि का अध्ययन किया जाता है।

वितरण—क्योंकि आधुनिक समय में उत्पादन सामूहिक रूप से होता है इसलिये जो धन उत्पादित वस्तु के बेचने पर मिलता है वह उन सब लोगों में बाँटा जाता है जिन्होंने उत्पादन कार्य में भाग लिया है। इसीलिये वितरण भी अर्थशास्त्र का एक विभाग है। इसमें उत्पात्ति के साधनों के पुरस्कार तथा उन नियमों को जिनके द्वारा वह निश्चित किये जाते हैं अध्ययन किया जाता है।

इसै तरह उत्पादन, उपभोग, विनिमय तथा वितरण—यह चार विभाग मिलकर अर्थशास्त्र के सम्पूर्ण क्षेत्र का अध्ययन करते हैं।

अर्थशास्त्र के अध्ययन से लाभ—अर्थशास्त्र की परिभाषा तथा उसका क्षेत्र जान लेने के पश्चात् आप यह जानना अवश्य चाहेंगे कि इस शास्त्र के पढ़ने से क्या लाभ है तथा इसे क्यों पढ़ा जानना चाहिये ? इसके अध्ययन में मनुष्य अपने धन को इस तरह व्यय कर सकता है कि उसको अधिक से अधिक उपयोगिता मिले। वह सम-सीमान्त-उपयोगिता-नियम का अनुसरण कर अपने आय-व्यय के व्यौरों को ठीक कर सकता है। यही नहीं वह यह समझ जावेगा कि उसके देश में क्या-क्या प्राकृतिक साधन हैं, उनका किस प्रकार उपयोग हो रहा है तथा इससे देश को पूरा-पूरा लाभ मिल रहा है या नहीं। वह यह भी जान जायेगा कि उत्पादन कम से कम मूल्य पर किस प्रकार किया जाय तथा अपनी वस्तु को किस मूल्य पर बेचा जाय। विभिन्न उत्पात्ति के साधनों के पुरस्कार के बारे में भी उसका ज्ञान पूर्ण हो जावेगा और वह समझ सकेगा कि उसको वेतन उचित मिल रहा है या नहीं। यह सब समझ लेने के पश्चात् वह देश में होने वाली विभिन्न आर्थिक समस्याओं—जैसे अनाज या अन्न की

कमी, वस्तुओं की कमी, कम उत्पादन, मुद्रा-प्रसार आदि—पर भी विचार कर सकता है।

आजकल तो अर्थशास्त्र का महत्व काफी बढ़ गया है तथा कोई भी मनुष्य इस शास्त्र का अध्ययन किये बिना ज्ञानी नहीं कहा जा सकता। राजनीति तो अधिकतर आर्थिक समस्याओं पर ही निर्भर रहने लगी है। इसलिये इस विषय का अध्ययन प्रत्येक पढ़े-लिखे मनुष्य के लिये आवश्यक है।

सारांश

अर्थशास्त्र एक सामाजिक शास्त्र है जिसमें समाज में रहनेवाले स्त्री-पुरुषों की धन सम्बन्धा क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है।

यद्यपि इसमें धन-सम्बन्धा क्रियाओं का अध्ययन किया जाता है परन्तु इसमें धन का मोह नहीं मिखाया जाता। इसमें मनुष्य का स्थान धन से अधिक महत्वपूर्ण है। इसमें हम मनुष्य की क्रियाओं का अध्ययन करते हैं। परन्तु क्योंकि वह क्रियाएँ धन से संबंध रखती हैं इसलिये धन का भी अध्ययन किया जाता है।

अध्ययन के लिये अर्थशास्त्र को चार विभागों में बाँट दिया है। वह विभाग हैं—(१) उत्पादन, (२) उपयोग (३) विनिमय तथा (४) वितरण। इन विभागों में आपस में बड़ा घना संबंध है और एक दूसरे पर, काफी दूरी तक आश्रित तथा अवलम्बित हैं।

अर्थशास्त्र के अध्ययन से मनुष्य के मस्तिष्क का विकास होता है। वह अपने धन को इस तरह व्यय कर सकता है कि उसे अधिक से अधिक उपयोगिता मिले। वह यह समझ सकता है कि देश के प्रकृतिक साधनों का उचित उपयोग हो रहा है या नहीं। वह यह भी समझ सकता है कि उसे वेतन ठीक मिल रहा है। आजकल तो राजनीति आर्थिक समस्याओं पर ही निर्भर है।

पश्न

१. अर्थशास्त्र क्या है ? इसकी एक पारभाषा दीजिये !
२. अर्थशास्त्र को किन-किन विभागों में बाँटा जाता है लिखिये । क्या इन विभागों में आपस में कोई संबंध है ?
३. अर्थशास्त्र के विभिन्न विभागों में किन-किन विषयों का अध्ययन किया जाता है ? सक्षेप में लिखिये ।
४. क्या अर्थशास्त्र में केवल धन का ही अध्ययन किया जाता है ? यदि नहीं, तो लिखिये कि यह शास्त्र किस विषय से संबंध रखता है ।
५. अर्थशास्त्र के पढ़ने से क्या-क्या लाभ हैं—लिखिये ।
६. क्या अर्थशास्त्र तथा ग्रामाण अर्थशास्त्र की परिभाषा में कुछ भेद है ? समझाकर लिखिये ।

हाई-स्कूल-बोर्ड के पश्न

१. अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये । इसके अध्ययन से क्या लाभ हैं ? (१९४४)
२. अर्थशास्त्र के विषय-विभाग का वर्णन कीजिये । (१९४५)
३. अर्थशास्त्र क्या है ? आपने इस विषय की पढ़ाई क्यों ली है ? (१९४६)
४. अर्थशास्त्र की परिभाषा दीजिये । आजकल यह पढ़ाई का एक आवश्यक विषय क्यों हो गया है ? (१९४७)
५. अर्थशास्त्र के कितने भाग हैं ? उन प्रत्येक में क्या-क्या पढ़ा जाता है ? खेल एक प्रकार की उपभोग की क्रिया है या उत्पादन की ? (१९४८)

अध्याय २

शब्दों की परिभाषायें

धन या सम्पत्ति (Wealth)

अर्थशास्त्र की परिभाषा बताने समय हमने वन शब्द का अनेक बार प्रयोग किया है। अतएव यह आवश्यक है कि इस शब्द का ठीक-ठीक अर्थ समझा दिया जाय।

दिन प्रतिदिन की बोलचाल में रुपये-पैसे को ही धन कहा जाता है। केवल अमीर लोग ही धनवान कहे जाते हैं। यदि किसी के पास बड़ा सा मकान, कई नौकर चाकर, घर की मोटर, बगी आदि हो तथा वह अच्छे-अच्छे कपड़े पहनता हो और काफी रुपया व्यय करता हो तो सब लोग यही कहेंगे कि यह मनुष्य धनवान है। एक गरीब नौकर, जिसका वेतन २० रु० या ३० रु० माहवार हो, उसके बारे में कोई भी यह नहीं कहेगा कि उसके पास धन है।

लेकिन अर्थशास्त्र में धन शब्द का एक भिन्न अर्थ में प्रयोग किया जाता है। कोई भी वस्तु जो (१) उपयोगी है; (२) विनिमय साध्य है, तथा (३) दुर्लभ है, जिसके कारण बाजार में उसका मूल्य है, धन कहलाती है। जिस किसी वस्तु में यह तीनों गुण पाये जाते हैं वह धन कहलाती है। उदाहरण के लिए किताब, कलम, पेंसिल, कागज, रोटी, दाल, अर्बुल, फल, दवाइयाँ, मोटर, साइकिल, जूता, हैट, टोपी, झोता, मैज, कुर्सी, रुपया, पैसा, साबुन, तेल, कंगा, आदि सभी वस्तुओं में ऊपर दिये गये तीनों गुण हैं और इसलिये वह धन हैं। इसके

विपरीत सूर्य का प्रकाश, हवा, चाँदनी आदि धन नहीं क्योंकि न तो यह विनिमय-साध्य हैं और न दुर्लभ ही ।

धन के ठीक-ठीक अर्थ समझने के लिये यह आवश्यक है कि इसके जो तीन गुण हैं उनका अर्थ भी समझ लिया जाय । उनका अर्थ नीचे बताया जाता है :—

उपयोगिता—उपयोगिता के अर्थ हैं 'इच्छा पूरी करने की शक्ति' यदि किसी मनुष्य को एक वस्तु पाने की इच्छा है तो जैसे ही वह उस वस्तु को पा लेता है उसकी इच्छा पूरी हो जाती है और हम कहते हैं कि उस मनुष्य की इच्छा पूरी हो गई । दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि वह वस्तु उपयोगी है क्योंकि उसमें इच्छा पूरी करने की शक्ति है ।

यदि कोई वस्तु उपयोगी न हो तो उसे कोई भी मनुष्य पाने की इच्छा भी नहीं करेगा । वस्तुओं की माँग इसीलिये होती है क्योंकि वह उपयोगी होती हैं ।

विनिमयसाध्यता—विनिमयसाध्यता के मानी है एक मनुष्य के अधिकार से दूसरे मनुष्य के अधिकार में जाने की क्षमता जिससे कि उस वस्तु का स्वामित्व बदल सके । यदि मनुष्य किसी वस्तु को अपनी नहीं बना सकता, तो वह उसके ऊपर कुछ भी रुपया व्यय न करना चाहेगा । उदाहरण के लिये मान लीजिये कि आप एक किताब खरीदना चाहते हैं । यदि आप उस किताब को अपने पास नहीं रख सकते और अपनी सुविधा के अनुसार नहीं पढ़ सकते तो स्पष्ट है आप उसके लिये कुछ भी व्यय नहीं करेंगे । इसलिये ऐसी वस्तुएँ जो विनिमय-साध्य नहीं हैं धन नहीं कहलाई जा सकतीं । सूर्य की रोशनी को

कोई भी अधिकार में नहीं कर सकता । इसलिये न तो कोई उसको पाने के लिये रुपया ही व्यय करता है और न वह धन हो कहलाती है ।

दुर्लभता—एक वस्तु तभी दुर्लभ कहलावेगी जब कि वह आवश्यकता से कम मात्रा में उपलब्ध हो या यों कहिये कि जो बिना मेहनत किये न मिल सके । जैसे कि तवा बिना मेहनत किये जितनी मात्रा में चाहिये ले सकते हैं । उसके उत्पादन-में न तो कुछ श्रम ही करना पड़ता है और न कुछ व्यय ही । अतएव हवा दुर्लभ नहीं है और इसलिये धन भी नहीं । परन्तु, कागज, कलम, दावात, जूता, टोपी आदि सभी वस्तुएँ बिना श्रम किये या व्यय किये नहीं मिल सकतीं । इसीलिये यह सब वस्तुएँ दुर्लभ हैं और अर्थशास्त्र में धन कहलाती हैं ।

जब तक किसी वस्तु में ऊपर दिये गये तीनों गुण नहीं मिलते वह धन नहीं कहला सकती । उदाहरण के लिये, किसी गवैये के सुरीले गले को ले लीजिये । यह उपयोगी है तथा दुर्लभ भी । परन्तु क्योंकि यह दूसरे को दिया नहीं जा सकता इसलिये यह धन नहीं ।

धन, सुख तथा संतोष

धन से मनुष्य अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर सकता है और आवश्यकताओं को दूर करने से उसे सुख मिलता है । अतएव धन के उपभोग से मनुष्य को सुख की प्राप्ति होती है । पाश्चात्य सभ्यता के माननेवाले सभी विद्वानों का यह मत रहा है कि मनुष्यों को अधिक से अधिक मात्रा में धन संचय करना चाहिये जिससे वे अपनी सभी इच्छाओं को पूर्ण कर सकें । ऐसा करने से वे बहुत सुखी हो सकेंगे । इसी विचारधारा के कारण सभी विदेशी धन के संचय के लिये

रागल हो रहे हैं। सब कुछ भूलकर उन्होंने जीवन का एक मात्र उद्देश्य धन पैदा करना ही बना लिया है जिसके कारण इस संसार में इतनी बुराइयाँ पैदा हो गई हैं।

• भारतवर्ष का हमेशा से यही उद्देश्य रहा है और यहाँ के ऋषी-मुनियों ने यही वेद-वाणी दी है कि मनुष्य को सुख के पीछे न पड़कर संतोष का ध्यान रखना चाहिये। धन से सुख मिल सकता है पर धन की इच्छा बढ़ती जाती है और धन की भूख मनुष्य को सन्तुष्ट नहीं होने देती। वह पागल हिरण की भाँति धन-रूपी मृग-तृष्णा के पीछे भागता फिरता है और अधिक दुखी हो जाता है। हमारे पूज्य वापूजी ने भी देश-वासियों को 'सादा जीवन तथा उच्च विचार' का मार्ग बताया था। यदि हम संतोष पाना चाहते हैं तो यह आवश्यक है कि हम अपनी इच्छाओं को बढ़ने न दें और सुख के पीछे न पड़ें। हमको इस संसार का नहीं परलोक का ध्यान रखना चाहिये, इंद्रियों का सुख नहीं, आत्मा का संतोष खोजना चाहिये। तभी हम पूज्य वापू की पुण्य-भूमि के सपुत्र कहलाने के अधिकारी हो सकते हैं।

उपयोगिता (Utility)

अर्थशास्त्र में उपयोगिता के अर्थ हैं 'आवश्यकता को सन्तुष्ट करने की शक्ति'। कोई भी वस्तु यदि किसी समय मनुष्य की किसी भी प्रकार की आवश्यकता को सन्तुष्ट करती है तो वह वस्तु उपयोगी कही जाती है या दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि इस वस्तु के उपभोग से मनुष्य को उपयोगिता मिलती है। आपको किसी वस्तु की माँग इसलिये होती है क्योंकि वह वस्तु आपकी किसी आवश्यकता की पूर्ति कर सकती है। यदि आपको किसी वस्तु से उपयोगिता न मिले तो

स्पष्ट है आप उस वस्तु को लेने में रुपया व्यय नहीं करना चाहेंगे। संसार में ऐसी कोई भी वस्तु नहीं जो किसी न किसी के लिये उपयोगी न हो। चाहे कोई वस्तु स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक हो परन्तु वह फिर भी उपयोगी हो सकती है। उदाहरण के लिये, शराब या सिगरेट को ले लीजिये। ये वस्तुएँ स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक हैं। परन्तु फिर भी इनके उपभोग से उपभोक्ता को उपयोगिता मिलती है क्योंकि यह सिगरेट या शराब की आवश्यकताओं को पूरा करती हैं। अर्थशास्त्र में यह नहीं देखा जाता कि वस्तु का परिणाम स्वास्थ्य पर क्या पड़ेगा। देखा केवल इतना जाता है कि इस वस्तु के उपभोग से उपभोक्ता की आवश्यकता पूरी होती है या नहीं। यदि होती है तो वह वस्तु उपयोगी है चाहे उसका उपभोग अन्य किसी दृष्टिकोण से कैसा भी क्यों न हो।

जब कि संसार में ऐसा कोई भी वस्तु नहीं जो किसी न किसी को उपयोगी न हो, फिर भी प्रत्येक वस्तु हर एक के लिये उपयोगी नहीं हो सकती। एक किसान के लिये अग्नेजी भापा में राजनीति पर लिखी हुई पुस्तक संभव है उपयोगी न हो। इसी तरह नमक-भिर्च बेचनेवाले महाजन को हल और खुरपी का उपयोगिता न हो। इसलिये किस मनुष्य को क्या वस्तु उपयोगी है यह उसके स्वयं के दृष्टिकोण तथा आवश्यकताओं पर निर्भर है। यही कारण है कि विभिन्न मनुष्य एक ही वस्तु के उपभोग से भिन्न-भिन्न उपयोगिता पाते हैं। यदि किसी मनुष्य की आवश्यकता बहुत तीव्र है तो उसको वस्तु के उपभोग से बहुत अधिक उपयोगिता मिलेगी।

सीमान्त (Marginal) तथा कुल (Total) उपयोगिता

उपयोगिता दो प्रकार की होती है—सीमान्त तथा कुल।

किसी एक समय में एक वस्तु की सम्पूर्ण इकाइयों के उपभोग से किसी मनुष्य को जो उपयोगिता मिलती है, वह कुल उपयोगिता कहलाती है। उदाहरण के लिये, मान लीजिये कि एक मनुष्य चार रोटी खाता है। पहली रोटी से उसे २०, दूसरी से १५, तीसरी से १० तथा चौथी से ४ उपयोगिता मिलती है। तो उसे कुल उपयोगिता $(२० + १५ + १० + ४) = ४९$ मिलेगी।

परन्तु उपभोग की क्रिया में जो उपयोगिता अन्तिम इकाई से मिलती है वह सीमान्त उपयोगिता कहलाती है जैसे कि ऊपर के उदाहरण में चौथी रोटी के उपभोग से जो ४ उपयोगिता मिली वह सीमान्त उपयोगिता कहलावेगी।

यहाँ यह बता देना अनुचित न होगा कि ज्यों-ज्यों कोई व्यक्ति किसी वस्तु का उपभोग करता जाता है उस वस्तु की प्राप्त इकाई से मिलनेवाली उपयोगिता क्रमशः कम होती जाती है। यह नियम सर्वत्र लागू होता है तथा इसे क्रमागत-उपयोगिता-हास नियम कहते हैं।

मूल्य (Value)

एक वस्तु के बदले में जो दूसरी वस्तु मिले वही उसका मूल्य है। उदाहरण के लिये, मान लीजिये कि आप बाजार जाते हैं और गेहूँ बेचकर उसके बदले में चना लेना चाहते हैं। आपको १० सेर गेहूँ के बदले में २० सेर चने मिलने हैं। तो हम कह सकते हैं कि गेहूँ का मूल्य चने से दूना है या १ सेर गेहूँ का मूल्य २ सेर चना है। एक वस्तु के बदले में अन्य वस्तुएँ लाने की शक्ति को ही मूल्य कहते हैं।

मूल्य केवल उन्हीं वस्तुओं का हो सकता है जो विनिमय-साध्य हैं यानि जो धन हैं। जो वस्तुएँ धन नहीं हैं जैसे हवा, सूर्य

क अर्थशास्त्र

की रोशनी आदि। उनके बदले में कोई कुछ भी देने को तैयार नहीं होगा। इसलिए उनका कुछ भी मूल्य नहीं है।

कीमत (Price)

पुराने समय में रुपये-पैसे का प्रयोग नहीं होता था। आवश्यकता के समय मनुष्य एक वस्तु को दूसरी वस्तु से अदला-बदलो कर लेते थे। परन्तु इस अदला-बदलो प्रथा में अनेकों कठनाइयाँ थीं इसलिए इसके बदले रुपये-पैसे का प्रयोग आरम्भ हो गया। रुपये-पैसों का चलान आरम्भ होने ही वस्तुओं के दाम इन्हीं में निर्धारित होने लगे और प्रत्येक वस्तु के बदले रुपये ही दिये जाने लगे। जब किसी वस्तु का मूल्य रुपयों में बताया जाय तो वह कीमत कहलाता है। जैसे यह कहा जा सकता है कि गेहूँ की कीमत रुपये का दो सेर तथा चने की चार सेर है।

आय (Income)

प्रत्येक मनुष्य को जो आमदनी होती है वह उसकी आय कहलाती है। आय दैनिक, मप्ताहिक, मासिक, छमाइ या वार्षिक हो सकती है। यह वेतन द्वारा, दूकानदारी या रोजगार द्वारा, मकान के किराया द्वारा या ब्याज द्वारा मिल सकती है।

आय पाँच प्रकार से मिल सकती है: (१) किराये द्वारा जिसे लगान कहते हैं तथा जो जमींदारों को मिलती है; (२) श्रम द्वारा जिसे मजदूरी कहते हैं तथा जो मजदूरों को मिलती है; (३) सूद द्वारा जिसे ब्याज कहते हैं तथा जो पूँजीपतियों को मिलती है; (४) मानसिक श्रम द्वारा जिसे वेतन कहते हैं तथा जो अवन्धकों को मिलती है; और (५) रोजगार द्वारा जिसे लाभ कहते हैं तथा जो साहसियों को मिलती है।

सारांश

कोई भी पदार्थ जो विनिमयसाध्य, उपयोगी तथा दुर्लभ हो धन कहलाते हैं। किसी भी वस्तु को धन कहलाने के लिये इन तीनों गुणों का होना अनिवार्य है।

हमको सुख नहीं संतोष की प्राप्ति की चेष्टा करना चाहिये।

एक वस्तु उपयोगी तभी कहलावेगी जब कि उसमें आवश्यकता को संतुष्ट करने की शक्ति हो। 'आवश्यकता को पूरी करने की शक्ति' यही उपयोगिता की परिभाषा है।

उपयोगिता दो प्रकार की होती है—(१) सोमान्त उपयोगिता तथा (२) कुल उपयोगिता।

एक वस्तु के बदले में जिनकी वस्तु मिल सके उनसे उन वस्तु का मूल्य मालूम किया जाता है।

जब मूल्य को देश की प्रचलित मुद्रा में बताया जाय तो वह कीमत कहलाती है।

आय मनुष्य को होनेवाली आमदनी को कहते हैं। यह पाँच तरीकों से पैदा हो सकती है—लगान द्वारा, ब्याज द्वारा, मजदूरी द्वारा, धेनू द्वारा तथा लाभ द्वारा।

प्रश्न

१. आप धन के क्या अर्थ समझते हैं ? उसकी परिभाषा दीजिए।
२. किसी वस्तु को धन कहलाने के लिये किन-किन गुणों का होना आवश्यक है ? समझाकर, लिखिये। क्या गरीब मनुष्य के पास भी धन हो सकता है ?

३. अर्थशास्त्र में उपयोगिता के क्या अर्थ हैं ? क्या ऐसा कोई पदार्थ है जो उपयोगी न हो ?
४. मूल्य तथा कीमत में क्या भेद है ? समझाइये ।
५. निम्नलिखित वस्तुओं में से कौन-कौन धन कहलाई जा सकती हैं और क्यों ? :— (१) सूर्य की रोशनी, (२) चन्द्रमा की चाँदनी, (३) पुष्प की खुशबू, (४) गवैये का गला, (५) मास्टर साहब की पढ़ाई, (६) इम्तहान, (७) सड़क, (८) देश के खनिज पदार्थ, (९) गङ्गा नदी, (१०) हिमालय पर्वत ।

हाई-स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. धन क्या है ? भारतीय किसान की गरीबी के कारणों पर प्रकाश डालिये तथा उनको दूर करने के उपाय बताइये । (१९४३),
२. धन तथा उपयोगिता पर सूक्ष्म टिप्पणी लिखिये ।

भाग २

उत्पत्ति

[अध्याय १. उत्पत्ति के साधन । २. भारतीय खेतों का
पैदावार । ३. घरेलू उद्योग-बन्धे]

अध्याय तीसरा उत्पत्ति तथा उसके साधन

मनुष्य की अनेकों आवश्यकताएँ हैं जिनकी पूर्ति के लिये वह निरन्तर प्रयत्नशील रहता है। आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ही वह धन कमाता है तथा धन कमाने के लिये वह काम करता है। कोई खेत में हल चलाता है तो कोई कुएँ पर पैन चलाता है। कोई भट्टी के सामने लोहा पीट-पीटकर चाकू, फडुआ, खुरपी आदि बनाता है तो कोई हलवाई बनकर बढ़िया-बढ़िया मिठाई बनाता है। कोई स्कूल में लड़कों को पढ़ाता है तो कोई दफ्तर में कुर्सी पर बैठे कलम घिसता है। कोई खानों में ज़मोन के अन्दर से लोहा या कोयला ढो-ढोकर ऊपर इकट्ठा करता है तो कोई मिलों में करघों पर कपड़ा बुनता है। कोई वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान ले जाता है तो कोई उन्हें बेचने के लिये दूकान रखता है। कहने का मतलब यह है कि जिधर देखिये उधर ही मनुष्य धनोपार्जन के लिये विविध कार्यों में लगे हुए दिखाई देते हैं। इस अध्याय में मनुष्य के धन-पैदा करने से संबंधित कार्यों का अध्ययन किया जावेगा।

उत्पत्ति के अर्थ—उत्पत्ति के अर्थ अर्थशास्त्र में 'उपयोगिता बढ़ाने' से है। यदि किसी वस्तु को कुछ मनुष्य पहले से अधिक उपयोगी बना दें तो वह, अर्थशास्त्र के अनुसार, उत्पादन कार्य करते हैं। जैसे यदि बढ़ई लकड़ी के तख्ते को छील-छालकर उसमें से मज-कुर्सी बना दे तो वह, ठीक उसी तरह, उत्पादन है जिस

तरह कि एक मिल मालिक जो अपनी मिल में कपड़ा बनवाया करता है। एक मनुष्य जो किसी वस्तु को एक जगह से (जहाँ पर उसकी माँग कम है) दूसरी जगह ले जाता है (जहाँ उसकी माँग अधिक है) तो वह भी उत्पादन कार्य कर रहा है जिस तरह कि वह व्यक्ति जो एक वस्तु को कुछ समय तक रखकर बाद में (जब कि उस वस्तु का मूल्य बाजार में बढ़ जाता है) निकालता है क्योंकि यह दोनों प्रकार के कार्य करनेवाले व्यक्ति ही वस्तु को अधिक उपयोगी बना देते हैं। दूकानदार भी अर्थशास्त्र में उतना ही महत्वपूर्ण उत्पादक है जितना कि स्कूल में पढ़ानेवाला अध्यापक, या दफ्तर में काम करनेवाला क्लर्क या खेत अन्न पैदा करनेवाला किसान। इस तरह चाहे वस्तुओं का रूप बदलकर, चाहे उनका स्थान परिवर्तन कर, चाहे उनको कुछ समय तक रखकर और चाहे उनको खरीद-बेचकर किसी भी प्रकार यदि वस्तु की उपयोगिता बढ़ा दी जाय तो वह उत्पादन-कार्य कहलाता है।

उपयोगिता चार उपायों से बढ़ सकती है। वह उपाय निम्नलिखित हैं :—

(१) रूप बदलकर—यानी एक वस्तु से दूसरी वस्तु बनाना। उदाहरण के लिये लोहा-मीसी का काम ले लीजिये। बड़ई लकड़ी का तथा लुहार लोहे का रूप बदलकर दूसरी वस्तु बना लेते हैं।

(२) समय बदलकर—यानी वस्तुओं को कुछ समय के लिये रखकर उनकी उस समय पर निकालकर बेचना जब कि उनकी माँग अधिक हो। उदाहरण के लिये महुँले लीजिये।

फसल के समय गेहूँ का मूल्य कम होता है। पर जाड़ों में उनका मूल्य बढ़ जाता है। यदि गेहूँ को गर्मी के समय रखकर जाड़ों में बेचा जाय तो यह एक उत्पादन-कार्य होगा।

(३) स्थान बदलकर—यानी वस्तु को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाकर। उदाहरण के लिये जूट को ले लीजिये। यदि जूट को बंगाल से ले जाकर किसी दूसरे प्रान्त में बेचा जाय तो यह उत्पादन कार्य होगा क्योंकि दूसरे प्रान्त में उसका मूल्य अधिक होगा।

(४) अधिकार बदलकर या क्रय-विक्रय—यदि दूकानदार कोई वस्तु बेचता है तो खरीददार उस वस्तु से अधिक उपयोगिता पता है।

उत्पत्ति के साधन

ऊपर दिये गये चाहे जिस उपाय का सहारा लेकर उत्पादन किया जाय यह मानना पड़ेगा कि इन परिवर्तनों को करने के लिये शक्ति की आवश्यकता पड़ती है। यह शक्ति पाँच साधनों में निहित रहती है। वे साधन हैं: (१) भूमि (Land); (२) श्रम (Labour); (३) पूँजी (Capital); (४) प्रबन्ध (Organization) तथा (५) साहस (Organization)। इन्हीं पाँचों को उत्पत्तिके साधन (Factors

*कुछ विद्वानों का मत है कि उत्पत्ति के साधन केवल तीन हैं: (१) भूमि, (२) श्रम तथा (३) पूँजी। व्यवस्था तथा जोखिम को वह विशेष प्रकार का श्रम मानते हैं। कुछ विद्वान पाँच की जगह चार ही साधन मानते हैं तथा वह साहस और जोखिम को दो भिन्न साधन नहीं मानते। परन्तु यह दोनों ही विचार अब पुराने पड़ गये हैं और आधुनिक काल में ऊपर दिये गये पाँच साधन ही माने जाते हैं।

of Production) कहा जाता है। बिना इन साधनों के सह-योग के उत्पादन हो ही नहीं सकता। यहाँ यह बता देना अनुचित न होगा कि यह आवश्यक नहीं कि यह सब उत्पादन के साधन एक ही व्यक्ति के पास हों। ये साधन एक व्यक्ति के पास भी हो सकते हैं तथा अनेकों के पास भी। उत्पत्ति के साधन तथा उनके अधिकार दो भिन्न-भिन्न बातें हैं।

उत्पत्ति के साधनों के आपस में बिना सहयोग के उत्पादन हो ही नहीं सकता। आप उत्पादन का कोई भी उदाहरण ले लीजिये, आप यह स्पष्ट देखेंगे कि उत्पादक ने पाँचों साधनों का प्रयोग किया है। किसान जो खेती करता है वह भी सभी उत्पादन के साधनों को व्यवहार में लाता है। सबसे पहले तो वह भूमि या खेत को जोतता है। जोतने में वह श्रम लगाता है। खेत जोतने के बाद वह बीज डालता है। खेतों के लिये फावड़ा, खुरपी, हल आदि औजारों की भी आवश्यकता पड़ती है। यह सब उसकी पूँजी है। खेती में उसे यह भी देखना पड़ता है कि खेत को किस समय निराया जाय, उसमें किस समय सिंचाई की जाय, किस समय खेत काटा जाय तथा उपज को कहाँ बेचा जाय। इन सब बातों की उसे व्यवस्था और प्रबन्ध करना पड़ता है। फिर यदि खेती से उसे लाभ होता है तो उसका वह मालिक है; और यदि खेती चोपट हो जाय और उसे नुकसान सहना पड़े तो वह नुकसान भी उसे ही भरना पड़ता है। इस तरह नुकसान का जोखिम उसे ही उठाना पड़ता है और खेती करने का साहस वही करता है। इस तरह एक किसान खेती में भी भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध तथा जोखिम—इन पाँचों उत्पत्ति के साधनों का प्रयोग करता है।

यही बात एक हलवाई के लिये भी लूम्पा होती है। उसे भिट्टी बनाने तथा मिठाई बनाने के लिये भूमि की आवश्यकता पड़ती है। मिठाई बनाने में उसे श्रमीं करनी पड़ती है। मिठाई बनाने के लिये उसे कढ़ाई, कुरछुली, परीता आदि पूंजी की आवश्यकता पड़ती है। वहीं क्या मिठाई तैयारी करे, उसमें कितनी चीनी, कितना खोया तथा कितना पानी डाले यह उसे सोचना पड़ता है। वह किस जगह मिठाई बेचे और किस मूल्य पर बेचे इन बातों का प्रबन्ध उसे स्वयं ही करना पड़ता है। फिर मिठाई बेचने से उसे लाभ होगा या नहीं इसका जोखिम होते हुए भी वह मिठाई बनाने का साहस करता है। इस तरह हम देखते हैं कि किसान की तरह हलवाई भी उत्पत्ति के पाँचों साधनों को मिठाई बनाते समय काम में लाता है। इस तरह हम किसी भी उत्पादन-क्रिया को देखें हम इसी परिणाम पर पहुँचेंगे कि बिना पाँचों साधनों को व्यवहार में लाये उत्पादन हो ही नहीं सकता। चाहे मिल-मालिक हों या जूते बनानेवाला चमार, चाहे बड़े-बड़े दूकानदार हों या छोटा सा खोमचा रखनेवाला व्यक्ति, सभी उत्पादन के समय इन पाँचों साधनों को प्रयोग में लाते हैं।

जब कि ये साधन उत्पादन के लिये इतने आवश्यक हैं तो यह जरूरी हो जाता है कि उनके मतलब को ठीक-ठीक समझा जाय।

भूमि (Land)

आम तौर पर लोग भूमि से पृथ्वी के तल का ही मतलब लगाते हैं। परन्तु अर्थशास्त्र में भूमि को मानी उन सब शक्तियों से है जो प्रकृति द्वारा प्राप्त होती हैं। इसमें पृथ्वी का तल; उस पर

बहनेवाली नदी, समुद्र, भील आदि; उसके ऊपर पाये जाने वाले पहाड़, ज्वालामुखी तथा जंगल; उसके पैट में पाये जाने वाले लोहा, ताँबा, कोयला आदि खनिज पदार्थ; तथा हवा, सूर्य का प्रकाश और चन्द्रमा की शीतल चाँदनी आदि सभी आ जाते हैं। यह सब वस्तुएँ प्रकृति द्वारा दी गईं हैं तथा मनुष्य ने इन्हें अपने श्रम से पैदा नहीं किया।

भूमि के गुण—भूमि के निम्नलिखित महत्वपूर्ण गुण हैं:-
 (१) यह क्षेत्र में या मात्रा में बढ़ाई नहीं जा सकती। प्रकृति द्वारा जितनी मात्रा में यह दी गई है उतनी ही यह रहेगी। न तो मनुष्य के लिये यह सम्भव है कि पृथ्वी का तल बढ़ा दे और न खानों में पाये जानेवाले खनिज पदार्थों की मात्रा ही।

(२) भूमि एक सी नहीं होती। कोई भूमि अधिक उपजाऊ है तो कोई कम। कहीं चिकनी मिट्टी पाई जाती है तो कहीं बालू। कहीं कोयला अच्छा है तो कहीं बुरा और मुलायम।

(३) भूमि स्वयं उत्पादन नहीं कर सकती। दूसरे उत्पत्ति के साधन भूमि को व्यवहार में लाकर उत्पादन करते हैं।

श्रम (Labour)

अर्थशास्त्र में श्रम शब्द के भी एक विशेष अर्थ हैं। कोई भी मेहनत (चाहे वह दिमागी हो या शारीरिक) यदि वह धन की प्राप्ति के लिये की जाती है तो वह श्रम है। यहाँ लैम. बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। पहले (१) अर्थशास्त्र में केवल स्त्री-पुरुषों द्वारा की गई मेहनत को श्रम समझना

जाता है। बैल जो दिन-रात पैर चलाते हैं या हल लेकर खेत जोतते हैं, घोड़े जो इक्के या ताँगे में लगे रहते हैं, गधे या घोड़े जो माल लादे इधर-उधर भागते फिरते हैं मेहनत करते हैं। परन्तु इनकी मेहनत को अर्थशास्त्र में श्रम नहीं समझा जाता और न उनका अध्ययन ही किया जाता है। (२) स्त्री-पुरुषों द्वारा केवल धन कमाने के लिये की गई मेहनत को ही श्रम कहा जाता है। माता अपने बालक के लिये अनेकों दुःख सहती है, एक देश-प्रेमी देश के लिये कगोड़ों कष्ट भेलता है, एक शिल्पकार कला के प्रेम के लिये दिन-रात काम किया करता है, एक कवि बरसात के दिन जब काले-काले बादल आसमान पर छा जाते हैं प्रकृति-सौन्दर्य के लिये कई मील चल सकता है—परन्तु क्योंकि यह कष्ट धन की उत्पत्ति के लिये नहीं किया गया इस-लिये यह श्रम नहीं। (३) ऐसा हो सकता है कि किसी समय श्रम करने पर भी धन की प्राप्ति न हो। जैसे मान लीजिये कि कोई मालिक अपने नौकर का वेतन न दे। परन्तु ऐसी दशा में यह नहीं कहा जा सकता कि नौकर का कार्य श्रम नहीं था। क्योंकि उसने मेहनत धन की प्राप्ति के लिये की थी, उसे धन नहीं मिला यह दूसरी बात है, उसकी मेहनत श्रम कहलावेगी।

श्रम के भेद—श्रम कई प्रकार के होते हैं। नीचे उनके भेद बताये जाते हैं :—

(१) शारीरिक तथा मानसिक श्रम—श्रम शारीरिक भी होता है तथा मानसिक भी। कुछ मनुष्य केवल शरीर से ही परिश्रम करते हैं मस्तिष्क से नहीं। जैसे खानों में काम करने वाले या मिट्टी खोदनेवाले या ईटा-पत्थर ढोनेवाले मजदूर। इसी तरह कुछ ऐसे श्रमी होते हैं जो केवल मस्तिष्क से ही

काम करते हैं जैसे अध्यापक, डाक्टर, वकील, जज आदि। आप यह कह सकते हैं कि शारीरिक परिश्रम करनेवाले को भी थोड़ा बहुत दिमाग खर्च करना पड़ता है तथा मानसिक कार्य करनेवाले को शारीरिक परिश्रम भी। उदाहरण के लिये मजदूर को ईंटा ढोते समय गड्डे छोड़कर चलना पड़ता है, उसे यह ध्यान रखना पड़ता है कि ईंटा कहाँ से उठाये और कहाँ रखे और इन सब में वह बिना दिमाग के काम नहीं कर सकता। इसी तरह डाक्टर को चीड़ा-फाड़ी के समय शारीरिक परिश्रम करना पड़ता है। इसलिये कोई भी परिश्रम पूरा शारीरिक या पूरा मानसिक नहीं हो सकता। यह बात तो ठीक है। परन्तु हम पूरा शारीरिक या पूरा मानसिक न देखकर केवल यह देखते कि अधिकांश में वह क्या है और यही देखकर उसको एक भेद या दूसरे भेद में रख देते हैं।

(२) कुशल या अकुशल श्रम—जिस मेहनत में अत्यन्त होशियारी तथा कुशलता की आवश्यकता पड़े उसे कुशल श्रम कहते हैं। जैसे वकीलाई, इन्जीनियरिंग, मास्टरगरी आदि। इसके विपरीत जहाँ कार्य में विशेष त्वरणाई की आवश्यकता नहीं, वह अकुशल श्रम कहलाता है। उदाहरण के लिये मजदूरी का काम, चपरासगीरी आदि ले लीजिए। अधिकतर वह कार्य जिनमें दिमाग से काम लेना पड़ता है कुशल कार्य कहलाते हैं और जहाँ कार्य शारीरिक ही हो, वह अकुशल श्रम कहलाता है।

(३) उत्पादक तथा अउत्पादक श्रम—जो श्रम धन

ही उत्पत्ति करने में सफल हो सके वह उत्पादक श्रम अन्यथा वह अनुत्पादक है। मान लीजिये कि एक माहसी कपड़े की मिल खोलने के लिए श्रम करता है; परन्तु मिल तैयार होने के पहले ही वह काम बंद कर देता है और मिल अधूरी ही रह जाती है। जो श्रम तथा धन मिल में लगा वह बेकार हो जाता है। यह श्रम अनुत्पादक श्रम कहलावेगा। परन्तु यदि मिल तैयार होकर कपड़ा बनाने लगती (चाहे उस मिल में लाभ होता या हानि) तो वह उत्पादक श्रम कहलाता।

श्रम-विभाग (Division of Labour)—पुराने समय में जब कि वर्तमान समाज की नींव नहीं पड़ी थी मनुष्य सहयोग से काम करना नहीं जानते थे। प्रत्येक मनुष्य अपनी आवश्यकता को सम्पूर्ण वस्तु स्वयं ही तैयार करता था। खाने से लेकर, कपड़ा, रहने के लिये घर, शिकार करने के लिये तोर-कमान, चाकू आदि वह स्वयं ही बनाता था। परन्तु धीरे-धीरे यह अवस्था बदली। लोगों ने समाज का ज्ञान सीखा। एक-दूसरे का यकीन करना सीखा और समाज की नींव पड़ी। पहले एक घर के लोग माँ, बाप तथा उनके बच्चे साथ-साथ रहने लगे। फिर, कई घरों के लोग एक ही स्थान पर रहने लगे और छोटे-छोटे गाँवों की नींव पड़ी। जब गाँव बसे तो लोगों ने यह देखा कि हर एक मनुष्य प्रत्येक काम सुगमता से नहीं कर सकता। कोई तोर-कमान अच्छी तरह चला सकता है तो कोई घर अच्छा बना सकता है। इस लिये यदि मिलकर काम किया जाय और एक मनुष्य को वह काम दिया जाय जिसमें उसकी विशेष रुचि है तो काम अच्छा तथा अधिक होगा। यही श्रम-विभाग की नींव पड़ी।

जैसे-जैसे समाज उन्नति करता गया, लोगों की आवश्यकताएँ

बढ़ती गई और श्रम-विभाग भी अधिक सूक्ष्म होता गया। पहले तो एक मनुष्य को आदि से अंत तक पूरा एक काम करने को दिया जाता था। जैसे कोई जानवर मारता था तो कोई कपड़े बनाता था तो कोई चाकू और छुरे बनाता था। परन्तु धीरे-धीरे इसमें भी परिवर्तन हुआ। मनुष्य ने पूरी वस्तु बनाना छोड़ दिया। यदि कपड़ा बनाना होता तो एक व्यक्ति रुई धुनता, तो दूसरा सूत कातता, तो तीसरा ताना-बाना बिनता, तो चौथा उसे धोता और पाँचवा उसे रँगता। इसी तरह कोई जूते की एड़ी बनाता तो कोई तला, कोई ऊपर का चमड़ा तैयार करता तो कोई चोबा ठेंकता और कोई पालिश करता। आजकल यह श्रम-विभाग और भी सूक्ष्मतर हो गया है। अब एक आदमी रँगाई नहीं करता। रँगाई का कार्य भी कई सूक्ष्म विभागों में बाँट दिया गया है और एक श्रमी केवल एक विभाग का ही कार्य वर्षों करता रहता है।

श्रम-विभाग से लाभ—श्रम-विभाग से अनेकों लाभ हैं इनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं:—

(१) इसके कारण उत्पादन बढ़ जाता है क्योंकि एक मनुष्य एक ही काम करता रहता है इसलिये वह काम शीघ्रता से करता है।

(२) इसके कारण काय अच्छा होता है क्योंकि प्रत्येक मनुष्य जो कार्य करता वह उस कार्य के करने में कुशल होता है।

(३) उत्पादन पर व्यय कम होता है क्योंकि इसमें समान बेकार नहीं जाता।

(४) इसमें समय की वचत होती है क्योंकि एक श्रमी को अपने औजार छोड़कर एक स्थान से दूसरे स्थान पर आने-जाने की आवश्यकता नहीं होती।

(५) इसके कारण श्रमी के स्थान परिवर्तन में सुगमता हो जाती है।

(६) इसके कारण मशीनों का प्रयोग संभव हो जाता है जिसके कारण देश का उत्पादन काफी बढ़ जाता है।

(७) इसके कारण नई-नई मशीनों का आविष्कार बढ़ जाता है। क्योंकि एक मनुष्य एक ही कार्य वर्षों तक करता रहता है इसलिये वह यह बता सकता है कि मशीनों में क्या-क्या परिवर्तन चाहिये।

श्रम के गुण—श्रम तथा श्रमी एक दूसरे से अलग नहीं किये जा सकते। जहाँ श्रमी होगा वहीं श्रम भी। और क्योंकि श्रमी के लिये एक स्थान से दूसरे स्थान जाना आसान नहीं इसलिये कहीं श्रम की पूर्ति अधिक होती है तो कहीं कम। इसी कारण उनका वेतन भी भिन्न-भिन्न होता है।

श्रम शीघ्र नाशवान है। यदि श्रमी किसी दिन काम पर न जाय तो उसका श्रम उस दिन बेकार हो जाता है। वह उस श्रम को फिर किसी दिन काम में नहीं ला सकता। उस दिन का तो उसका वेतन मारा ही जाता है। इसीसे श्रमिक यह ध्यान में रखता है कि किसी भी दिन वह नागा न करे। यही कारण है कि मिल-मालिक श्रमी को दबाव में ले लेते हैं।

श्रम का महत्व—कहने की आवश्यकता नहीं कि श्रम

उत्पादन का अत्यन्त आवश्यक साधन है जिसके बिना उत्पादन होना असंभव है। काम चाहे छोटे से छोटा हो या बड़े से बड़ा, बिना श्रम के तो कुछ हो ही नहीं सकता। चाहे आप पेड़ से फल तोड़कर पेट भरना चाहें, चाहे रोटी बनाकर पेट भरना चाहें, चाहे खेत जोतना चाहें और चाहे मिला में कपड़ा बनाना चाहें आपको श्रम की आवश्यकता अवश्य ही पड़ेगी। इसलिये श्रम उत्पादन का बड़ा महत्वपूर्ण साधन है।

पूँजी (Capital)

सम्पत्ति का वह भाग (भूमि को छोड़कर) जो कि उत्पादन के कार्य में लगाया जाता है पूँजी कहलाती है। यहाँ यह समझ लेना आवश्यक है कि पूँजी तथा सम्पत्ति में भेद है। पूँजी सम्पत्ति का एक भाग है, और वह भाग जो उत्पादन में लगाया जाता है। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि सेठ रामकुमार के पास १ लाख की सम्पत्ति है। यदि उसमें से वह बीस हजार रुपया लगाकर एक दूकान खोलता है तो दूकान की पूँजी बीस हजार कहलावेगी। इस तरह हम कह सकते हैं कि यद्यपि सेठ रामकुमार के पास एक लाख की सम्पत्ति है परन्तु उसने केवल बीस हजार की पूँजी से ही दूकान खोली है।

पूँजी और भूमि में भी भेद है। भूमि तो प्रकृति की देन है उसके लिये मनुष्य को स्वयं कोई श्रम नहीं करना पड़ता परन्तु पूँजी मनुष्य द्वारा उत्पादित तथा संचित होती है। जैसे कि जंगल में पैदा होनेवाला आम का पेड़, अर्थशास्त्र में, भूमि कहलावेगा। परन्तु बगी में लगाया गया आम का पेड़ पूँजी कहलावेगा क्योंकि वह मनुष्य द्वारा लगाया गया है।

जब तक कि मनुष्य द्वारा उपाजित धन उत्पादन में नहीं लगाया जाता वह पूँजी नहीं कहलावेगा। एक मनुष्य की तिजोरी में रखा हुआ रुपया उसकी सम्पत्ति है परन्तु वह पूँजी नहीं। लेकिन जैसे ही वह उस रूपये को उत्पादन के किसी भी कार्य में व्यय कर देगा, वह पूँजी कहलाने लगेगा।

इस तरह पूँजी की परिभाषा में तीन बातें ध्यान में रखने योग्य हैं : (१) पूँजी मनुष्य द्वारा संचित तथा उत्पादित होती है, वह प्रकृति की देन नहीं, (२) वह सम्पत्ति का एक भाग है तथा (३) उसका उत्पादन के कार्य में लगाया जाना आवश्यक है।

पूँजी के भेद—पूँजी दो प्रकार की होती है—(१) चल (Circulating) तथा अचल (Fixed)। चल पूँजी वह है जो उत्पादन कार्य में केवल एक बार ही व्यवहार में लाई जा सकती है और उसके बाद वह नष्ट हो जाती है। जैसे कि बीजों को ले लीजिये। एक बार भूमि में वो देने के बाद वह दूसरी फसल के काम में नहीं आ सकते। परन्तु किसान की खुरपी, हल आदि बार-बार व्यवहार में लाये जा सकते हैं। इसी प्रकार बड़ई जिस लकड़ी से भेज, कुर्सी आदि बनाता है वह केवल एक ही बार उत्पादन के कार्य में लाई जा सकती है। परन्तु उसके औजार एक बार उत्पादन करने के पश्चात् बेकार नहीं हो जाते। इस तरह किसान के बीज, बड़ई की लकड़ी, हलवाई के कोयले आदि सभी चल पूँजी हैं। परन्तु किसान के हल तथा खुरपी, बड़ई के औजार और हलवाई की कढ़ाई आदि सभी अचल पूँजी कहलावेंगी।

पूँजी का महत्व—पूँजी उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन

है। बिना पूँजी के उत्पादन हो ही नहीं सकता। उत्पादन चाहे छोटे पैमाने पर हो या बड़े पर सभी को कुछ न कुछ पूँजी प्रयोग में लानी पड़ती है। जहाँ एक दर्जी की सुई, कैंची आर मशीन उसकी पूँजी हैं तो बनिये की तराजू और बाँट उसको पूँजी है तो बड़े-बड़े कारखानेवालों की बड़ी-बड़ी मूल्यवान मशीनें उनकी पूँजी हैं। पूँजी के कारण उत्पादन की मात्रा बढ़ जाती है, उत्पादन शीघ्र होने लगता है, उत्पादन अच्छा होता है, हाथ से काम करने का भ्रष्ट बूट जाता है तथा काम सुगमता से हो जाता है। जहाँ हाथ से काम महीनों में हो वहाँ मशीनों द्वारा घन्टों में समाप्त हो जाता है। मशीनों के प्रयोग से उत्पादन का व्यय भी कम हो जाता है। यही कारण है कि आधुनिक काल में मशीनों का प्रयोग बढ़ता जाता है और यह काल मशीन-युग, कहलाता है। और मशीन है एक प्रकार की पूँजी। इसी से आप पूँजी के महत्व को समझ सकते हैं।

प्रबन्ध या व्यवस्था (Organization)

आज-कल उत्पादन क्षेत्र में प्रबन्ध का विशेष स्थान है। प्रबन्ध यदि अच्छा है तो उत्पादन अधिक होगा, कम व्यय पर होगा, सामान अच्छा बनेगा तथा शीघ्र बनेगा। परन्तु यदि प्रबन्ध ठीक न हुआ तो सामान कम, बुरा तथा अधिक मूल्य पर बनेगा। यही कारण है कि आजकल प्रबन्धकों का महत्व उत्पादन क्षेत्र में काफी बढ़ गया है।

प्रबन्धकों के कार्य—प्रबन्धकों को आज-कल अनेकों कार्य करने पड़ते हैं। उन्हें सबसे पहले यह देखना पड़ता है कि इस समय बाजार में किस वस्तु की आवश्यकता है वह किस नाम

पर बिक सकेगी, उसके उत्पादन में क्या व्यय पड़ेगा, तथा उससे कितना लाभ होगा। यह हिसाब लगा लेने के पश्चात् वह किसी साहसी को ढूँढ़ता है जो कि हानि-लाभ का जोखिम उठाने को तैयार हो तथा व्यापार करने को तत्पर हो। यह करने के बाद वह भूमि, पूँजी तथा श्रम को एकत्रित करता है। उत्पादन के लिये आवश्यक मशीन तथा कच्चे माल का प्रबन्ध करता है। फिर वह यह सोचता है कि कौनसा आदमी क्या काम कर सकता है और उसकी वहीं नियुक्ति करता है। इसके बाद वह उत्पादन आरम्भ कराता है। उस समय मिल का संचालन, उत्पादन की व्यवस्था, सामान की मात्रा, सामान को बेचने का प्रबन्ध, श्रमी को कुशल बनाने का उपाय, उनको उचित वेतन देने की व्यवस्था आदि सभी कार्य वहीं करता है। इससे हम प्रबन्धक के कार्य का अनुमान लगा सकते हैं। यही कारण है कि उनको आज-कल 'उद्योगों का कप्तान' कहा जाता है।

प्रबन्धकों के गुण—जब प्रबन्धक इतना महत्वपूर्ण कार्य करते हैं तो यह आवश्यक है कि उनमें कुछ गुण हों जिससे कि वह सुचारुरूप से कार्य कर सकें। पहले तो उनमें नये-नये काम सोचने की क्षमता होनी चाहिये जिससे वह योजनाएँ बना सकें। फिर उन्हें देश की आर्थिक स्थिति का ज्ञान होना आवश्यक है जिससे वह वस्तुओं के भावी मूल्य, उत्पादन का व्यय, तथा माँग की ऊँच-नीच के बारे में ठीक-ठीक अनुमान लगा सकें। उनमें संगठन शक्ति भी होनी आवश्यक है जिससे कि वह श्रमी, भूमि, पूँजी आदि को ठीक मात्रा में सम्मिलित कर उत्पादन कर सकें। मिल का ठीक से निर्माण करने की क्षमता तथा उत्पादन-यन्त्र की रचना का ज्ञान भी होना उनके लिये आवश्यक है। बने

हुये माल को निर्दिष्ट स्थान पर भेजने का ज्ञान जिससे वह अधिक से अधिक मूल्य पर बिक सकें भी आवश्यक है। इसके लिये उनको बाजार-भाव जानना होता है। सक्षेप में यह कहा जा सकता है कि एक प्रबंधक को नये-नये आविष्कार करने की बुद्धि, संगठन करने की कुशलता, ठोक-ठीक प्रबन्ध करने की क्षमता, देश-विदेशों की आर्थिक दशा का ज्ञान तथा भाविष्य का ठोक-ठीक अनुमान लगाने की शक्ति होनी आवश्यक है। तभी वह अपना काम ठीक से कर सकेगा अन्यथा नहीं।

साहस (Enterprise)

जोखिम के माने हैं हानि उठाने का साहस। प्रत्येक उत्पादन में कुछ न कुछ जोखिम अवश्य रहता है। जैसा ऊपर बताया जा चुका है एक प्रबंधक उत्पादन करते समय यह अनुमान लगाता है कि जब वस्तु तैयार हो जावेगी उस समय वह किस मूल्य पर बिकेगी। उसका वह अनुमान गलत भी हो सकता है और सही भी। यदि अनुमान गलत निकला तो व्यापार में नुकसान हो जावेगा। इसी कारण व्यापार में जोखिम रहती है जिसको उठाना साहस का काम है।

जोखिम की मात्रा कम या ज्यादा हो सकती है पर हर एक व्यवसाय में इसका होना आवश्यक है। बड़ी-बड़ी मिलों में जहाँ लाखों की पूँजी लगाकर काम होता है जोखिम अधिक होता है। परन्तु जहाँ पर काम छोटी मात्रा में होता है वहाँ जोखिम भी कम ही रहती है।

सारांश

उत्पत्ति के अर्थ वस्तु की अधिक उपयोगी बना देना है। यह उपयोगिता चार उपायों से बढ़ सकती है: (१) वस्तु का रूप बदल कर,

(२) वस्तु का स्थान बदल कर, (३) समय परिवर्तन कर तथा (४) क्रय-विक्रय कर ।

वस्तु को उपयोगी बनाने में शक्ति का प्रयोग करना पड़ता है । शक्ति का प्रयोग करने वाले साधनों को-उत्पत्ति के साधन कहते हैं । यह साधन पाँच हैं—भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध तथा साहस ।

भूमि का अर्थ केवल भूतल से नहीं । परन्तु अर्थशास्त्र में पृथ्वी का तल, पृथ्वी के ऊपर पाये जानेवाले पर्वत, नदी, झील आदि, पृथ्वी के गर्भ में रहनेवाले खनिज पदार्थ तथा सूर्य की रोशनी, हवा आदि सभी भूमि कहलाते हैं । थोड़े से में प्रकृति की देन को भूमि कहते हैं ।

स्त्री-पुरुषों द्वारा किया गया श्रम (चाहे वह मानसिक हो या शारीरिक) यदि वह धन के लिये किया गया है तो वह श्रम कहलाता है । श्रम कई प्रकार का होता है—(१) कुशल तथा अकुशल, (२) शारीरिक तथा मानसिक तथा (३) उत्पादक और अनुत्पादक । श्रम उत्पादन का एक महत्वपूर्ण साधन है ।

सम्पत्ति का वह भाग जो पुनः उत्पादन के लिये व्यय किया जाता है पूँजी कहलाता है । पूँजी दो प्रकार की होती है : (१) चल तथा (२) अचल । पूँजी तथा सम्पत्ति में भेद है ।

प्रबन्धक का कार्य उत्पादन के विभिन्न साधनों को एकत्रित करना है । प्रबन्धक के अनेको महत्वपूर्ण कार्य हैं और उसीके ऊपर व्यवसाय की सफलता निर्भर है ।

हानि उठाने के साहस को जोखिम कहते हैं । क्योंकि इस संसार में सभी बातें परिवर्तनशील हैं इसीलिये किसी वस्तु की माँग या कीमत का कोई भरोसा नहीं । यही कारण है कि व्यवसाय में जोखिम पैदा हो जाती है ।

प्रश्न

- (१) उत्पत्ति के अर्थ समझाइये तथा उत्पात्ति के साधनों को भी बताइये ।
- (२) आप भूमि से क्या मतलब समझते हैं ? इसके क्या गुण हैं ?
- (३) श्रम का क्या अर्थ है ? इसके भेद बताइये । इसका उत्पादन में क्या महत्व है ?
- (४) श्रम-विभाजन के अर्थ समझते हुए इसके लाभ बताइये ।
- (५) पूँजी तथा सम्पत्ति में क्या भेद है ? क्या भूमि और पूँजी एक ही वस्तु नहीं ?
- (६) चल या अचल पूँजी से आप क्या मतलब समझते हैं ? उदाहरण सहित बताइये ।
- (७) व्यवस्था के कार्यों का वर्णन कीजिए । एक किसान को क्या-क्या प्रबन्ध करना पड़ता है ?
- (८) क्या उत्पादन में जोखिम उठाना आवश्यक है ? जोखिम और व्यवस्था में भेद बताइए ।
- (९) श्रम तथा मनोरंजन में भेद बताइये । यदि कोई कवि कृविद्या करता है या गवैया गाता है तो किन-किन दशा में इनका कार्य श्रम और कब मनोरंजन कहलावेगा ?
- (१०) निम्नलिखित पर संक्षेप टिप्पणी लिखिये :-
- (१) मशीन से लाभ, (२) समय-परिवर्तन, (३) क्रय-विक्रय, प्रबन्धक का महत्व तथा (५) उत्पादन ।

उत्पत्ति के साधन

हाई-स्कूल-बोर्ड के प्रश्न

१. 'अर्थशास्त्र' में 'उत्पत्ति' के अर्थ को ठीक से समझाइये। उदाहरण सहित उत्तर दीजिये। (१६४७)
२. 'भूमि' तथा 'पूँजी' शब्दों की परिभाषा दीजिये तथा उनका मतलब समझाइये। क्या आपके स्थान पर अधिक अनाज पैदा हो सकता है यदि वहाँ भूमि अधिक हो? (१६४८)
३. उत्पादन के अर्थ समझाइए। उत्पत्ति के क्या-क्या साधन हैं? उत्पत्ति के विभिन्न साधनों का ग्रामीण उद्योग-धन्धों में क्या महत्व है? (१६४३)।

अध्याय चौथा भारतीय खेतों की पैदावार

हमारे देश के ९० प्रतिशत लोग गाँवों में रहते हैं और प्रत्येक चार में से तीन व्यक्ति अपनी जीविका के लिये खेती पर निर्भर हैं। इससे हम खेती तथा गाँवों के महत्व को समझ सकते हैं। जबकि हमारे देश की आर्थिक प्रणाली में खेती का इतना महत्वपूर्ण स्थान है तो यह आवश्यक हो जाता है कि हम खेतों की उपज तथा उससे संबंधित समस्याओं पर भी विचार करें।

हमारे देश की मुख्य दो फसलें हैं। एक तो अक्टूबर में बोई जाती है तथा मार्च-अप्रैल तक काटी जाती है। यह जाड़े की फसल या रबी की फसल कहलाती है। दूसरी फसल जून-जुलाई में बोई जाती है तथा सितम्बर-अक्टूबर तक काट ली जाती है। इसे खरीफ़ की या गर्मी की फसल कहते हैं।

रबी की फसल—यह जाड़े की फसल है। क्योंकि हमारे देश में जाड़े में मेह बहुत ही कम पड़ता है इसलिये इस समय वह अनाज बोये जाते हैं जो कम पानी में भी उग सकें। इनमें गेहूँ, ज्वार, जौ, मटर, मसूर, अलसी, सरसों, गन्ना आदि प्रसिद्ध हैं। यह सब फसलें प्रारम्भ में गीली तथा मुलायम मिट्टी चाहती हैं और बाद में कम तापमान चाहती हैं। मेह की भी इनको अधिक आवश्यकता नहीं; सिंचाई के पानी से इनका काम चल जाता है।

जिन खेतों में गेहूँ, जवा व सरसों पैदा की जाती है उनमें खरीफ़ की फसल नहीं बोई जाती। वरन् उनको बरसात के

पहले एक बार जोतकर छोड़ दिया जाता है जिससे कि बरसत का पानी उनमें भर जाय और मिट्टी मुलायम हो जाय । यह सब फसलें बैसाख या मई-जून तक काट ली जाती है ।

खरीफ की फसल—यह गर्मी की फसल है । इसमें वह अन्न बोये जाते हैं जो पैदा होने के लिये अधिक मेह या पानी चाहते हैं क्योंकि हमारे देश में जौलाई और अगस्त ही बरसात के महीने हैं । इनमें चावल, रुई, ज्वार, बाजरा, मक्का, मूँग, उरद, सावाँ, कोदों तिल आदि की फसलें प्रसिद्ध हैं । यह सब फसलें अधिक गर्मी तथा अधिक पानी चाहती हैं, इसलिये यह भारतवर्ष के उस भाग में अधिक बोई जाती है जहाँ पर्याप्त गर्मी, अच्छा मेह तथा सिंचाई का समुचित प्रबन्ध हो । यही कारण है कि यह फसलें प्रायः संयुक्त प्रान्त, मध्य-प्रान्त, बम्बई, मद्रास तथा बंगाल प्रान्त में ही पैदा होती हैं ।

संयुक्त प्रान्त में अन्नों में गेहूँ, चावल, जवा, चना, ज्वार तथा बाजरा पैदा होता है । दालों में मूँग, उरद, अरहर, मटर तथा मसूर पैदा की जाती हैं । इनके अतिरिक्त ईख की खेती के लिये यह प्रान्त बहुत प्रसिद्ध है । साथ ही तिल, सरसों, अलसी और आलू की भी खेती यहाँ पर होती है । बिहार प्रान्त में गेहूँ, चावल, ज्वार, चना, ईख, तिल, सरसों आदि की खेती अधिक होती है ।

कम पैदावार

कृषि की पैदावार बढ़ाने के लिये दो उपायों का प्रयोग

किया जाता है—या तो अधिक भूमि काम में लाई जाती है या कृषि का ढंग बदलकर उसी भूमि में अधिक खाद डालकर, अच्छे बीज बोकर तथा सिंचाई का अच्छा प्रबन्धकर, पैदावार बढ़ाई जाती है। विभिन्न देश अलग-अलग उपायों का प्रयोग करते हैं। वह केवल यह देखते हैं कि इन दोनों में से किस तरीके को व्यवहार में लाने से व्यय कम पड़ेगा। प्रायः यह देखा गया है कि जो देश नये हैं तथा जहाँ भूमि की बहुतायत है वह तो पैदावार बढ़ाने के लिये अधिक भूमि खेती के काम में ले आते हैं। परन्तु जहाँ भूमि की कमी है वह कृत्रिम उपायों द्वारा भूमि की उपज बढ़ाने का प्रयत्न करते हैं।

हमारे देश में भूमि के बहुत बड़े भाग में खेती होती है। परन्तु फिर भी हमारे देशवासियों के लिये पर्याप्त अन्न पैदा नहीं होने पाता। आजकल तो अन्न की कमी इतनी भयंकर हो गई है कि सरकार को लाखों रुपयों का अन्न विदेश से प्रति वर्ष मँगाना पड़ता है और फिर भी काम नहीं चलता। इस कमी का मुख्य कारण यह है कि भूमि से पैदावार बढ़ती ही नहीं जब कि देश की आबादी बढ़ती जा रही है। यदि हम पैदावार तथा आबादी के आँकड़ों को देखें तो हमें ज्ञात होगा कि जबकि देश की आबादी सन् १९२१ से सन् १९४१ तक २७ प्रतिशत बढ़ गई, खेती की भूमि में केवल २ प्रतिशत वृद्धि हुई है। सन् १९२०-२१ में लगभग २०.६ करोड़ एकड़ भूमि खेती के काम में आती थी, सन् १९३९-४० में यह बढ़कर केवल २१.० करोड़ एकड़ ही हुई। यही नहीं यदि हम देश की प्रति एकड़ भूमि की पैदावार का दूसरे देशों की पैदावार से मुकाबला करें तो यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हमारे देश का उत्पादन

बहुत कम है। अन्य देशों के मुकाबले हमारे देश में फी एकड़ भूमि की उपज एक-चौथाई या एक-तिहाई है। अमरीका में यहाँ के मुकाबले फी एकड़ भूमि में चौगुना गेहूँ पैदा होता है। जावा में यहाँ के मुकाबले छै गुना अधिक गन्ना फी एकड़ भूमि में पैदा होता है। यही हाल अन्य फसलों के बारे में भी है। लेकिन बात यहीं तक समाप्त नहीं हो जाती। उपज की कम पैदावार होने के साथ-साथ यहाँ की फसलें भी अच्छी नहीं होतीं। यहाँ का गेहूँ पतला तथा लम्बा होता है। यहाँ के गन्ने का भी यही हाल है। पतला होने के कारण उसमें रस कम निकलता है। हमारे देश का रुई छोटी होती है इसी कारण इसे Short Staple रुई कहते हैं जबकि अमरीका आदि देशों में Long Staple होती है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारा देश कृषि के मामले में अन्य देशों से काफी पिछड़ा हुआ है। यदि यहाँ पर उचित तरीके से उत्पादन बढ़ाने के लिये परिश्रम किया जाय तो हमारे देश में कृषि की पैदावार तीन-चार गुनी बढ़ सकती है। इसलिये हमको उत्पादन की कमी के कारणों को जानकर उनको दूर करने के उपाय सोचना चाहिये।

उपज की कमी के कारण

हमारे देश में खेतों से पैदावार कम होने के कई कारण हैं और उनको कई भागों में विभक्त किया जा सकता है। वह कारण निम्नलिखित हैं :—

(१) प्राकृतिक कारण—हमारे देश में कुछ प्राकृतिक असुविधायें ऐसी हैं जिनके कारण फसलें खराब हो जाती हैं। पहले

तो हमारे देश में मेह हमेशा एकसा नहीं गिरता। कभी तो वह अधिक गिरता है तो कभी कम। कभी इतना कम पड़ना है कि सूखा पड़ जाता है तो कभी बरसात की बहुतायत के कारण बाढ़ आ जाती है और हजारों एकड़ भूमि को खेती चौपट हो जाती है। फिर मेह का १५-२० दिन इधर-उधर खिसक जाना आसान बात है। क्योंकि हमारे देश में सिंचाई की सुविधायें कम हैं इसलिये किसान मेह के पानी पर काफी निर्भर रहते हैं। और मेह में गड़बड़ी हो जाने से उनकी खेती बर्बाद हो जाती है। दूसरे, हमारे देश में ऋतु-परिवर्तन बड़ी शीघ्रता से होता है। फरवरी-मार्च में जाड़ा समाप्त होता है और अप्रैल लगते-लगते ही गर्म लू बहने लगती है। इसी कारण गेहूँ पतला और लम्बा रह जाता है। तीसरे, चूहे, टिड्डी तथा अन्य कीड़े फसलों को भयंरी मात्रा में नष्ट कर देते हैं। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने जनवरी, १९४९ को एक विज्ञप्ति द्वारा बताया था कि प्रान्त की अमरूद की फसलों में एक ऐसा कीड़ा लग गया है जिससे डर है कि कहीं प्रान्त भर की अमरूद की फसल चौपट न हो जाय। कीड़ों को दूर करने का सरकार प्रयत्न कर रही है।

(२) खाद की कमी—किसान एक ही भूमि को वर्षों से जोतते चले आये हैं। इसके कारण भूमि का उपजाऊपन (fertility) कम हो गया है। पेट भरने के कारण से न तो वह भूमि को किसी साल बिना जोते ही छोड़ सकते हैं और न गरीबी के कारण वह खेत में खाद ही डालकर उसका उपजाऊपन बढ़ा सकते हैं। परिणाम यह हुआ है कि भूमि का उपजाऊपन कम होता चला जा रहा है जिसके कारण पैदावार कम हो रही है।

किसानों के पास गोबर ऐसी चीज है जिसकी खाद बनाई जा सकती है। परन्तु गरीब किसान गोबर की उपली बनाकर उसे आग में जला डालते हैं क्योंकि उनके पास बाजार से लकड़ी लाने के लिये पैसा ही नहीं। इस तरह किसान अपनी गरीबी के कारण ऐसा पदार्थ जिससे खाद बन सकती है जला डालते हैं। अन्य खादों को बाजार से खरीदकर लाने में पैसा लगता है। इसलिये अधिकतर किसान खेत के एक कोने में एक गड्ढा खोद लेते हैं और उसी में तमाम कूड़ा-करकट जमा करते रहते हैं। सड़ जाने पर उसी को खाद की जगह व्यवहार में लाते हैं। कुछ किसान तो यह भी नहीं करते फसल काटने के बाद जो पेड़ की जड़ें खेत में रह जाती हैं वही सड़-सड़कर मिट्टी में मिल जाती हैं और हल चल जाने के बाद एकसी हो जाती हैं। बस यही खाद का काम दे जाती हैं। जब दशा ऐसी है तो यदि खाद की कमी के कारण उत्पादन कम हो जाय तो इसमें आश्चर्य ही क्या ?

फसल का हेर-फेर—खेत में खाद देना अत्यन्त आवश्यक है। पुराने समय में भी अनुभवी किसान खेतों में खाद डालते थे। यदि यह सम्भव न होता था तो वह हर तीसरे साल में एक साल खेत को नहीं जोतते थे या अन्य शब्दों में कहिये उसे 'परती' छोड़ देते थे। यही नहीं वह फसलों को भी हेर-फेर कर बोते थे जिससे कि यदि एक फसल भूमि के कुछ तत्त्वों को नष्ट कर दे तो दूसरी फसल से वही तत्त्व भूमि को पुनः वापिस मिल जाते थे। इसी प्रथा को आजकल फसल का हेर-फेर कहते हैं। उदाहरण के लिये अनुभवी किसान मकई के बाद गेहूँ; ज्वार के बाद जौ, मटर या अलसी; कपास के बाद मकई; चना के बाद गेहूँ

आदि बोते हैं। गेहूँ के बीच-बीच में दालें या तिलहन भी बो देते हैं। आजकल किसानों की गरीबी इतनी अधिक बढ़ गई है कि वह खेत को परती नहीं छोड़ सकते। अधिक रुपया कमाने के लालच से वह गेहूँ को ही बराबर बोते रहते हैं। कैमीकल खाद डालने के लिये रुपया नहीं। यही कारण है कि खेतों से उपज कम होती जा रही है।

(३) बीज—खाद के बाद पैदावार बीजों पर निर्भर है। यदि बीज उम्दा तथा बढ़िया हैं तो उपज अधिक होगी और फसल भी अच्छी। हमारे देश के किसान प्रायः जमींदार या महाजनों से बुआई के समय बीज ले आते हैं। बीज सड़े हुए भी होते हैं पर किसान उन्हीं को बो देता है। वह बीजों के उम्दापन पर नहीं उनके सस्तेपन पर जाते हैं। इसीसे उसकी फसल भी अच्छी नहीं होती।

रूस, अमरीका आदि देशों में ऐसे बीजों का आविष्कार किया गया है जो बजाय सात महीने के पाँच महीने में ही फसल तैयार कर देते हैं जो कि मेह की कमी को भी सह सकते हैं, अधिक ठण्ड भी बरदास्त कर लेते हैं तथा गर्मी में भी खड़े रह सकते हैं। क्या ही अच्छा हो यदि हमारे देश के विद्वान भी ऐसे बीजों को निकालें और हमारे किसानों को बोनो को दें।

(४) सिंचाई—खेती के लिये पानी अत्यन्त आवश्यक है। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है हमारे देश के किसान पानी के लिये मेह पर अधिक आश्रित रहते हैं क्योंकि हमारे देश में सिंचाई के साधनों की कमी है। नहरें इतनी नहीं कि उनसे सब किसान खेतों में पानी दे सकें—उनसे तो पानी कुछ दिनों के लिये

ही फसल पर मिलता है। पक्के कुएं भी इतने नहीं कि हर किसान उनसे पानी ले सके। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने कुछ ट्यूब वेल (Tube Well) जो एक प्रकार का कुआँ है खोदे हैं पर उनकी संख्या आवश्यकता के हिसाब से बहुत कम है। जब तक कि किसानों को सिंचाई का सुविधा नहीं मिलती, पैदावार बढ़ नहीं सकती।

(५) खेती के औजार— किसानों के पास काम करने के औजार ठीक नहीं। उनके हल इतने हल्के होते हैं कि उनसे मिट्टी भी नहीं ऊपर आती। हल में लोहे का फल छोटा तथा कम लुंकीला होता है जिसके कारण वह भूमि को पूरी तरह नीचे खोदने ही नहीं पाता। भारतीय हल केवल ६ या ८ इंच तक नीचे जाता है जबकि विलायत में किसान १ फुट तक नीचे भूमि खोदते हैं। किसानों के बैल बूढ़े, कमजोर तथा मरियल हैं। उनको खाने की पूरी रसद ही नहीं मिलती। स्वयं किसान भी कमजोर हो गये हैं। भूख के मारे उनका शरीर शिथिल पड़ गया है। रोगों ने उनको अलग घेर रखा है। घर की कलह, जमींदार की मार, महाजन की माँग और आपस की मुकद्दमेबाजी ने उनकी मानसिक शान्ति को समाप्त ही कर दिया है। ऐसे में न तो वह मेहनत से काम कर सकते हैं और न मन से ही। धन की कमी उन्हें हर तरह से लाचार बनाये डालती है। एक परेशानी को कोई आदमी सह सकता है पर जब अनेकों कठिनाइयाँ एक साथ किसी को तंग करती हैं और उसको कोई रास्ता नहीं दीख पड़ता तब वह सब कुछ भगवान की दृष्टि समझकर सान्त्वना पाने की चेष्टा करता है। अभी हाल हमारे किसानों का हो गया है। वह समझ बैठे हैं

कि उनके भाग्य का सितारा संभव है कभी न चमके। लेकिन बात ऐसी नहीं। परन्तु क्योंकि हालत काफी खराब हो गई है और कठिनाइयाँ अनेकों हैं इसलिये सभी बुराइयों को जब तक एक साथ दूर करने का प्रयत्न नहीं किया जावेगा तब तक उनकी दशा सुधर नहीं सकती।

खेतों का छोटा-छोटा और अलग-अलग होना

(Sub-division and Fragmentation of Holdings)

ऊपर दी गई बुराइयों के साथ-साथ हमारे देश में खेती से सम्बंधित एक और बुराई है। यहाँ के किसानों के खेत बहुत छोटे-छोटे हैं। अधिकांश में किसानों के पास २-४ एकड़ भूमि है और किसी-किसी के पास तो इतनी कम है कि वह हल को चारों ओर घुमा भी नहीं सकता। यही नहीं यह छोटे-छोटे खेत एक साथ मिले हुए नहीं होते। एक किसान के पास कई खेत होते हैं और वह अलग-अलग तथा दूर-दूर पर छिटके होते हैं। यानी एक किसान को अपने एक खेत से अपने दूसरे खेत पर जाने के लिये दूसरे किसानों के खेतों को पार कर के जाना पड़ता है।

खेतों के छोटे तथा अलग-अलग होने के कारण—

हमारे देश में कानून ऐसा है कि पिता के देहात के बाद जमीन तथा जायदाद सब लड़कों में बाँट दी जाती है। विलायत में भूमि सब लड़कों में नहीं बटती। वृह केवल बड़े लड़के को मिलती है। हमारे देश में प्रचलित कानून के अनुसार यदि एक बाप के चार लड़के हैं तो उसके मरते ही भूमि के चार भाग

हो जाते हैं। खेतों के छोटे होने का मुख्य कारण यही है। कुछ लोगों को भूमि दान में मिली है तो कुछ ने ऋण के बदले में ली है। इसलिये इन लोगों के पास भूमि मिली हुई नहीं है। कोई टुकड़ा एक जगह है तो कोई दूसरी जगह। खेतों के छिटके होने के यही मुख्य कारण हैं।

इससे हानियाँ—खेतों के छोटे तथा अलग-अलग होने से अनेकों हानियाँ हैं। इनमें मुख्य-मुख्य निम्नलिखित हैं:—

(१) खेतों के छोटे तथा बिखरे होने के कारण किसान अच्छे अच्छे हल तथा औजारों को काम में नहीं ला सकता। वह खेतों पर मशीनों का प्रयोग नहीं कर सकता। उसे नहर का पानी लेने में भी बड़ी कठिनाई होती है और व्यय भी अधिक पड़ता है। प्रत्येक टुकड़े को सींचने के लिये उसे बार-बार पानी लेना पड़ता है और बहुत-सा पानी बेकार चला जाता है।

(२) इसके कारण उत्पादन का व्यय बहुत बढ़ जाता है। खेत छोटे होने के कारण बैल कुछ समय तक काम करने के बाद दिन भर बेकार बैठे रहते हैं। यदि उसका खेत बड़ा होता तब भी एक जोड़ी बैल उसे दिन भर में जोतते। खेत छोटा होने पर भी उसे एक जोड़ी बैल दिन भर के लिये रखने पड़ते हैं। इस तरह उसका खर्चा बढ़ जाता है।

(३) खेतों के बिखरे होने के कारण मुकद्दमेबाजी तथा झगड़े प्रायः हो जाते हैं। कभी किसी के बैल ने दूसरे की फसल खा ली तो कहीं किसी ने जमीन दबा ली, तो कहीं कोई किसी दूसरे के खेत में हौकर निकल गया। इसी में किसानों का बहुत-सा रूषथा तथा समय बर्बाद हो जाता है।

(४) खेतों के छोटे तथा बिखरे होने के कारण बहुत-सी भूमि तो खेतों की मेंड़ (चारदिवारी) बनाने में व्यय हो जाती है। किसानों का रुपया भी इन पर बहुत लग जाता है।

(५) खेतों के दूर-दूर होने के कारण उनकी देख-भाल में बड़ी असुविधा होती है। किसान हर समय हर खेत पर नहीं रह सकता, इस कारण उसको दूसरों पर निर्भर रहना पड़ता है। इसीमें तकलीफ होती है। कभी कोई खेत चर जाता है तो कोई पकी हुई फसल काट ले जाता है तो कोई रात में खलिहान में आग ही लगा जाता है। कहीं बरसात में खेत बहा जा रहा है तो कहीं मेंड़ कट जाने से सिंचाई का पानी दूसरे के खेत में चला जाता है तो कहीं पानी की कमी से खेत ही सूख जाते हैं। कहने का मतलब है कि किसान की परेशानियाँ बढ़ जाती हैं।

इस बुराई को दूर करने के उपाय—इस बुराई को दूर करने के लिये देश की विभिन्न प्रान्तीय सरकारों ने अनेकों उपायों को निकाला पर उनको सफलता न मिली। अब विद्वानों का मत यह है कि सरकार को चकबन्दी (Consolidation of Holdings) करनी चाहिये। चकबन्दी के मानी है कि सब खेतों को एक साथ मिला दिया जाय और हर किसान को जितनी उसकी कुल भूमि थी उसी के बराबर उसको भूमि एक स्थान पर दे दी जाय। इस तरह उसके खेत छिटके नहीं रहेंगे। यद्यपि इस तरह उनको पुराने खेत छोड़ने पड़ेंगे पर उनको दूसरे खेत मिल जावेंगे जिनका क्षेत्रफल बराबर होगा।

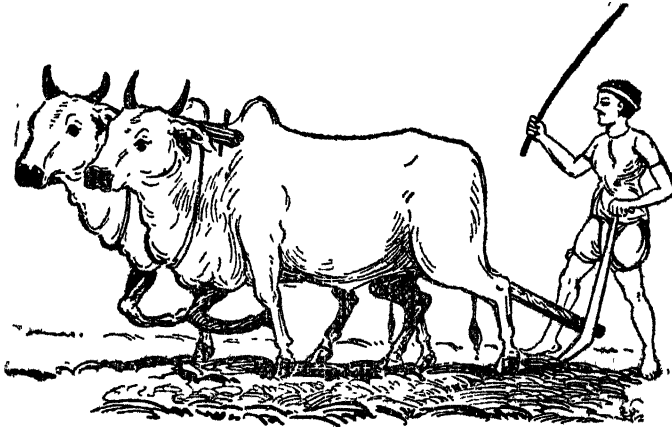
परन्तु इसमें एक कठिनाई है। भूमि एकसी उपजाऊ नहीं होती। कोई भूमि अधिक उपजाऊ है तो कोई कम। इसलिये यदि

किसी को अधिक उपजाऊ भूमि के स्थान पर कम उपजाऊ भूमि मिली तो वह संतुष्ट नहीं होगा। साथ में जिनके पास छोटे-छोटे खेत थे उनको तो उतनी ही भूमि पर खेती करनी पड़ेगी। खेत का क्षेत्रफल तो नहीं बढ़ेगा। इससे देश का कल्याण तो नहीं हुआ और समस्या भी नहीं सुलझी। इसलिये कुछ विद्वानों ने एक दूसरा तरीका बताया है जिसे सहकारी-खेती (Co-operative Farming) कहते हैं। इसके अंदर गाँव की सब भूमि एक साथ मिलाकर एक कर दी जावेगी तथा सब किसान उस पर खेती करेंगे। सभी को मिलकर पारी-पारी से बराबर काम करना पड़ेगा। जब खेत तैयार होकर कट जावेंगे और फसल बेचकर रुपया इकट्ठा हो जावेगा तो वह किसानों को हर एक के खेतों के क्षेत्रफल के अनुपात में बाँट दिया जावेगा। मान लीजिये कि यदि फी एकड़ ५०) ६० मिला तो जिसके पास दो एकड़ जमीन है उसको १००) ६० मिलेगा और जिसके पास ५ एकड़ उसको २५०) ६०। इस तरह सब भूमि भी एक हो जावेगी और वह एक साथ जोती व बोई भी जावेगी। सभी लोग उस पर काम करेंगे और किसी को लड़ने या भागड़ा करने का अवसर नहीं मिलेगा।

खेती का तरीका

ऊपर दिये गये कारणों के साथ-साथ उपज के कम होने का एक और कारण है—खेती करने का गलत तरीका। हमारे किसान बरसात होने के कुछ दिन पहले खाद (जिसको उन्होंने घर का कूड़ा-करकट, मैला आदि एक गड्ढे में डालकर तैयार किया है) के छोटे-छोटे ढेर खेत में जगह-जगह पर लगा देते हैं। बरसात होने पर यह ढेर खेत में ही रहते हैं और बरसात

का पानी खाद को खेत भर में फैला देता है। दो-एक पानी पड़ जाने के बाद किसान खेत को हल द्वारा जोत डालते हैं।



चित्र १—हल चलाना



चित्र २—कूड़ की बुवाई

उनके हल प्रायः हलके होते हैं जो भूमि के अन्दर केवल द.

इंच से न इंच तक जाते हैं। इसके बाद खेत में फावड़ा चलाया जाता है जिससे भूमि ढोली पड़ जाय और बीज आसानी से अन्दर चला जाय। इसके बाद बीज डालने की वारी आती है। बीज दो तरीकों से बोया जाता है। कुछ फसलों के बीज तो किसान दोनों हाथों में भरकर इधर-उधर छिटका देते हैं और जो बीज जहाँ पड़ता है वहीं पेड़ उग आता है। यह अधिकतर बाजरा, चना, उद, मूँग, मटर आदि की फसलों के बारे में किया जाता है। कुछ फसलों की बुआई नली द्वारा होती है। इने कूँड की बुआई कहते हैं। इस बुआई में हल चलाते समय जो नाली-सी खुदती जाती है उसमें एक नली द्वारा (जो कि हल के पीछे बँधी रहती है) आदमी बीज छोड़ता जाता है। इसमें एक आदमी हल चलाता है तथा दूसरा बीज डालता है। यह प्रायः गेहूँ, कपास, मक्का आदि की खेती में



चित्र ३—पटेला चलाया जा रहा है

क्रिया जाता है। बीज पड़ने के बाद पटेला द्वारा भूमि एक-सी कर दी जाती है जिससे बीजों को चिड़ियाँ न खा सकें।

बीज बो देने के कुछ समय बाद खेत में पानी दिया जाता है। यदि मेह पड़ गया तब तो ठीक है नहीं तो नहर से या कुएँ से सिंचाई की जाती है। कुएँ से सिंचाई करने के कई तरीके हैं पर हमारे प्रान्त में प्रायः मोट (जो चमड़े का बहुत बड़ा डोल सा होता है) द्वारा ही की जाती है। मोट को खींचने के लिये बैलों का प्रयोग किया जाता है। सिंचाई के बाद किसान खुरपी द्वारा निराई करते हैं। इसमें वह पौधों के पास उगी हुई घास को उखाड़ फेंकते हैं तथा जमीन में पड़ी पपड़ी को तोड़ डालते हैं। रबी की फसल में निराई की आवश्यकता कम पड़ती है।

इसके बाद जब फसल उग जाती है तो किसान को उसकी देख-भाल करनी पड़ती है। समय-समय पर पानी देना पड़ता



चित्र ४—कटाई

है तथा जानवरों और पक्षियों से उसे बचाना पड़ता है।

फसल पक जाने पर उसे हँसिया से काट डालते हैं। फसल मनुष्य स्वयं काटते हैं। हमारे देश में मशीनों का प्रयोग नहीं किया जाता। फसल काटकर खलिहान में जमा की जाती है। यहाँ उसकी मड़ाई होती है। बैलों को उसके ऊपर



चित्र ५—मड़ाई हो रही है

चलाया जाता है जिसके कारण पत्ते, डण्डे तथा अनाज के दाने पेड़ों से दूट जाते हैं। फिर अनाज के दानों में से भुस तथा कूड़ा अलग किया जाता है। इसके लिये किसान दानों को एक बरतन में भरकर उसे ऊपर से डालते हैं तथा कोई आदमी हवा करता जाता है। इस तरह कूड़ा अलग गिर जाता है और साफ अनाज नीचे। इसको उड़ीनी कहते हैं। इस तरह से हमारे देश के किसान अनाज पैदा करते हैं।



चित्र ६—उड़ौनी

खेती के तरीके में सुधार—इस ढंग से खेती करने में अनेकों बुराईयाँ हैं। पहले तो खाद (जो केवल नाम में ही खाद है गुण में नहीं) ठीक से नहीं डाली जाती। खेत में पड़े रहने के कारण उसके अच्छे तत्व सूर्य की किरणों से जल जाते हैं। कुछ हवा उड़ा ले जाती है। मेह के पानी के साथ-साथ रही-सही खाद भी बह जाती है। वह खेत में मिलती तो कुछ नहीं पूरी नष्ट हो जाती है। इसलिये अच्छा तो यह हो कि किसान खाद का ढेर लगाने के स्थान पर क्यारियाँ बनाकर उसे जमीन के अन्दर रहने दें जिससे कि वह अन्दर ही अन्दर मिट्टी में मिल जाय और बरसात के पानी से

न बहे। हल चलाने समय वह ऊपर आ जावेगी तथा खेत में मिल जावेगी। हल को इनको गहरा चलाना चाहिये जिससे वह लगभग एक फुट भूमि खोद सके। बीज को हाथ से छिटककर कभी नहीं बोना चाहिए। इससे खेती खराब हो जाती है और कहीं-कहीं बहुत से पेड़ पास-पास उग आते हैं तो कहीं बहुत-सी जगह बेकार पड़ी रहती है। सिंचाई के साधनों में नहरों को बढ़ाने की अत्यन्त आवश्यकता है। इससे किसानों को बैल आदि रखने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी और न इतना शारीरिक परिश्रम ही करना पड़ेगा। किसानों का अनाज इकट्ठा करने का तरीका बहुत बुरा है। बैलों के बोक से बहुत-सा अनाज पिसकर आटा हो जाता है तथा उड़ौनी से अनाज साफ नहीं होता। इसके लिये किसानों को छोटी छोटी मशीनों का प्रयोग करना चाहिये जो कम दामवाली हैं तथा अच्छा काम भी करती हैं।

इस अध्याय को पढ़कर आप समझ गये होंगे कि हमारे किसान क्यों गरीब हैं, और उनके खेतों से पैदावार क्यों कम होती है। साथ ही आपको पैदावार बढ़ाने के उपायों का भी पता लग गया होगा। यदि बताये गये उपायों को व्यवहार में लाया जाय तो हमारे देश के गाँव पुनः धन-धान्यपूर्ण हो जावेंगे और हमारे देश का लाखों रुपया जो विदेश से अनाज मँगाने में व्यय हो रहा है बच जावेगा।

सारांश

भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। यहाँ की दो मुख्य फसलें हैं—(१) खरीफ जो जून-जुलाई में बोकर सितम्बर-अक्टूबर में काटी

जाती है तथा (२) रबी जो अक्टूबर-नवम्बर में बोकर अप्रैल-मई में काटी जाती है ।

हमारे देश में कृषि से पैदावार दूसरे देशों के मुकाबले में बहुत कम होती है । इसके कई कारण हैं । उनमें मुख्य हैं : (१) प्राकृतिक कारण, (२) खाद की कमी, (३) खराब बीज, (४) सिंचाई की कमी, (५) खेती के पुराने औजार, (६) खेतों का छोटे-छोटे तथा अलग-अलग होना तथा (७) खेती करने का गलत तरीका ।

खेतों के छिटके तथा छोटे होने के कई कारण हैं । परन्तु इसका मुख्य कारण है हमारे देश का कानून जिसके कारण भूमि सब लड़कों में बराबर बाँट दी जाती है । इससे कई खराबियाँ हैं : (१) खेत का प्रबन्ध कठिन हो जाता है, (२) उत्पादन का व्यय बढ़ जाता है, (३) नये नये वैज्ञानिक तरीकों को व्यवहार में नहीं लाया जा सकता; तथा (४) बहुत-सी भूमि मेंड़ बनाने में नष्ट हो जाती है ।

खेती करते समय किसान पहले भूमि में खाद डालते हैं, फिर उसे जोतते हैं, उसके बाद बीज डालते हैं । बीज डालने के दो तरीके हैं । बीज डालने के बाद खेत की सिंचाई की जाती है और बाद में निरवाई । फसल पक जाने पर उसे काट लिया जाता है और खलिहान में ले जाकर वह माँड़ी जाती है और बाद में उसमें से कूड़ा-करकट अलग कर लिया जाता है ।

इन सब काम करने के तरीकों में कुछ न कुछ खराबियाँ हैं जिनको दूर करना अत्यन्त आवश्यक है । तभी हमारे खेतों की पैदावार बढ़ेगी तथा हमारे गाँव धन-धान्यपूर्ण होंगे ।

प्रश्न

१. भारतवर्ष में कौन सी फसलें होती हैं, वह कब बोई जाती हैं और उनमें क्या-क्या अनाज पैदा होते हैं ? संयुक्त प्रान्त की महत्वपूर्ण फसलें बताइये ।
२. भारतवर्ष में कृषि की उपज क्यों कम है ? इस कमी को दूर करने के उपाय बताइये ।
३. खेतों के छिटके तथा छोटे होने से आप क्या मतलब समझते हैं ? क्या इससे कुछ हानियाँ हैं ? इस बुराई को किस तरह दूर किया जा सकता है ?
४. आप चक्रवन्दी क्यों चाहते हैं ? इसके किये क्या आप सहकारी खेती अधिक पसन्द करेंगे ?
५. हमारे देश में खाद किस तरह खेतों में डाली जाती है ? इस प्रथा में क्या परिवर्तन आवश्यक है ?
६. हमारे देश में खेती की विधि आरम्भ से अंत तक बताइये । इसमें क्या-क्या खराबियाँ हैं ?
७. यदि भारतवर्ष में उपज कम है तो क्या इसका प्रभाव किसानों की गरीबी पर भी कुछ पड़ता है ? उनके गरीबी के क्या अन्य भी कुछ कारण हैं ।
८. इस समय अनाजों के मूल्य बहुत अधिक हैं । क्या इसका कारण भी एकड़ कम उपज है ?

हाई-स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. भारतीय खेती के पिछड़े होने के क्या-क्या कारण हैं ? आप क्या सुधार समझ सकते हैं ? (१९४३)

आरामक अर्थशास्त्र

जो शहरों में किये जाते हैं। परन्तु यह भेद अनावश्यक है क्योंकि चाहे घरेलू उद्योग-धन्धे शहर में किये जायें या गाँव में, उद्योग-धन्धों की किस्मों में कोई भेद नहीं। घरेलू उद्योग-धन्धे चाहे वह कहीं भी हों, रहेंगे तो वह एक ही प्रकार के उद्योग-धन्धे। परन्तु घरेलू उद्योग-धन्धों तथा ग्रामीण उद्योग-धन्धों में भेद है। गाँवों में पाये जानेवाले सभी धन्धे, चाहे वह छोटे पैमाने पर किए जायें या बड़े पर, सभी ग्रामीण उद्योग-धन्धे कहलावेंगे। परन्तु क्योंकि आजकल हमारे गाँवों में केवल घरेलू उद्योग-धन्धे ही पाये जाते हैं इस कारण केवल घरेलू उद्योग-धन्धे ही ग्रामीण उद्योग-धन्धे भी हैं। लेकिन जब कभी गाँवों में बड़े पैमाने के धन्धे आरम्भ हो जावेंगे, तभी इन दोनों शब्दों में भेद आ जावेगा। इस कारण दोनों का अलग-अलग मतलब समझ लेना आवश्यक है।

घरेलू उद्योग-धन्धों का महत्त्व—हमारे देश में घरेलू उद्योग-धन्धों का बढ़ना अत्यन्त आवश्यक है। इसके कई कारण हैं :—

(१) हमारे गाँव के किसान साल में चार-छैः महीने बेकार रहते हैं। बेकार रहने से यदि वे कोई उद्योग-धन्धा करने लगें तो उनकी आमदनी भी बढ़ जावेगी और बैठे रहने से कोई फायदा भी नहीं।

(२) हमारे देश में आजकल सभी वस्तुओं की कमी है। इस कारण विदेशों से सामान मँगाना पड़ता है और देश का करोड़ों रुपया प्रति वर्ष विदेश चला जाता है। यदि उद्योग-धन्धे बढ़ जायें तो वस्तुओं की कमी दूर हो जावेगी।

(३) हमारे देश की मिले' आवश्यकता का सभी सामान नहीं बना सकती। कारण एक अभी देश में पर्याप्त मिलें नहीं हैं। यदि किसान स्वयं यह वस्तुएँ बनाने लगे' तो उनको उन वस्तुओं को खरीदने की आवश्यकता भी नहीं होगी।

ग्रामीण उद्योग किस ढंग से होवे चाहिये—हमारे गाँव के किसानों में केवल वही उद्योग-धन्धे बढ़ सकते हैं जिनमें निम्नलिखित अच्छाईयाँ हों :—

(१) उनको चलाने में कम पूँजी लगे। क्योंकि हमारे किसान अधिकतर गरीब हैं इसलिये वह अधिक पूँजी नहीं लगा सकते।

(२) इनके चलाने के लिये साधारण यन्त्रों की आवश्यकता हो। हमारे किसान बड़ी-बड़ी मशीनें न तो खरीद ही सकते हैं, न उनको चलाने का ज्ञान ही रखते हैं, और न उनको चलाने के साधन ही गाँव में मौजूद हैं।

(३) यदि उद्योग-धन्धे ऐसे हों जो कृषि से संबन्ध रखते हों ता किसान उनको ग्रामिणी से अपना सकेंगे। जैसे बगीचा लगाना, आचार या मुरब्बे डालना, मधुमक्खी पालना, मुर्गी पालना, गौशाला चलाना आदि।

(४) उद्योग-धन्धे छोटी मात्रा में चलाने चाहिये तथा वह ऐसे हों जिनको बढ़ करने से कोई हानि न हो। क्योंकि किसान पूरे साल भर तो काम कर ही नहीं सकते इसलिये उद्योग धन्धे चार-छै महीना चलने के बाद कुछ समय के लिये बंद हो जाया करेंगे।

भारतीय घरेलू उद्योग-धन्धे

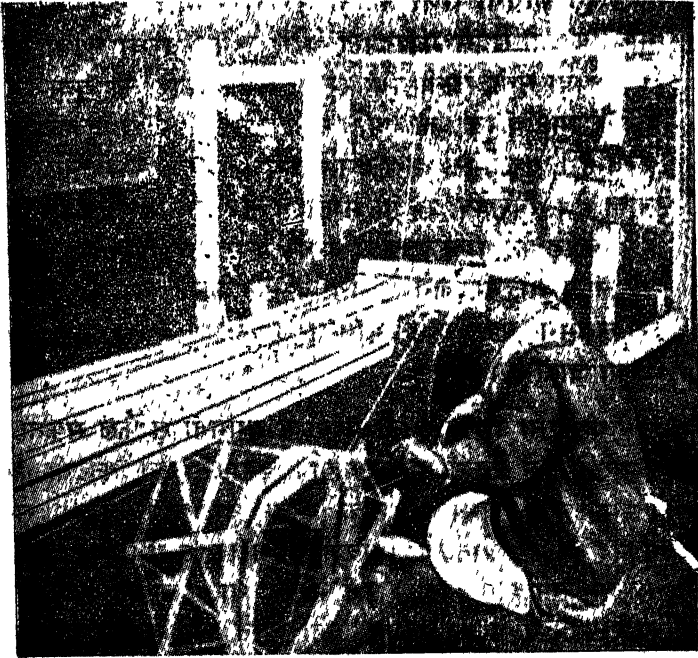
अंग्रेजों के भारतवर्ष में आने के पहले हमारे देश में अनेकों घरेलू उद्योग-धन्धे थे। उनकी बनाई हुई वस्तुएँ संसार भर में प्रसिद्ध थीं। उदाहरण के लिये मुर्शिदाबाद की धोतियाँ, लखनऊ का छींट, भागलपुर और बनारस के रेशमी कपड़े, मैसूर तथा ट्रावनकोर के हाथीदाँत के खिलौने, अलीगढ़ के ताले, बनारस का जरी का काम, आगरे के जूते, और काश्मीर के कालीन को ले लीजिये। इन वस्तुओं की माँग संसार के कोने-कोने से आती थी। यही नहीं भारतवर्ष में फौलाद का काम ऐसा बनता था कि विदेशी देखकर अर्चभित हो जाते थे। यहाँ की वास्तुसिद्धि ऐसी होती थी कि हजारों वर्ष हो जाने पर भी उनकी चमक नहीं गई। भारतवर्ष में फूलों से इतना अच्छा इत्र तैयार किया जाता था कि उसकी माँग दूर दूर तक थी। पर दुर्भाग्य से यह सब धन्धे धीरे-धीरे समाप्त हो गये। मिलों के खुल जाने से तथा भारतीय रजवाड़ों के पतन के बाद यह धन्धे भी समाप्त ही हो गये। ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने इन्हें जड़ से उखाड़ फेंकने में कोई कसर न उठा रखी। यही कारण है कि आजकल हम केवल प्राचीन गौरव को ही लिये बैठे हैं; अब हमारी वस्तुओं की वह धाक नहीं।

ग्रामोण उद्योग-धन्धे

यद्यपि हमारे देश की धाक विदेशों में समाप्त हो गई है फिर भी हमारे किसान अपनी आवश्यकता की कुछ वस्तुएँ गाँवों में घरेलू-उद्योग-धन्धे के तरीके पर तैयार कर लेते हैं। इनका नीचे वर्णन किया जाता है—

सूत कातना तथा कपड़ा बुनना—हमारे देश का तथा गाँवों का भी सबसे महत्वपूर्ण घरेलू उद्योग-धन्धा कपड़ा बुनना है। कपड़ा सूती, ऊनी तथा रेशमी सभी प्रकार का बुना जाता है। रेशमी कपड़ा तो अधिकतर कपड़े पर ही जुलाहे तैयार करते हैं। यह मिलों द्वारा हमारे देश में बहुत कम तैयार किया जाता है। विशेषतः रेशमी साड़ी तो सब जुलाह ही तैयार करते हैं। कपड़े के घरेलू उद्योग-धन्धे में हमारे देश के लगभग १५ लाख आदमी लगे हैं तथा देश के कपड़े का कुल उत्पादन का लगभग एक-तिहाई भाग घरेलू उद्योग धन्धों द्वारा तैयार किया जाता है।

यह ऐसा उद्योग है जो गाँवों में सुगमता से फैल सकता है। हमारे देश में स्त्रियाँ पहिले चर्खा चलाकर सूत कातती थीं। ईससे उनका स्वास्थ्य भी ठीक रहता था और बेकार समय बर्बाद भी नहीं होता था। विशेषतः गरीब तथा विधवा औरतों का तो सूत कात कर ही पेट भरता था। चरखा खरीदने में चार-पाँच रुपये से अधिक नहीं लगते और इसको चलाने में कोई हुनर की भी आवश्यकता नहीं। यदि कोई सात आठ-बन्टे चर्खा चलाये तो अपनी रोजी बख्शी चला सकता है और साथ ही आवश्यकता के लिये कपड़े भी तैयार कर सकता है। इसकी उपयोगिता देखकर ही महात्मा गांधी ने इस उद्योग के ऊपर इतना जोर दिया था और चर्खा तथा सूत कातना कांग्रेस प्रोग्राम का एक प्रधान अंग माना था। गांधीजी की ही कृपा से अखिल भारतीय ग्राम-उद्योग सत्र की स्थापना हुई थी जिसने आजकल गाँवों में कपड़ा बनाने के अनेकों केन्द्र खोल रखे हैं।



चित्र ७—कपड़ा बुनना

महात्मा गांधी ने 'यंग इंडिया'* अखबार में चर्खे के बारे में लिखा था कि "चर्खे का उद्देश्य अन्य किसी उद्योग को नष्ट करने का नहीं है। इसका उद्देश्य किसी भी मनुष्य को जो अन्य उद्योगों से अच्छी आमदनी कमा सकता है अपनी ओर खींच लेने का भी नहीं है। और इसलिये उसकी उपयोगिता

*देखिये 'यंग इंडिया' के २१ तथा २८ अक्टूबर, १९२६ के अंक।

इस दृष्टि से नहीं देखना चाहिये कि उससे बहुत अधिक आमदनी हो सकती है या नहीं। उसके पक्ष में केवल यही बात कही जा सकती है कि यही केवल ऐसा उद्योग है जो किसानों की वर्ष में ६ माह की बेकारी को हल कर सकता है।”

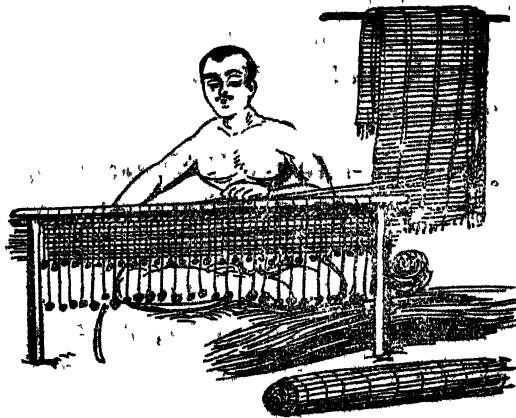
कपड़े बुनने के घरेलू उद्योग-धन्धे में कई काम शामिल हैं। पहले तो कपास लाकर उसे ओटना पड़ता है जिससे रुई और बीज अलग-अलग हो जायँ। इसके बाद रुई को धुनना पड़ता है। धुनने के बाद रुई को कातकर सूत बनाना पड़ता है। सूत बन जाने पर करघे से उसका ताना-बाना पूरकर कपड़ा बुनना पड़ता है। जब कपड़ा तैयार हो गया तो उसे करघे से निकाल कर धोना पड़ता है। धोने के पश्चात् उसे रँगा जाता है तब कहीं कपड़ा तैयार होता है।

ऊपर बताये गये विभिन्न कार्यों को देखकर आप समझ सकते हैं कि इस उद्योग के करनेवाले को कितना प्रबन्ध करना पड़ता होगा। पहले तो उसे कपास, कपास ओटने की मशीन, धुना, चर्खा, करघा, धोने का सोड़ा तथा रँग का प्रबन्ध करना पड़ता है। रुई को ओटकर, धुनकर, तथा कातकर जब वह कपड़ा बना लेता है और धो तथा रँगकर सुखा लेता है तो उसे बेचने का प्रबन्ध करना पड़ता है। इसके लिये वह बाजार जाकर विभिन्न दूकानों पर घूम-घूमकर यह देखता है कि उसको कहीं मूल्य अधिक मिलेगा या किस बाजार में अधिक मूल्य मिलेगा। उसको यह ध्यान रखना पड़ता है कि आज-कल किस तरह के कपड़े की, किस डिजाइन की, तथा किस रँग की अधिक माँग है। उसी तरह का वह कपड़ा तैयार करता है जिससे कि उसका कपड़ा शीघ्र ही बिक सके।

कालीन, कम्बल, आसनी और निवाड़ बनाने का उद्योग

कपड़े के साथ-साथ ही कालीन, कम्बल, आसनी और निवाड़ बनाने का काम भी गाँवों में होता है। कालीन जूट, मूँज तथा सूत के बनते हैं। कम्बल ऊन के बनते हैं तथा निवाड़ सूत की।

नारियल की जटाओं से सम्बन्ध रखनेवाले उद्योग— नारियल के फल के ऊपर उगनेवाली जटाओं को इकट्ठा करके इनसे चटाइयाँ, चिक, पर्दे, गलीचे, ब्रश आदि बनाये जाते हैं।



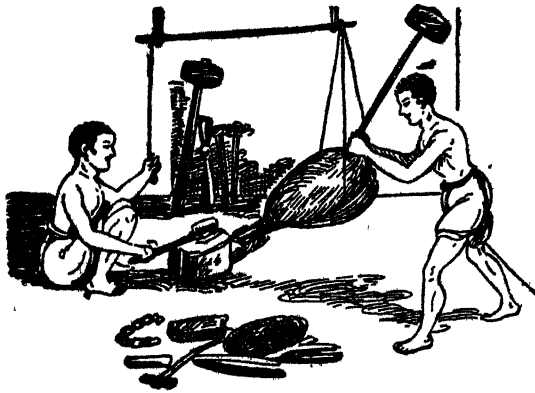
चित्र ८—चटाइयाँ बनाना

यह उद्योग भारतवर्ष में ट्रावमकोर तथा मालावार तट तक ही सीमित है। ट्रावमकोर से यह जटाएँ कुच्छे माल के रूप में विदेश भेजी जाती हैं। सन् १९२६ में ६९ लाख रुपये की जटाएँ विदेश गई थीं। यदि उनका निर्यात रोक दिया जाय तो देश में इससे सम्बन्ध रखनेवाले उद्योग-धन्धे का भी बर्बाद हो सकता है।

रस्सी बनाने का उद्योग—रस्सी बटने का काम प्राचीन समय में काफी चालू था। परन्तु अब यह धीरे-धीरे गिरता जा रहा है। फिर भी गाँववाले फालतू समय में रस्सी बँटते हैं। यह जूट या मूँज की बनती हैं।

रस्सी, सुतली, आदि रोज में काम आनेवाली वस्तुएँ हैं। फिर भी यह हमारे देश में काफी नहीं बनती और लगभग १० लाख रुपये की रस्सी तथा ट्वाइन विदेशों से आती है। यदि गाँववाले इस उद्योग की तरफ ध्यान दें तो वह काफी लाभ उठा सकते हैं।

लुहारगिरी—गाँव में किसानों को कुल्हाड़ी, फावड़ा, खुरपी, हँसिया आदि लोहे के सामानों की बराबर आवश्यकता



चित्र ९—लुहार

पड़ती है। यह सब वस्तुएँ लुहार बनाते हैं। लोहे को आग में तृष्णाकर और लालकर वह हथौड़े की मार से उन्हें विभिन्न

शकलों में बदल देते हैं। यही नहीं सामान टूट जाने पर लुहार उसे पुनः ठीक भी कर देते हैं। आज-कल लोहे के कारखाने बहुत-सी वस्तुएँ बनाने लगे हैं जो लुहारों की बनाई हुई चीजों से अधिक मजबूत होती हैं। इसलिये गाँव के लुहारों का महत्व कम होता जा रहा है।

बढ़ईगीरी—बढ़ईगीरी का काम भी गाँव में लोग करते हैं। इनका काम लोहे के सामानों में (फावड़ा, खुरपी, चाकू आदि में) हथ्या डालना ही नहीं वरन् यह खाट के पावे, भेज, कुर्सी,



चित्र १०—बढ़ई

चौकी स्टूल आदि भी बनाते हैं। इस उद्योग में कुछ पूँजी भी व्यय नहीं करनी पड़ती। केवल कुछ औजार खरीदने पड़ते हैं तथा इस काम का सीखना भी आसान है।

चमड़े का काम—गाँवों में चमड़े का काम भी होता है। परन्तु यह काम केवल नीची जाति के लोग ही करते हैं। गाँववालों के पास गाय, बैल, भैंस, भैंसा, बकरी, घोड़ा, गूँदा आदि

जानवर होत हैं। इनके मरने के बाद चमार लोग इन्हें कुछ दामों पर खरीद ले जाते हैं तथा इनकी खाल निकाल लेते हैं। खालों को पक्का करके तथा उसको रंगकर उनसे तरह-तरह के सामान बनाये जाते हैं जैसे जूता, चप्पल, चरखा, घोड़ों की लगाम, आदि।



चित्र ११—मोची

हमारे देश से कच्चा चमड़ा बड़ी मात्रा में प्रति वर्ष विलायत जाता है। वहाँ से वह पक्का होकर पुनः स्वदेश लौट आता है। केवल इसी कार्य के लिये हमारे देश का लाखों रुपया विलायत परन्तु चला जाता है। यदि चमड़ा पक्के करने के कारखाने हमारे अहाँ खुल जायें तो बहुत सा रुपया बच जाय।

आजकल फैक्टरी में बने हुये जूतों का पहनना अधिक प्रचलित हो गया है। गाँव के मोची के बने हुये जूते केवल गाँववाले ही पसन्द करते हैं क्योंकि वह मजबूत तथा सस्ते होते हैं। परन्तु क्योंकि उनमें सफाई नहीं होती इसलिये शहर के लोग उन्हें कम पसन्द करते हैं। सस्ते रबड़ के जूतों का भी गाँवों में प्रयोग बढ़ गया है जिसके कारण चमड़े का काम करने-वालों का रोजगार कम होता जा रहा है।

मिट्टी के बर्तन बनाने का प्रयोग—गाँव में कुम्हार मिट्टी के बर्तन बनाता है। वह परत-परत की चाक घुमाकर उस पर रखी गाली मिट्टी से लोथर, कर्ई, सुराहा, हँडिया, मटकी, घड़ा, प्याली, चिखम, आदि बनाता है। उसी तरह के मिट्टी के खिलौने



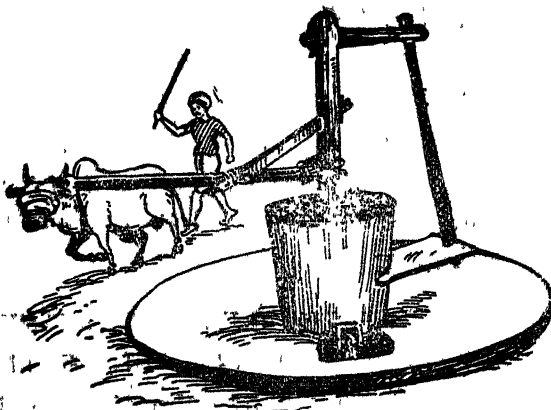
चित्र १२—कुम्हार

भी वही बनाता है। सामान बना लेने के बाद वह उन्हें राख में दबाकर आग में गर्म करके लाल कर देता है। क्योंकि कुम्हार

का काम बिना धूप के नहीं चल सकता इसलिये वह बरसात में काम नहीं करता ।

• हमारे देश में विवाह-शादी के अवसर पर तथा अन्य त्यौहारों पर मिट्टी के बतन व खिलौनों का विशेष स्थान है । दावत के समय भी मिट्टी के बर्तन काम में लाये जाते हैं । प्रत्येक सुअवसर पर मिट्टी के घड़े से काम लिया जाता है । इसलिये कुम्हार के काम में कमी नहीं आती ।

५ तेल निकालने का उद्योग—गाँवों में यह एक महत्वपूर्ण काम है । तिली राई, सरसों, तिली, अंडी, नारियल, मूँगफली, बिनौले आदि से तेल निकालते हैं । पर अधिकतर वह सरसों



• चित्र १३—तेल निकालना

और तिली का ही प्रयोग करते हैं । तेल निकालने के लिये उनके पॉस कोल्लू होती हैं जिनको एक बैल चलाता है । बैल के आँख



प्रारंभिक अर्थशास्त्र

पर पट्टी बाँध दी जाती है जिससे वह चक्कर खाकर गिर न जाय और वह बराबर घूम-घूमकर तेल निकालता रहता है।

आजकल तेल निकालने के लिये बड़े-बड़े कारखाने भी खुल गये हैं। लोहे के कोल्हू भी आजकल चल गये हैं जो बिजली से चलते हैं। परन्तु काठ के कोल्हू का तेल सबसे अधिक फायदेमन्द होता है। इसलिये अब भी इन कोल्हूओं का एक विशेष स्थान है।

तेल जलाने, बदन में मलने, सिर में डालने तथा भोजन बनाने के काम में आता है। इस उद्योग की काफी आगे बढ़ाया जा सकता है और गाँववालों को इसकी तरफ उचित ध्यान देना चाहिये।

गुड़ बनाने का उद्योग—भारतवर्ष में गन्ना बहुतायत से पाया जाता है। गाँववाले गन्ने का रस निकालकर उससे गुड़ बनाते हैं। गुड़ बनाने के लिये गन्ने के रस को लोहे के एक बड़े कढ़ाये में उबालते हैं। जब रस उबल जाता है तो उसे जमा देते हैं और गुड़ तैयार हो जाता है। युक्तप्रान्त में गुड़ प्रान्त के पश्चिमी भाग में अधिक बनता है। मेरठ, सहारनपुर आदि नगर इसके लिये प्रसिद्ध हैं।

गन्ने के अतिरिक्त ताड़ से भी गुड़ बनाया जा सकता है। ताड़ का गुड़ गन्ने के गुड़ से भी अधिक लाभदायक होता है। यदि थोड़ा-सा गुड़ कोई व्यक्ति प्रतिदिन खाये तो उसे बहुत सी बीमारियाँ कभी हो ही नहीं सकती। गुड़ में ६ प्रतिशत प्रोटीन और ६ प्रतिशत ही खनिज नमक होता है जो कि बढ़िया चीनी में नहीं पाया जाता। इसमें आयोडीन और लोहा भी पाया जाता।

है। इसलिये इसके सेवन से पीलिया की बीमारी दूर हो जाती है।

हमारा देश चीनी के उत्पादन में सबसे बड़ा-चढ़ा है। इसलिये देश में उत्पादित गन्ना अधिकतर मिलों में चीनी बनाने के काम में आ जाता है और गुड़ के लिये बहुत कम बचता है। अतएव यदि गाँववाले ताड़ से गुड़ बनाने की तरफ ध्यान दें तो अच्छा होगा। अभी तक ताड़ के पेड़ केवल ताड़ी निकालने के ही काम आते हैं। यदि इनसे गुड़ निकालना आरम्भ कर दिया जाय तो गाँववालों को काफी लाभ होगा। ग्राम-उद्योग संघ की वार्षिक रिपोर्ट में लिखा है कि ताड़ के १५ पेड़ों से यदि गुड़ निकाला जाय तो एक व्यक्ति १००) माहवार तक कमा सकता है।

मधु-मक्खियाँ पालना—गाँववाले यह काम भी बड़ी सुगमता से कर सकते हैं। लकड़ी के बक्सों में मक्खियों को पालकर शहद निकाला जा सकता है। शहद निकालने के लिये अब मक्खियों को मारने या उनका छत्ता तोड़ने की आवश्यकता नहीं। अब तो ऐसी तरकीबें निकल आई हैं कि शहद सुगमता से निकल आता है। इस काम के करने में केवल एक काठ के सन्दूक का ही व्यय है। मधु-मक्खी का पालना बड़ी सुगमता से सीखा जा सकता है।

लाख की खेती—पलाश, पीपल, कोसम, बेर, आदि के पेड़ों में लाख के कीड़े घर बना लेते हैं। कीड़ों के उड़ जाने पर पेड़ों की छाल को छीलकर उससे तरह-तरह की कीमतों वस्तुएँ बनाई जा सकती हैं। लाख प्रामोफोन रिकार्ड, रंग, खिलौने

चूड़ियाँ, मोमबत्ती, बटन आदि बनाने के काम में आती है। आजकल लाख छोटा नागपुर, उड़ीसा, तथा मध्य प्रान्त में ही इकट्ठा की जाती है। इसको हमारे प्रान्त के गाँवों में भी इकट्ठा किया जा सकता है और इससे गाँववालों को आमदनी भी अच्छी हो जावेगी।

हाथ से कागज बनाना—यह रोजगार हमारे गाँवों में पुराने समय से चला आया है। परन्तु मिलों से कागज बनने के कारण गाँववालों को कागज बनाना लाभदायक नहीं रहा है। परन्तु हमारे यहाँ कागज की बहुत कमी है। इसलिये गाँव वाले यदि कागज बनावें तो उसकी माँग अवश्य होगी। कागज रहो कपड़े, घास, सन, बाँस, आदि को सड़ाकर बनाया जाता है। कागज बनाने का सामान भी गाँव के बड़ई बड़े सूते कर्मों में तैयार कर देते हैं।

घी, दूध, मक्खन आदि का काम—गाँववालों के पास दूध देनेवाले जानवर तो होते ही हैं। वह दूध से घी, मक्खन या खोया बनाते हैं। कभी-कभी वह दूध भी बेचते हैं और इससे आमदनी भी करते हैं। दुर्भाग्य से गाँववालों का सफाई की तरफ ध्यान नहीं। उनके चौपाये गन्दी जगह पड़े रहते हैं जिसके कारण उनको बीमारियाँ हो जाती है। दूध निकालते समय दूध को हाथ से छूते हैं और दूध में अनेकों कीड़े पड़ जाते हैं। मक्खन और घी भी निकालते समय वह गन्दगी दूर करने की तरफ ध्यान नहीं देते। यह अत्यन्त आवश्यक है कि गाँववालों दूध, घी तथा मक्खन को अधिक से अधिक सफाई के साथ निकालें।

अन्य धन्धे—इनके अतिरिक्त गाँववाले अन्य घरेलू उद्योग-धन्धों में भी लगे रहते हैं। कोई खेतों में फलों के पेड़ लगाकर तो फल बेचते हैं या फलों का आचार या मुरब्बा बनाकर उन्हें बेचते हैं। कभी-कभी वह साग और तरकारी बोक़र उसे बेचते हैं। कुछ आटा पीसने, चावल कूटने, मूँगफली छीलने, कपास ओटने, चटाई बनाने, चिक बनाने, बटन बनाने आदि का भी काम करते हैं। मुर्गी पालने तथा अन्डा बेचने का भी उद्योग महत्वपूर्ण होता जा रहा है। इसमें कोई विशेष पूँजी लगाने की आवश्यकता भी नहीं पड़ती और मुर्गियों को थोड़ी सी जगह में रखा जा सकता है। इस उद्योग का देश में अच्छा भविष्य है।

घरेलू उद्योग-धन्धों की उन्नति के मार्ग में कठिनाइयाँ—
दुर्भाग्य से हमारे देश में ग्रामीण धन्धे तथा घरेलू उद्योग धन्धों की आशावात उन्नति नहीं हुई है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) इन धन्धों के चलाने के लिये कच्चा माल बराबर, समय पर तथा समुचित मात्रा में नहीं मिलता। गाँववाले गाँव के महाजन या दूकानदार के पास ही कच्चा माल लेने जाते हैं। गाँव के दूकानदार अच्छा माल रखने के पक्ष में कायल नहीं। वह तो केवल सस्ती चीजें रखना चाहते हैं जिससे उनको फायदा अधिक हो।

(२) गाँव के लोग कम पढ़े-लिखे, आधुनिक आदिपकारों से अनाभज्ञ पुरानी लकीर के फकीर हैं। इसलिये वह समय

के साथ नहीं चलते जिसके कारण वह सरते दामों पर चीजें नहीं बना सकते ।

(३) हमारे देश में ऐसी कोई भी संस्था नहीं जो कि ग्रामीण उद्योग-धन्धों द्वारा बनी हुई वस्तुओं की माँग का ठीक-ठीक पता लगावे तथा इन धन्धों द्वारा बने हुए सामानों का उचित विज्ञापन करे । परिणाम यह होता है कि गाँवों में बनी हुई अच्छी वस्तुएँ उपभोक्ताओं के पास तक पहुँच नहीं पाती ।

उन्नति के उपाय—इन उद्योग-धन्धों को आगे बढ़ाने के लिये निम्नलिखित उपायों पर चला जा सकता है :—

(१) गाँव वालों को आवश्यक कच्चा माल उचित दाम पर तथा ठीक समय पर मिलने का प्रबन्ध किया जाय । यदि सरकार स्वयं ऐसी दूकानें खोले तो कार्य अच्छी तरह चल सकेगा ।

(२) किसानों को उद्योग-धन्धे चलाने की समुचित शिक्षा दी जाय । यदि प्रत्येक गाँव में घरेलू उद्योग-धन्धे सिखाने का भी एक अध्यापक रख दिया जाय जो कि रात्रि के समय गाँव-वालों को उचित शिक्षा तथा सलाह दे तो यह काम आसानी से हो सकता है ।

(३) इसी अध्यापक का यह भी काम हो कि गाँववालों को उद्योग-धन्धों के बारे में नई-नई बातें भी बतावे तथा उन तरीकों को भी बतावे जिनका आविष्कार हाल में ही हुआ हो तथा जो उत्पादन बढ़ाने में सहायक हों । यदि सरकार कोई कारखाना खोलकर नये-नये औजारों को बनवाकर गाँव-गाँव में उनका प्रचार करावे तो बहुत अच्छा हो ।

(४) किसान इतने गरीब हैं कि उनको थोड़ी सी पूँजी व्यय करना भी बर्तन होता है। इसलिये घरेलू धन्धे चलाने के लिये उनको उधार रूपया देने का भी प्रबन्ध होना चाहिये। इस काम में सहकारी ऋण समितियाँ अच्छा सहयोग दे सकती हैं।

(५) उनके द्वारा बने हुए सामान के क्रय-विक्रय का ठीक से प्रबन्ध होना चाहिये। बड़े-बड़े शहरों में सरकार के निरीक्षण में सहकारी दुकानें खोली जायें जो घरेलू उद्योग-धन्धों द्वारा बनी हुई वस्तुओं का विज्ञापन करें तथा बेचें।

इन धन्धों को बढ़ाने के लिये सरकार का सहयोग अत्यन्त आवश्यक है। बिना सरकार की सहायता के इनकी उन्नति होना कठिन है।

सारांश

-भारतवर्ष एक कृषि-प्रधान देश है। इस कारण गाँववाले एक-वर्ष में ४ से ६ महीने तक बेकार रहते हैं। इस बेकार समय में वह घरेलू उद्योग-धन्धों में लगे रह सकते हैं।

घरेलू उद्योग-धन्धों का भारतवर्ष में विशेष महत्व है। यह गरीब किसानों को रोटी दे सकेंगे, बेकार समय में रोजगार देगे तथा देश में वस्तुओं की कमी को दूर कर सकेंगे।

परन्तु यह आवश्यक है कि यह धन्धे ऐसे हो जिनमें कम पूँजी लग, जिनको सीखने में अधिक समय न लगे तथा उनको बढ़ करने में हानि न हो।

हमारे देश में मुख्य-मुख्य ग्रामीण उद्योग-धन्धे निम्नलिखित हैं:—

(१) सूत कातना तथा कपड़ा बुनना, (२) कालीन, कम्बल, आसना

तथा बिनाड़ बनाने का काम, (३) नारियल की जटाओं में सम्बन्ध रखनेवाले उद्योग; (४) रस्सी बनाने का काम, (५) लुहारगिरी, (६) बटुईगिरी, (७) चमड़े का काम, (८) मिट्टी के बर्तन बनाने का उद्योग, (९) तेल निकालने का काम, (१०) गुड़ बनाने का उद्योग, (११) मधु-मक्खी पालन, (१२) लाख की खेती, (१३) हाथ से कागज बनाने का काम, (१४) घी, दूध, मक्खन का काम, (१५) फल, साग, तरकारी पैदा करने का काम ।

१. घरेलू उद्योग-धन्धों से आप क्या महत्त्व समझते हैं ? हमारे प्रान्त में इनका क्या महत्त्व है ?

२. कपड़े बुनने के उद्योग-धन्धे में क्या क्या काम करने पड़ते हैं ? उसमें पबन्धक का क्या काम रहता है ?

३. अपने प्रान्त के मुख्य-मुख्य उद्योग-धन्धों का वर्णन कीजिये । क्या कुछ ऐसे धन्धे भी हैं जिनको सुगमता से बढ़ाया जा सकता है ?

४. ग्रामीण उद्योग-धन्धे तथा घरेलू उद्योग-धन्धों में हमारे देश में क्या कुछ मेह है ? समझाकर लिखिये ।

५. ग्रामीण उद्योग-धन्धों को किस प्रकार उन्नतिशील बनाया जा सकता है ? आजकल उनमें क्या क्या खराबियाँ हैं ?

६. हमारे देश की सरकार को घरेलू उद्योग-धन्धोंकी उन्नति के लिये क्या काम करना आवश्यक है ?

७. एक घरेलू उद्योग-धन्धे की, जिसको आपने स्वयं देखा है, वर्णन कीजिये तथा उसमें सुधार भी बताइये ।

हाई-स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. अपने स्थान के कुछ घरेलू उद्योग-धन्धों के नाम बताइये । उत्पादक किस प्रकार कच्चा माल इकट्ठा करते हैं, किस प्रकार श्रमी जमा करते हैं तथा बने हुये माल को किस प्रकार बेचते हैं ? क्या आप उनकी बिक्री के ढंग में कुछ सुधार के उपाय बता सकते हैं ? (१९४५)
 २. अपने स्थान के महत्वपूर्ण घरेलू उद्योग-धन्धों को बताइये । उनमें क्या खराबियाँ हैं ? उनको दूर करने के उपाय बताइये । (१९४४)
 ३. अपने स्थान के किसी घरेलू उद्योग-धन्धे की कार्य-प्रणाली, प्रबन्ध तथा बुराइयों का विस्तार पूर्ण वर्णन कीजिये । (१९४६)
 ४. आपके स्थान के कौन-कौन-से महत्वपूर्ण घरेलू उद्योग-धन्धे हैं ? उनका महत्व बताइये । उनको किन-किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है ? (१९४७)
 ५. अपने प्रान्त के ग्रामीण उद्योग-धन्धे का महत्व बताइये । उनकी सबसे महत्वपूर्ण समस्याओं पर प्रकाश डालिये । (१९४८)
-

भाग ३

उपभोग

[अध्याय १. आवश्यकताएँ । २. रहन-सहन का दर्जा ।
३. पारिवारिक आय-व्यय । ४. भोजन की मात्रा ।]

अध्याय छटा आवश्यकताएँ

धन की उत्पत्ति उपभोग के लिये की जाती है। मनुष्य इसलिये उत्पादन करते हैं जिससे कि वह अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट कर सकें। खेतों में किसान भूख मिटाने के लिये अमाज पैदा करते हैं, मिलों में कपड़ा पहनने के लिये तैयार किया जाता है, बड़ई बैठने के लिये कुर्सी बनाते हैं तथा हलवाई खाने के लिये मिठाई बनाते हैं। इस तरह आप देखेंगे कि हर एक उत्पादन-कार्य का उद्देश्य आवश्यकता को दूर करना है। यदि हमारी आवश्यकताएँ कम हो जायँ तो हमको बहुत से काम करने की जरूरत ही न पड़े। इसके विपरीत ज्यों-ज्यों आवश्यकताएँ बढ़ती जावेंगी, उतने ही हमको अधिक काम भी करने पड़ेंगे।

उपभोग का अर्थ—दिन प्रति दिन की भाषा में उपभोग का अर्थ किसी वस्तु को समाप्त या नष्ट कर देना है। भूख लगने पर आप रोटी खा लेते हैं तो यह कहा जाता है कि रोटी समाप्त हो गई। परन्तु यह कहना सर्वथा गलत है। वैज्ञानिकों का यह कहना है कि भौतिक पदार्थ कभी नष्ट नहीं होते। वह तो केवल एक रूप छोड़कर दूसरा रूप ले लेते हैं। रोटी खा लिये जाने पर रोटी नहीं रहती, परन्तु उसका लहू तथा अन्य पदार्थ बन जाते हैं। पानी गरम करने पर वह उड़ जाता है। इसके मानी यह नहीं कि पानी नष्ट हो गया—वह पानी के स्थान पर भाप का रूप ले लेता है।

इसी कारण अर्थशास्त्र के विद्वान् उपभोग शब्द का दूसरी तरह अर्थ करते हैं। उपभोग वह क्रिया है जिसके द्वारा वस्तुओं की उपयोगिता कम हो जाती है। खा लेने पर रोटी की उपयोगिता, पहन लेने पर कपड़े की उपयोगिता, लिख लेने पर काग़ज़ की उपयोगिता, तथा पहन लेने पर जूते की उपयोगिता कम हो जाती है क्योंकि यह पुराने हो जाते हैं और बाजार में उनका मूल्य घट जाता है। इसलिये यह सब क्रियाएँ उपभोग की क्रियाएँ हैं।

उपभोग की क्रिया कभी शीघ्र तथा कभी देर तक चलती रहती है। कभी-कभी तो वह क्रिया शीघ्र ही समाप्त हो जाती है, कभी उसमें महीनों लग जाते हैं और कभी वर्षों। उदाहरण के लिये प्यास के समय आप पानी पी लेते हैं। इस उपभोग की क्रिया में पानी की उपयोगिता पीते ही समाप्त हो जाती है। ठंड से बचने के लिये आप कपड़े पहनते हैं। वह कपड़े दो-तीन साल में फटते हैं। तो यह उपभोग की क्रिया दो-तीन साल बाद पूरी होती है। जिस मकान में आप रहते हैं उसका आप उपभोग करते हैं। वह क्रिया ५०-६० वर्ष तक चलती रहती है। इसलिये यह समझ लेना चाहिये कि उपभोग की क्रिया के लिये यह आवश्यक नहीं कि वस्तु की उपयोगिता फौरन नष्ट हो जाय।

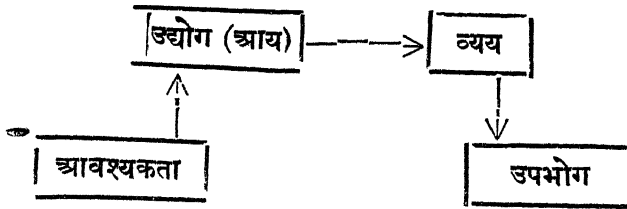
आवश्यकता की परिभाषा—किसी वस्तु का उपभोग आप तभी करेंगे जबकि उस वस्तु की आपको आवश्यकता हो। इसके मानी यह हुए कि इस संसार की समस्त क्रियाओं का उद्गम आवश्यकताओं से है। पसीने से लथपथ मजदूर, कड़ी धूप में काम करनेवाले किसान, गर्म लू की परवाह न करनेवाले बंजारे सभी तो आवश्यकताओं की पूर्ति के

आवश्यकता, आय तथा संतोष

आपको बताया जा चुका है कि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये ही मनुष्य रुपया कमाता है। एक महीने में जो वह धन कमाता है वह उसकी माहवारी आय कहलाती है तथा एक वर्ष में वह जो कुछ कमाता है या रुपया पैदा करता है वह उसकी वार्षिक आय कहलाती है। इसी रुपया को व्यय करके वह अपनी आवश्यकताओं की सन्तुष्टि करता है।

परन्तु एक मनुष्य की इच्छाएँ अनेक होती हैं और सभी को पूरा करना उसके लिये संभव नहीं। एक तीस रुपये माहवार का क्लर्क भी यह चाहता है कि यदि हो सके तो वह नये-नये कपड़े पहनकर रोज़ ऑफिस जाय, चढ़ने को उसके पास नई-सी साइकिल हो तथा दोपहर में छुट्टी के समय बढ़िया-बढ़िया भोजन। परन्तु आमदनी कम होने के कारण वह इन सब इच्छाओं को पूरी नहीं कर सकता। इसलिये वह उन इच्छाओं को सबसे पहले सन्तुष्टि करेगा जो सबसे तीव्र हैं तथा जिनसे उसको सबसे अधिक उपयोगिता मिलेगी। इसके बाद वह उससे कम आवश्यक वस्तु का उपभोग करेगा, और फिर सबसे कम आवश्यक। इसी तरह वह अपनी आवश्यकताओं को उपयोगिता के अनुसार सन्तुष्टि करेगा। इस नियम का सभी लोग पालन करते हैं।

मनुष्य को आवश्यकताएँ होती हैं जिनको पूरा करने के लिये वह धन कमाता है। धन को व्यय कर वह उस वस्तु को खरीद लेता है और फिर उस वस्तु का उपभोग कर सन्तुष्टि हो जाता है। आजकल के समय में आवश्यकताओं को सन्तुष्टि करने में धन का महत्वपूर्ण काम रहता है।



आवश्यकता तथा उद्योग—लेकिन बिना उद्योग के धन कमाया नहीं जा सकता। मनुष्य को जितनी अधिक तथा तीव्र आवश्यकताएँ होती हैं उतना ही अधिक वह धन कमाने के लिये उद्योग करता है। पुराने समय में आदिमियों की आवश्यकताएँ कम थीं। उनको भूख लगती थी तो जंगल के जानवर मारकर या पेड़ों से फल नोड़कर भूख मिटा लेते थे। तन टकने के लिये वह पेड़ों से पत्ते ले लेते थे या जानवरों की खालें। परन्तु धीरे-धीरे उनकी आवश्यकताएँ बढ़ने लगीं। इसके लिये उन्हें अधिक परिश्रम तथा उद्योग करना पड़ने लगा। आग जलाकर वह मांस पकाना सीख गये। बाद में खेती करना तथा जानवरों का दूध पीना भी सीख गये। इसके लिये उन्होंने खेती करना तथा जानवर पालना शुरू कर दिया। धीरे-धीरे उन्होंने नये-नये आविष्कार भी किये। लोहे के तीर, चाकू, छुरा, तलवार बनाना प्रारम्भ हो गया। चरखे द्वारा कपड़ा भी तैयार होने लगा। फिर शक्ति का आविष्कार हुआ। मशीनें लकड़ी जलाकर चलने लगीं। बाद में पानी की शक्ति का आविष्कार आरंभ हुआ। इसके बाद भाप का आविष्कार हुआ और अंत में बिजली का। कौन जाने कि अब अनुमाण शक्ति (Atomic energy) का उत्पादन कार्य में उपयोग होने लगे।

इसीसे आप समझ सकते हैं कि आवश्यकता तथा उद्योग में गहरा सम्बन्ध है। आवश्यकता की पूर्ति के लिये मनुष्य उद्योग करता है और अपनी आवश्यकताओं को सन्तुष्ट करता है। परन्तु उद्योग करते-करते वह नये-नये आविष्कार कर लेता है जिससे उसको आवश्यकताएँ बढ़ जाती हैं जिनके कारण उसको नये-नये उद्योग करने पड़ते हैं। नये-नये उद्योग करके वह आवश्यकताओं की पूर्ति करता है। परन्तु फिर नये आविष्कार होने के कारण नई-नई आवश्यकताएँ उठ खड़ी होती हैं जिनके लिये नये-नये उद्योग करने पड़ते हैं। आवश्यकता—उद्योग—आविष्कार—नई आवश्यकताएँ—नये उद्योग—नये-नये आविष्कार—नई-नई आवश्यकताएँ—यही जीवन का चक्र है जिसमें पड़कर मनुष्य रात-दिन मशीन की तरह काम करता रहता है। इसमें आवश्यकता ही सब बातों की सृजनहार है इसलिये इसका महत्व बहुत बड़ा है।

आवश्यकताओं के लक्षण

आवश्यकताओं के निम्नलिखित लक्षण हैं :—

(१) आवश्यकताएँ अपरिमित होती हैं—एक मनुष्य की आवश्यकताओं का कभी अन्त नहीं होता। एक के बाद दूसरी और दूसरी के बाद तीसरी आवश्यकता उठ खड़ी होती है। वह कभी भी समाप्त नहीं होती। इसी के कारण मनुष्य निरन्तर प्रगति की ओर चलते रहते हैं और वह कभी सन्तुष्ट नहीं होते पाते।

(२) लेकिन हर एक आवश्यकता की पृथक्-पृथक् पूर्ति हो सकती है—उदाहरण के लिये यदि किसी समय एक

आदमी भूखा है तो रोटी खा लेने के पश्चात् उसकी भूख समाप्त हो जाती है और उस मनुष्य की भोजन की इच्छा पूरी हो जाती है। इसी तरह यदि किसी आदमी को कोट की आवश्यकता है तो एक कोट बनवा लेने के बाद उसकी आवश्यकता समाप्त हो जाती है।

(३) आवश्यकता पूरी हो जाने के बाद भी वह पुनः जीवित हो जाती है—एक आवश्यकता यदि किसी समय सन्तुष्ट कर ली जाय तो यह जरूरी नहीं कि वह आवश्यकता फिर न मालूम हो। सुबह भोजन कर लेने के बाद रात को पुनः भोजन की इच्छा होता है। गर्मी के दिनों में लोग दिन में बीसों बार पानी पीते हैं। यद्यपि पानी की आवश्यकता प्रत्येक बार सन्तुष्ट करती जाती है।

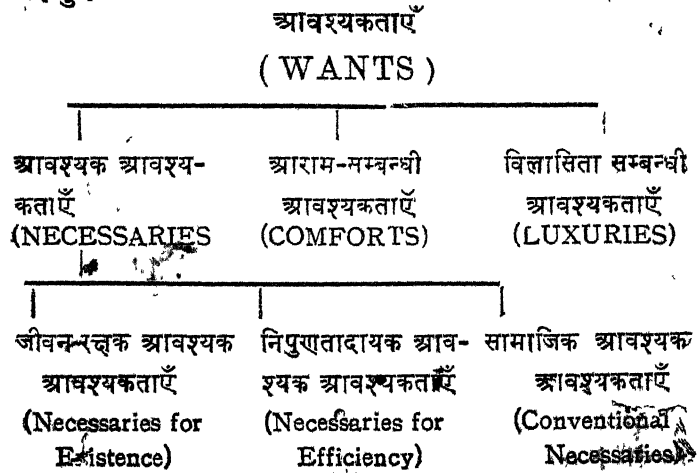
(४) आवश्यकताओं की भिन्न-भिन्न तीव्रता होती है—कोई आवश्यकता अधिक तीव्र होती है तो कोई कम। प्रायः आवश्यक आवश्यकताओं की तीव्रता आराम या विलासता की वस्तुओं से अधिक होती है। जो वस्तुएँ जीवन के लिये आवश्यक होती हैं उनको सबसे पहले सन्तुष्ट किया जाता है।

(५) आवश्यकताओं में बहुधा प्रतियोगिता रहती है—एक आवश्यकता उसी प्रकार की दूसरी आवश्यकता को हटाकर उसका स्थान लेने का प्रयत्न करती है। जैसे धूम्रपान की इच्छा को बीड़ी, चिलम, सिगरेट, या हुक्का द्वारा पूरा किया जा सकता है। रोटी गेहूँ, चना, ज्वार या बाजरा की बनाई जा सकती है। इसी तरह दूध, चाय, काफी आदि किसी का भी एक दूसरे के स्थान पर सेवन किया जा सकता है। इतने सब पदार्थों में आपस में प्रतियोगिता रहती है।

(६) आवश्यकताएँ आदत बन जाती हैं—यदि एक आदमी कुछ वस्तुओं का उपभोग बराबर करता रहे तो उनका सेवन उसकी आदत में आ जाता है और वह उन वस्तुओं का उपभोग अवश्य ही करना चाहेगा। वह वस्तुएँ उसके रहन-सहन के दर्जे का एक भाग बन जाती हैं।

आवश्यकताओं के विभाग

अर्थशास्त्र के पंडितों ने आवश्यकताओं को तीन भागों में बाँटा है (१) आवश्यक आवश्यकताएँ (२) आराम-सम्बन्धी आवश्यकताएँ तथा (३) विलासिता सम्बन्धी आवश्यकताएँ। आवश्यक आवश्यकताओं को पुनः तीन भागों में बाँटा जाता है। (अ) जीवन-रक्षक आवश्यक आवश्यकताएँ, (ब) निपुणता-दायक आवश्यक आवश्यकताएँ तथा (स) सामाजिक आवश्यक आवश्यकताएँ। इस तरह आवश्यकताओं के निम्नलिखित भेद हुए :—



आवश्यक आवश्यकताएँ —आवश्यक आवश्यकताएँ वह आवश्यकताएँ हैं जिनकी पूर्ति जीवित रहने के लिये परमावश्यक है। इनमें केवल उतनी ही वस्तु आती हैं जो जीवित रहने, मनुष्य को निपुण बनाने तथा सामाज में इच्छत रखने के लिये आवश्यक हैं। **जीवन-रक्षक आवश्यक आवश्यकताएँ** वह आवश्यकताएँ हैं जिनके बिना आदमी जीवित नहीं रह सकते। इनमें वह वस्तुएँ आती हैं जो अत्यन्त ही आवश्यक हैं—जैसे जीवित रहने के लिये आवश्यक भोजन, पानी, कपड़ा आदि। **निपुणतादायक आवश्यक आवश्यकताएँ** वह आवश्यकताएँ हैं जिनके सेवन से एक मनुष्य की निपुणता बढ़ जाती है। इनमें अच्छा तथा स्वच्छ भोजन, रहने को हवादार मकान आदि आते हैं। **सामाजिक आवश्यक आवश्यकताएँ** वह आवश्यकताएँ हैं जिनके बिना एक व्यक्ति को समाज में आदर नहीं मिल सकता। जैसे यह आवश्यक है कि यदि कोई अतिथि घर पर आये तो उसे पान या सुपाड़ी दी जाय। शादी के समय विराद्रीवालों को दावत देने की भी हमारे देश में सामाजिक प्रथा है। इसको न देनेवालों की काफ़ी बुराई होती है।

आवश्यक आवश्यकताओं के सेवन से मनुष्य को आराम मिलता है तथा उसकी निपुणता बढ़ती है। इसके विपरीत उनके उपभोग के न करने से मनुष्य को अत्यन्त दुःख होता है और उसकी निपुणता कम हो जाती है।

आराम सम्बन्धी आवश्यकताएँ —आराम सम्बन्धी आवश्यकताओं का दर्जा आवश्यक आवश्यकताओं के ऊपर है। इस विभाग में वह सब वस्तुएँ आती हैं जिनके सेवन से जीवन अधिक सुखमय हो जाता है जैसे जीवित रहने के लिये आवश्यक

भोजन से मात्रा में अधिक तथा स्वच्छ खाना, रहने के लिये हवादार मकान, पहनने को अच्छे कपड़े, बच्चों की पढ़ाई का प्रबन्ध तथा आवश्यकता के समय डाक्टर का प्रबन्ध आदि। इन वस्तुओं के सेवन से काफी आराम मिलता है तथा इनसे थोड़ी निपुणता भी बढ़ती है। परन्तु यदि इनका सेवन न किया जाय तो थोड़ी ही तकलीफ होगी और थोड़ी निपुणता भी घटेगी।

विलासिता-सम्बन्धी आवश्यकताएँ—इस विभाग में वह वस्तुएँ आती हैं जिनका सेवन आवश्यक नहीं वरन् उल्टा हानिकारक है। इन वस्तुओं के सेवन से मनुष्य को कोई लाभ नहीं होता और न उसकी निपुणता ही बढ़ती है। उल्टे उसको हानि ही होती है। जैसे शराब पीना, कीमती सिगरेटों का रात-दिन फूँकना, चरस, भाँग, गाँजा आदि नशीली चीजों का उपभोग विलासिता सम्बन्धी आवश्यकताओं की पूर्ति है।

यहाँ यह बताना आवश्यक है कि कोई पदार्थ यदि किसी एक व्यक्ति के लिये विलासिता की वस्तु है तो दूसरे के लिये आराम की तथा तीसरे के लिये आवश्यकता की वस्तु हो सकती है। उदाहरण के लिये मोटरकार ले लीजिये। यह एक किसान के लिये विलासिता की वस्तु है, एक डाक्टर के लिये आराम की तथा एक मिल-मालिक के लिये—जिसके कई मिल चल रहे हैं—आवश्यकता की। इसी तरह किसी समय एक वस्तु आवश्यक हो सकती है तो किसी दूसरी समय विलासिता। वरफ़ गर्मी के समय में आवश्यकता की वस्तु है, बरसात के समय में जब गरमी कम हो जाती है आराम की तथा जाड़े में विलासिता की। इसलिये

किस्ती भी वस्तु के बारे में यह कहा नहीं जा सकता कि वह विलासिता की वस्तु है या आवश्यकता की या आराम की। बीमार आदमी के लिये शराब आवश्यक हो सकती है और पानी जहर। यह तो मनुष्य की आवश्यकता पर निर्भर है कि कौन-सी वस्तु को किस विभाग में रखा जाय।

बचत (Savings)

मनुष्य को कुछ आवश्यकताएँ होती हैं जिनकी सन्तुष्टि के लिये वह धन कमाता है। धन कमाकर वह उन आवश्यकताओं के ऊपर व्यय करता है। परन्तु एक समझदार व्यक्ति अपना तमाम रुपया उसी समय व्यय नहीं कर देता। वह कुछ रुपया अवश्य बचाता है जिससे कि फिर कभी जरूरत के समय वह उस रुपये को काम में ला सके। यदि आदमी रुपया बचाकर रखेगा तो बुढ़ापे में, बीमारी में, बेकारी में, व्याह-शादी के समय या कोई नया व्यापार करते समय उसे दूसरों का मुँह ताकने की जरूरत नहीं पड़ेगी। वह स्वयं अपने संचित रुपये को काम में ला सकेगा। आजकल अमीर आदमियों का ही समाज में आदर होता है। इसलिये किसी भी व्यक्ति को फिजूल खर्ची नहीं करनी चाहिये। परन्तु इसके मानी यह नहीं कि आदमी कंजूस बन जाय। नहीं, आवश्यक व्यय जरूर करना चाहिये पर धन बेकार व्यय करना बुद्धिमानी नहीं।

हमारे देश में अधिकतर लोग गरीब हैं। अनुमान है कि प्रत्येक भारतीय की औसतन आय १०० रु० से १२० रु० साल या १०-१२ रु० साप्ताहिक है। इसमें कोई लाखों रुपये महीने कमाते हैं तो कुछ मूखे मरते हैं। परन्तु अधिकतर किसानों की आमदनी इतनी कम है कि वह दोनों समय भोजन भी नहीं कर पाते।

ऐसी अवस्था में उनके पास बच ही क्या सकता है ? फिर भी उनको बच्चों की शादी में काफ़ी रूपया व्यय करना पड़ता है और विरादरीवालों को दावत देनी पड़ती है। इसके लिये उन्हें रूपया उधार ही लेना पड़ता है। मिलों में काम करनेवाले श्रमिकों की दशा भी कोई अच्छी नहीं यद्यपि वह किसानों से अधिक कमाते हैं। एक तो बड़े शहरों में रहने का व्यय बहुत अधिक होता है दूसरे उनको ताड़ी पीने वा नशा करने की लत प्रायः लग जाती है जिसके कारण वह कुछ बचा ही नहीं पाते। मजदूरों को चाहिये कि वह बुरी लतों को छोड़कर धन बचाना सीखें जिससे वह अपनी दशा सुधार सकें तथा देश का भी भला कर सकें।

रूपया जोड़ना (Hoarding)

परन्तु रूपया बचाने के यह मानी नहीं कि धन जोड़कर तिजौरी में बन्द करके घर में डाल दें या उसे जमीन में गाड़ दें। यह तो बहुत बुरी बात है। यदि सभी व्यक्ति ऐसा करने लगें तो नये-नये व्यवसाय कैसे खुले और उनके लिये कहाँ से रूपया आये ? दूसरे घर पर रूपया रखने में डर भी है। उसे चोर चुराकर ही ले जा सकते हैं। इसलिये रूपया जोड़ कर घर पर कभी नहीं रखना चाहिये। उसको इस तरह उपयोग में ले आवें कि मनुष्य की स्वयं की आय भी बढ़ जावे तथा उसका रूपया भी सुरक्षित रहे। इसके लिये वह रूपया बैंक में जमा कर सूद बसूल कर सकता है या सरकारी-बौण्ड खरीद सकता है। गाँव की सहकारी समितियों में जमा करा सकता है या पोस्ट ऑफिस में जमा करा सकता है। यदि वह पढ़ा लिखा है तो अच्छी कम्पनियों के शेयर खरीद कर उससे लाभ उठा सकता है। रूपया

घर में रखने से तो देश का बड़ा आर्थिक अनर्थ होगा। इसलिये ऐसा कदापि न करना चाहिये।

सारांश

उपभोग का अर्थ किसी वस्तु की उपयोगिता कम कर देना है। उपभोग में वस्तु नष्ट नहीं होती केवल उसकी उपयोगिता कम हो जाती है।

उपभोग की क्रिया कभी शीघ्र ही समाप्त हो जाती है तो कभी देर तक चलती रहती है।

आवश्यकता मनुष्य की उस इच्छा को कहा जाता है जिसकी उसे तीव्र अभिलाषा हो, जिसको पूरा करने के लिये उसके पास पर्याप्त धन हो तथा जिसे पाने के लिये वह धन व्यय करने को तैयार हो। इच्छा तथा आवश्यकता में भेद है।

आवश्यकताओं के कारण मनुष्य उद्योग करते हैं, उद्योग से उनको जो आय होती है जिसे व्यय कर वह सन्तोष प्राप्त करते हैं। इस तरह आवश्यकता तथा उद्योग में गहरा सम्बन्ध है।

आवश्यकताओं के कई गुण हैं : (१) वह अपरिमित हैं, (२) परन्तु प्रत्येक आवश्यकता पूरी हो जाती है, (३) पूरी हो जाने के बाद वह पुनः जीवित हो सकती है, (४) आवश्यकताओं की भिन्न-भिन्न तीव्रता होती है, (५) आवश्यकताओं में बहुधा प्रतियोगिता होती है, (६) आवश्यकताएँ आदत बन जाती हैं।

आवश्यकताओं को तीन भागों में बाँटा जाता है—(१) आवश्यक आवश्यकताएँ, (२) आराम सम्बन्धी आवश्यकताएँ तथा (३) विलासिता सम्बन्धी आवश्यकताएँ। आवश्यकताओं के भी तीन भेद हैं : (अ) जीवन-रक्षक, (ब) निपुणतादायक तथा (स) सामाजिक।

कोई एक वस्तु हमेशा आराम या विलासिता की वस्तु नहीं हो सकती। यह तो समय पर, वस्तु पर तथा प्रयोग पर निर्भर है।

आदमी को फिजूल खर्चा न करके दायी बचाना चाहिये। परन्तु बचाकर उसे जोड़ना नहीं चाहिये। या तो उसे उत्पादन के किसी काम में लगा दे या बैंक में जमा कर दे। जोड़कर रुपये को घर में रखना देश के औद्योगीकरण के लिये हानिकारक है।

प्रश्न

- (१) आवश्यकताओं से आप क्या समझते हैं? क्या आवश्यकता तथा इच्छा में कुछ भेद है?
- (२) आवश्यकताओं के लक्षण बताइये। उदाहरण देकर समझाइये।
- (३) आवश्यकता तथा उद्योग में क्या सम्बन्ध है?
- (४) आवश्यकता सम्पूर्ण आर्थिक क्रियाओं का उद्गम स्थान है। इस पर टीका कीजिये।
- (५) आवश्यकताओं के क्या गुण हैं? स्पष्टतया उनमें पारस्परिक भेद समझाइये।
- (६) आय, व्यय तथा सन्तुष्टता का सम्बन्ध बताइये। इसमें धन का क्या भाग है?
- (७) क्या धन बचाना आवश्यक है? बचाना या जोड़ना इनमें से आप क्या जरूरी समझते हैं और क्यों?
- (८) रुपया जोड़कर किस प्रकार व्यय करना चाहिये? व्यय करने के क्या-क्या स्थान हैं?

हाई-स्कूल बोर्ड के प्रश्न

- (१) आवश्यकताओं के गुणों को बताइये। जीवन-रक्षक आवश्यक आवश्यकताएँ, निपुणतादायक आवश्यक आवश्यकताएँ तथा

सामाजिक आवश्यक आवश्यकताओं में भेद बताइये। अपने जिलों के गाँवों के उदाहरण दीजिये। (१६४३)

- (२) आवश्यक आवश्यकताओं, आराम सम्बन्धी आवश्यकताओं तथा विलासिता सम्बन्धी आवश्यकताओं की परिभाषा दीजिये तथा इनमें भेद बताइये। (१६४७)
- (३) (अ) आवश्यकता तथा उद्योग (ब) उपयोगिता तथा मूल्य में सम्बन्ध बताइये। (१६४८)
- (४) निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिये :—
 (अ) आवश्यकताएँ (ब) बचत तथा जोड़ना। (१६४६)

अध्याय सातवाँ

रहन-सहन का दर्जा

पहले अध्याय में आपको बताया जा चुका है कि मनुष्य को आवश्यकताएँ अनेक हैं पर उनको सन्तुष्ट करने के साधन कम हैं। इसलिये मनुष्य को यह सोचना पड़ता है कि वह कौन-सी आवश्यकता को पहले सन्तुष्ट करे और किसको बाद में। इस गुण को वह वस्तु से मिलनेवाली उपयोगिता को देखकर सुलभा लेता है तथा वह पहले उस आवश्यकता को सन्तुष्ट करता है जिससे उसके सबसे अधिक उपयोगिता मिलती है। वस्तुओं के उपभोग में कुछ ऐसी वस्तुएँ होती हैं जिनका वह उपभोग बराबर करता रहता है यहाँ तक कि उनके सेवन की उसे आदत सी पड़ जाती है। जब तक वह उन वस्तुओं का उपभोग नहीं कर लेता उसे चैन नहीं पड़ता। यदि वह वस्तुएँ उसे सेवन को न मिलें तो उसे दुःख और तकलीफ पहुँचती है। वह सब वस्तुएँ जिनके सेवन की एक मनुष्य को आदत पड़ गई है उस मनुष्य के रहन-सहन के दर्जे को (या जीवन-स्तर को) निर्धारित करती हैं।

मनुष्य के लिये अपनी आदत बदलना सरल नहीं। सभी मनुष्य आदतों के गुलाम होते हैं। किसी को कुछ खाने की लत है तो किसी को कुछ। और इसलिये लोगों के लिये अपना जीवन-स्तर बदल देने में बड़ी कठिनाई होती है। जो मनुष्य शराब के आदी हो जाते हैं वह यह जानते हुए भी कि शराब बुरी चीज

है उसका पीना बन्द नहीं कर सकते। परन्तु यदि जीवन-स्तर बल नहीं सकता, तो वह ऊँचा तथा नीचा अवश्य हो सकता है।

ऊँचा तथा नीचा जीवन-स्तर—ऊँचा जीवन-स्तर बनाने के लिये यह आवश्यक नहीं कि उस पर अधिक व्यय हो। अधिक खर्च करने से ही जीवन के रहन-सहन का दर्जा ऊँचा नहीं उठ जाता। अधिक व्यय के साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि व्यय समझ-सोचकर तथा दिमाग लगाकर किया जाय। जब तक व्यय होशियारी से नहीं होता जीवन-स्तर ऊँचा हो ही नहीं सकता। उदाहरण के लिये मान लीजिये कि दीनानाथ की मासिक आय २०० रु० से बढ़कर ३०० रु० हो गई है। यदि वह बड़े हुए १०० रुपयों को शराब, मिनेमा, नाच-गान या भड़कीले कपड़ों पर ही व्यय कर देता है और अपने बच्चों की पढ़ाई और अपनी स्त्री के कपड़ों की तरफ ध्यान नहीं देता तो इसका जीवन-स्तर ३०० रु० व्यय कर देने पर भी कदापि बढ़ा हुआ नहीं माना जा सकता। इसके विपरीत यदि वह पहले से अधिक दूध और घाँ का सेवन करने लगा है, यदि उसका एक और लड़का स्कूल जाने लगा है तो यह निश्चित है कि उसके रहन-सहन का दर्जा पहले से बढ़ गया है।

आमतौर पर यह कहा जा सकता है (यदि यह मान लिया जाय कि सब लोग खर्चा होशियारी से करते हैं) कि अमीर आदमियों का जीवन-स्तर गरीबों से ऊँचा होता है। बड़े-बड़े महलों में रहनेवाले, मोटरों में सैर करनेवाले, गर्मी के दिनों में खस के पर्वों में पंखे के नीचे पड़े रहनेवाले व्यक्तियों का जीवन-स्तर धूल और लुत्त में काम करनेवाले किसानों से कहीं अधिक ऊँचा है। जहाँ आमदनी में काफी अंतर है वहाँ तो ऊँचे और नीचे जीवन-

स्तर का भेद स्पष्ट हो जाता है। कठिनाई तो केवल वहाँ पड़ती है जहाँ कि आमदनी में कम भेद हो। तभी विचारपूर्ण व्यय करने का प्रश्न महत्वपूर्ण हो जाता है।

भारतवासियों के रहन-सहन का दर्जा

हमारे देशवासियों के रहन-सहन का दर्जा बहुत नीचा है। इसका एक मात्र कारण है देश को दरिद्रता तथा देशवासियों की कंगाली। हमारे देशवासियों की आमदनी बहुत कम है। कई विद्वानों ने हमारे देशवासियों की आमदनी का अनुमान लगाया है और उनमें से अधिकांश का यही मत है कि यहाँ की औसतन वार्षिक आय ५० रु० या ७० रु० है। हमारी गरीबी का पता तब लगता है जब कि हम दूसरे देशों की आय का अनुमान लगावें। जब कि भारतवर्ष की आय ७ पौण्ड वार्षिक है, आस्ट्रेलिया की ९८ पौण्ड, अमरीका की ८६ पौण्ड तथा इंग्लैंड की १६ पौण्ड वार्षिक है।

इस गरीबी के कारण हमारे देश के लोगों के लिए यह संभव नहीं कि उनका जीवन-स्तर ऊँचा हो सके। कुछ किसान तथा मजदूर तो इतने गरीब हैं कि उनको भरपेट भोजन भी नहीं मिलता और वह दिन में एक समय ही भोजन करके जीवन काटते हैं। उनसे कुछ खुशहाल किसान किसी तरह अपना पेट तो भर लेते हैं पर उनके पास आराम की वस्तुओं के उपभोग के लिये कुछ भी नहीं बचने पाता। उनसे ऊँचे श्रेणी के वह व्यक्ति हैं जो भरपेट भोजन करके कपड़ा पहन लेते हैं, पान-सुपाड़ी भी खा लेते हैं पर पढ़ाई के लिये व्यय करने को या बचत के लिये उनके पास कुछ भी नहीं रहता। और ऐसा तो बहुत ही कम व्यक्ति सौभाग्य रखते हैं जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति आराम से कर सकें।

गरीब किसानों के पास रहने के लिये हवादार मकान नहीं। वह फूस की झोपड़ियों में ही अपने जीवन के दिन काटते हैं। रात्रि के समय उसी झोपड़ी में उनके मवेशी भी सोते हैं। झोंपड़ी कच्ची होती है, उनमें खिड़की या रोशन्दान नहीं होते जिसके कारण गंदी हवा बाहर नहीं निकल पाती। मवेशियों के वहीं सोने से झोंपड़ी की हवा और भी अधिक गंदी हो जाती है और सभी का स्वास्थ्य बिगड़ जाता है। इसी झोंपड़ी में वह बरसात का मेह तथा जाड़े की ठण्डी रातें किसी तरह काट देते हैं।

उनके कपड़े बड़े दयनीय होते हैं। घर के सूत से कते हुए तथा जुलाहे द्वारा बनाये हुए मोटे कपड़ों को पहनकर जो मिट्टी में काम करने के कारण गन्दे ही नहीं गराबी के कारण फट भी गये होते हैं किसान पूस-माघ के जाड़े काँपते-काँपते काट देते हैं। जंगलों से सूखी पत्तियों तथा लकड़ियों को लाकर रात में जलकी आग से ताप कर वह किसी तरह ठंड से बचने का उपक्रम करते हैं। इसी आग के सामने बैठे बूढ़े किसान तथा उनके छोटे-छोटे बच्चे बड़ी दया के पात्र दीख पड़ते हैं।

जब उनके रहने तथा कपड़ों का यह हाल है तो उनके खाने का क्या अच्छा हाल हो सकता है? यद्यपि वह स्वयं ही अन्य पैदा करते हैं फिर भी वह उसे खाने को तरसते रहते हैं क्योंकि उसे बेचकर वह लगान तथा उधार लिये रुपये की किरत चुकाते हैं। यदि उनको दोनों समय पेट भर भोजन मिल जाय तो वह अपने को बड़ा भाग्यवान समझते हैं। उनका भोजन क्या होता है चना या बाजरे की मोटी-मोटी बिना घी या तेल की रोटियाँ तथा

नमक या गुड़ की एक डली। यह भी उन्हें प्रतिदिन दोनों समय नहीं मिल पाती। अधिकतर तो वह कम खाकर या एक समय खाकर ही सो जाते हैं।

इसीसे आप उनके जीवन-स्तर का कुछ अनुमान लगा सकते हैं। जब वह दोनों समय भोजन नहीं कर पाते, पहनने को कपड़े नहीं पाते, रहने के लिए हवादार मकान नहीं पाते; घी, दूध, फल वा मिठाई के दर्शन भी नहीं करते तो उनके जीवन के रहन-सहन का दर्जा कितना नीचा होगा आप स्वयं सोच सकते हैं। *

केवल किसानों का ही नहीं शहर के मजदूरों का भी यही हाल है। वह एक छोटी-सी गन्दी कोठरी में पूरे परिवार के सहित रहते हैं और उसका किराया ५-७ रु० माहवार देते हैं। उनको स्वास्थ्यवर्धक और अच्छा भोजन कभी नसीब नहीं होता यद्यपि इसके लिये वह अपनी आमदनी का काफी पैसा व्यय कर देते हैं। जिस जगह वह रहते हैं वहाँ गन्दा पानी चारों तरफ फैलता रहता है। शहर का गन्दा नाला भी पास में ही बहता है। वहाँ की गलियाँ गन्दी तथा अँधेरी होती हैं। जगह-जगह मैला पड़ा रहता है जिन पर कीड़े तथा मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं। एक छोटी-सी कोठरी में औसतन ४३ व्यक्ति रहते हैं। वहाँ वह ठीक से लेट भी नहीं सकते—पदों का प्रश्न ही दूर रहा। अधिकांश में इन मजदूरों को ताड़ी पीने या जुआ खेलने की आदत पड़ जाती है जिससे उनकी आमदनी का काफी भाग इन पर व्यय हो जाता है। परिणाम यह होता है कि घर के लोग भूखे तथा नंगे इधर-उधर फिरते हैं और किसी तरह इस जीवन को काटने का प्रयास करते हैं।

इस तरह यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश का रहन-सहन का दर्जा बहुत नीचा है। इसी का परिणाम है कि हमारे मजदूर आधिक काम नहीं कर पाते। कुछ विद्वानों का मत है कि आजकल भारतवासियों का जीवन-स्तर ऊँचा होता जा रहा है क्योंकि विदेशों से आराम तथा विलासता की कीमती वस्तुओं का आयात बढ़ता जा रहा है। परन्तु केवल कीमती वस्तुओं के आयात से ही जीवन-स्तर का माप नहीं किया जा सकता। फिर यदि कुछ व्यक्तियों के रहन-सहन का दर्जा बढ़ रहा है तो यह तो नहीं कहा जा सकता कि देश भर के लोगों का भी जीवन-स्तर बढ़ रहा है। आजकल सभी आवश्यक वस्तुओं के दाम बढ़े हुए हैं और निरंतर बढ़ते जा रहे हैं। उनमें मन् १९३८ से लगभग २००-३०० प्रतिशत वृद्धि हो गई है। ऐसी दशा में आधिकांश व्यक्तियों का जीवन-स्तर नीचा हो गया है। अब वह अपनी आवश्यकताओं में से कम की ही पूर्त कर पाते हैं।

रहन-सहन का दर्जा ऊँचा करने के उपाय

हमारे देशवासियों के रहन-सहन के दर्जे को ऊँचा करने के लिये यह आवश्यक है कि उनकी आमदनी बढ़ाई जाय। इसके लिये यह आवश्यक है कि देश का उत्पादन बढ़े। गाँववालों को घरेलू उद्योग-धन्धों को चलाने के लिये उचित शिक्षा तथा प्रोत्साहन दिया जाय। मजदूरों को अधिक घण्टे काम करने के लिये कहा जाय तथा मिल मालिकों को श्रमिकों को उचित वेतन देने के लिये बाध्य किया जाय। जब उत्पादन बढ़ेगा सभी लोगों की आमदनी भी बढ़ सकेगी।

दूसरे, देश में बढ़ती हुई कीमतों को रोककर कम किया जाय। जब तक वस्तुओं के मूल्य कम नहीं होते रुपये की क्रय-शक्ति नहीं बढ़ेगी तथा मनुष्य अपनी आवश्यकताओं को पूरी नहीं कर सकेंगे। इसके लिये सरकार को चाहिये कि वह मिल-मालकों के मुनाफे पर प्रतिबन्ध लगा दे तथा वस्तुओं के मूल्यों पर कठिन नियंत्रण कर चोर बाजार को एकदम बन्द कर दे।

तीसरे, लोगों में उचित शिक्षा का प्रचार किया जाय जिससे वह समझ सकें कि उन्हें किस वस्तु के ऊपर रुपया व्यय करना चाहिये। उनको ताड़ी, शराब, या अन्य नशीली वस्तुओं का उपभोग बन्द कर देना चाहिये। कांग्रेस सरकार ने जो नशीली वस्तुओं के ऊपर रोक लगाने का निश्चय किया है वह सर्वथा सराहनीय कार्य है।

चौथे, सरकार को गाँव-गाँव में अस्पताल तथा स्कूल खोलने चाहिये जिससे दवा तथा पढ़ाई पर गाँववालों का कुछ भी व्यय न हो। दवा मुफ्त बटे तथा पढ़ाई की फीस न लगे। सौभाग्य से कांग्रेस सरकार इस तरफ निरन्तर कदम बढ़ा रही है और हर वर्ष इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिये कुछ न कुछ प्रयास अवश्य ही होता है।

पाँचवे, जनता को आबादी न बढ़ाने की शिक्षा दी जाय। जहाँ तक हो सके लोग कम बच्चे पैदा करें। हमारे देश की आबादी काफ़ी अधिक है। जब तक इस आबादी के लिये पर्याप्त भोजन न मिलने लगे तब तक आबादी अधिक न बढ़ाई जाय। सरकार को जहाँ तक संभव हो गाँववालों तथा मजदूरों के लिये मौडिल मकान बनवाने चाहिये। वह मकान सस्ते,

मजबूत तथा हवादार होने चाहिये। ऐसा करने से दूसरे लोग भी उसी तरह के मकान बनवाया करेंगे। साथ ही लोगों को खेल-कूद, व्यायाम आदि के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने जो व्यायाम-सम्बन्धी एक योजना निकाली है वह बहुत अच्छी है। उसका प्रचार अत्यन्त आवश्यक है। अन्य प्रान्तों को भी उस योजना का अनुसरण करना चाहिये। ऊपर दिये हुए तरीकों पर चलने पर हम निःसंदेह देशवासियों के रहन-सहन का दर्जा ऊंचा कर सकेंगे।

सारांश

रहन-सहन के दर्जे का आशय उन वस्तुओं से है जिनके उपभोग का एक मनुष्य आदी पड़ गया है तथा जिनका बिना सेवन किये उसे दुःख पहुँचता है।

रहन-सहन का दर्जा (१) अधिक आमदनी तथा (२) उचित तरीके से व्यय करने पर निर्भर है।

हमारे देशवासियों के रहन-सहन का दर्जा बहुत गिरा हुआ है। इसका मुख्य कारण लोगों की गरीबी है। दूसरे देशवासियों की आय से मुकाबला करने पर यह बात और भी स्पष्ट हो जाती है।

देशवासियों का जीवन-स्तर ऊँचा करने के लिये पड़ते उनकी आय बढ़ाना आवश्यक है। इसके लिये देश का उत्पादन बढ़ाना चाहिये। दूसरे देश में बढ़ती कीमतों को रोकना चाहिये। लोगों में उचित शिक्षा का प्रचार कर उन्हें नशीली तथा हानिकारक वस्तुओं के उपभोग से रोकना चाहिये। सरकार को गाँव-गाँव में अस्पताल तथा स्कूल खोलने चाहिये तथा व्यायाम के लिये जनता को प्रोत्साहित करना चाहिये। लोगों को आवादी न बढ़ाने की शिक्षा भी देनी

आवश्यक है। सरकार को हवादार मकान भी जगह-जगह बनवाकर लोगों को बताना चाहिये कि सस्ते तथा मजबूत मकान किस तरह बन सकते हैं।

प्रश्न

१. रहन-सहन के दर्जे से आप क्या मतलब समझते हैं ? उदाहरण सहित उत्तर दीजिये।
२. जीवन-स्तर का ऊँचा होना अधिक व्यय पर निर्भर नहीं। क्या यह किसी अन्य बात पर आश्रित है ? समझाइये।
३. भारतवासियों का जीवन स्तर उत्तरोत्तर बढ़ता जा रहा है। क्या यह सच है ?
४. भारत की ग्रामीण जनता के रहन-सहन के दर्जे के बारे में एक निबंध लिखिये।
५. भारतवर्ष के लोगों के जीवन स्तर को ऊँचा करने के लिये आप क्या-क्या प्रयत्न करेंगे ? स्पष्ट रूप से लिखिये।

हाई-स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. आप जीवन-स्तर से क्या मतलब समझते हैं ? यह गाँवों में नीचा क्यों है ? इसको किस तरह ऊँचा किया जा सकता है। (१६४ :)

अध्याय आठवाँ

पारिवारिक आय-व्यय

आपको पिछले अध्याय में यह बताया जा चुका है कि प्रत्येक मनुष्य को अपना धन इस तरह व्यय करना चाहिये जिससे उसको अधिक से अधिक उपयोगिता मिले। इसके लिये उसे अर्थशास्त्र के सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का पालन करना चाहिये। सम-सीमान्त उपयोगिता नियम यह बताता है कि मनुष्य को विभिन्न वस्तुओं पर धन इस तरह व्यय करना चाहिये कि उसे प्रत्येक वस्तु की अंतिम इकाई से एक-सी उपयोगिता मिले। तभी उसको अधिकतम सन्तुष्टि मिलेगी और तभी वह अपने जीवन स्तर को ऊँचा भी कर सकेगा।

पारिवारिक बजट की परिभाषा—परन्तु इसकी जाँच किस तरह हो सकती है कि एक मनुष्य का रहन-सहन का दर्जा ऊँचा हो रहा है या नहीं? इस जाँच के लिये मनुष्य के पारिवारिक आय व्यय के चिट्ठे को (या पारिवारिक बजट) को देखना पड़ता है। पारिवारिक आय व्यय का चिट्ठा किसी एक पारिवारिक के एक निश्चित समय की / वार्षिक, मासिक, तिसाई या छमाई) आमदनी तथा खर्च के विवरण-पत्र को कहते हैं। इस विवरण-पत्र में मनुष्य के परिवार की गिनती, उसकी आमदनी, तथा उसके व्यय का खुलासा होता है। उसमें साफ-साफ लिखा रहता है कि इस परिवार ने खाने की किस-किस वस्तु पर कितना खर्च किया और कितनी मात्रा में किस वस्तु को किस

भाव में खरीदा। इसी तरह कपड़ा, घर, ईंधन, दिया-बत्ती, पढ़ाई, नौकर, दवा, कर्जा, ढान, सिनेमा, बचत इ.दि का विस्तारपूर्वक वर्णन होता है। एक मनुष्य के तमाम व्यय को आठ-नौ भागों में बाँट दिया जाता है और फिर प्रत्येक भाग का विस्तारपूर्वक अध्ययन किया जाता है। वह विभाग निम्नलिखित हैं:—(१) खाना, (२) कपड़ा, (३) घर का कि (या), (४) रोशनी तथा ईंधन, (५) पढ़ाई-लिखाई, (६) स्वास्थ्य सम्बन्धी व्यय, (७) आराम तथा आनन्द, (८) अन्य व्यय तथा (९) बचत।

एंजिल का नियम—एक मनुष्य की आमदनी का मुख्य भाग खाने पर खर्च होता है क्योंकि खाना सबसे महत्वपूर्ण वस्तु है जिसके बिना कोई भी जीवित नहीं रह सकता। खाने के बाद सबसे अधिक व्यय कपड़े पर होता है और फिर अन्य खर्चे आते हैं। जर्मनी के एक विद्वान् डाक्टर एंजिल ने सन् १८५७ में इस सम्बन्ध में विशेष अध्ययन कर मनुष्य के व्यय के सम्बन्ध में एक नया नियम निकाला था। उनका कहना था कि जैसे-जैसे एक मनुष्य की आमदनी बढ़ती जाती है—

(१) उसका भोजन पर होने वाला प्रतिशत व्यय कम होता जाता है।

(२) घर, रोशनी तथा ईंधन और कपड़े पर प्रतिशत व्यय वही रहता है।

(३) पढ़ाई, नौकर आदि पर व्यय बढ़ता जाता है।

इसमें यह ध्यान रखने की बात है कि डाक्टर एंजिल केवल प्रतिशत खर्चे के बारे में कह रहे हैं, कुल खर्चे के बारे में नहीं। आमदनी बढ़ने पर आदमी पहले से ज्यादा धन भोजन

पर खर्च करता है। पर वह खर्चा उसकी कुल आय का पहले के देख कम प्रतिशत भाग होता है। एञ्जिल की खोज का सारांश नीचे दिया जाता है :—

खर्चे का विषय	कुल आय का किये जाने वाला प्रतिशत व्यय		
	मजदूर परिवार	धनी मजदूर परिवार	मध्य-वर्गीय परिवार
(१) भोजन खाना	६०	५५	५०
(२) कपड़ा	१८	१८	१८
(३) घर या मकान	१२	१२	१२
(४) रोशनी तथा ईंधन	५	५	५
(५) पढाई	२.०	३.३	४.३
(६) स्वास्थ्य संबंधी व्यय	१.०	२.०	३.०
(७) आराम तथा आमोद	१.०	२.३	३.३
(८) अन्य	१.०	२.०	३.०
कुल योग	१००	१००	१००

पारिवारिक बजट का महत्त्व—परिवारिक बजट के रखने से अनेकों लाभ हैं। इसको देखकर एक गृहस्थ सम-सीमान्त उपयोगिता नियम का पालन कर सकता है तथा किसी भी

पारिवारिक आय-व्यय

११३

मासिक आय : कृषि.....पारिवारिक बजट का समय

अन्य.....

कुल.....

.....१९४९ से तक

वस्तु का नाम	कुल व्यय	वस्तु की मात्रा	वस्तु की दर	अन्य कुल
१. भोजन अन्न गेहूँ चना जुआर मकई बेम्भड़ बाजरा दाल मूँग उद अरहर चावल चावल तरकारी आलू अरई भाटा गौभी मटर सेम टमाटर	र० आ० पा०	म० से० छ०	-सेर फ्री रुपया	
	..	१-२०-	२!!	

वस्तु का नाम	व्यय	वस्तु की मात्रा	वस्तु की दर	अन्य कुछ
अन्य घी ● तेल गुड़ चीनी चाय दूध मसाला नमक मिर्च धनिया जीरा हल्दी गरम मसाला	रु० आ० पा०	म० से० छ०	-सेर फी रुपया	
फल अमरुद सेव केला नासपातो अंगूर				
योग				
२. कपड़े धोती (i) जनानी (ii) मर्दानी			रु० फी अरदद	

पारिवारिक आश-व्यय

११५

वस्तु का नाम	कुल व्यय	वस्तु की मात्रा	वस्तु की दर	अन्य कुछ
	र० आ० पा०			
पाजामा				
कुर्ता				
कमीज				
सलूके				
टोपी				
ओढ़नी				
नेकर				
मोजा				
जूता				
अगरखा				
दुपट्टा				
मिरजई				
योग				
३. घर				
किराया				
सफेदी				
मरम्मत				
योग				
रोशनी तथा				
ईंधन				
धन				
लकड़ी				

वस्तु का नाम	व्यय	वस्तु की मात्रा	वस्तु की दर
उपली कोयला दियासलाई	र०आ०पा०		
रोशमी बिजली तेल (i) मिट्टी का (ii) सरसों का लालटेन दिया			
योग			
५. पढ़ाई फीस किताबें कापियाँ कागज पेन्सिल कलम दवात स्याही अन्य			
योग			

वस्तु का नाम	व्यय	वस्तु की मात्रा	वस्तु की दर	अन्य कुछ
ई. स्वास्थ्य सम्बंधी व्यय भगी फिनायल फाइल कुल योग	र०आ०पा०			
(७) आराम तथा प्रमोद सिनेमा सरकस नाटक नोटकी अजायब घर रेलगाड़ी मोटर मेला हाट त्यौहार खेल-कूद कसरत योग				
(८) अन्य धोबी				

वस्तु का नाम	व्यय	वस्तु की मात्रा	वस्तु की दर	अन्य कुल
नाई बरतन दान या कथा ऋण की किरत शादी दवाई डाक्टर	र० आ०पा०	.		
योग				
(६) व्यय या ऋण				
कुल योग				

ऊपर लिखी हुई सब बातों का पता लगा लेने के पश्चात् व्यय का सारांश सूक्ष्म में दिया जाता है जिसमें महत्वपूर्ण विभागों पर कुल खर्चा तथा समस्त आमदनी का प्रतिशत व्यय दिया रहता है। वह नीचे दिये गये तरीके पर तैयार किया जाता है :—

प्रतिशत व्यय

व्यय के मह	कुल व्यय	कुल आय का प्रतिशत व्यय
(१) भोजन	६० आ० पा०	
(२) वस्त्र		
(३) घर		
(४) ईंधन तथा रोशनी		
(५) पढ़ाई		
(६) स्वास्थ्य संबंधी व्यय		
(७) आराम तथा प्रमोद		
(८) अन्य		
(९) बचत या ऋण		
कुल योग	६० आ० पा०	१०० प्रतिशत

बजट इकट्ठा करना—ऊपर दिखे गये तरीके पर आपको चाहिये कि आप पारिवारिक आय-व्यय इकट्ठा करें। पहले तो आप अपने घर का मासिक आय-व्यय का चिट्ठा तैयार कीजिये फिर अपने एक पड़ोसी का। आपके पड़ोसी या मुहल्ले-वाले आपको पूरा-पूरा सही हाल नहीं बतावेंगे विशेषकर यदि

उनको कोई बुरी लत है या उनके ऊपर ऋण है। सम्भव है वह आपको सह आमदनी भी न बतावे और बचत भी नहीं। इसलिये आप अच्छा तरह सोचकर चलिये। आप उनको विश्वास दिलाइये कि उनकी आय तथा व्यय जानकर आप का कोई हानि करने का अभिप्राय नहीं और न आप सरकार को ही कुछ लिखेंगे। आप तो केवल अर्थशास्त्र के दृष्टिकोण से ही यह सब जानना चाहते हैं। फिर एक बार ही आप पूरी बात जानने का प्रयास न करें। नहीं तो वह व्यक्ति सतर्क हो जावेगा। बात करते-करते कभी कुछ बात का पता लगा लीजिए और उसे नोट करवा दें। धीरे-धीरे जब उसका विश्वास आप पर हो जावेगा तभी वह सही-सही बातें बतावेगा। इस काम में बड़े धैर्य और होशियारी की आवश्यकता है। कदम-कदम पर समझ से काम लेना है। कहीं खबर देनेवाले को शक हो गया तो महीनों का काम एकदम समाप्त हो जावेगा।

जब आप पड़ोसी या मुहल्लेवालों के बजट को इकट्ठा करते तो आपको उस काम के करने की आदत हो जावेगी। तब आप गाँव में जाकर किसानों का आय-व्यय पता लगाइये। देखिए वह किस तरह अपना पेट पालते हैं, साल में कितने दिन बेकार रहते हैं, जमींदार उनको किस तरह तंग करते हैं, साहूकार उनसे कितना ब्याज लेता है, लड़कों के ब्याह में वह कितना व्यय करते हैं, उनके ऊपर कितना ऋण है, वह ऋण को किस तरह अदा करते हैं, उनके लड़के क्या करते हैं, घर में उनकी फ़िरियाँ भी क्या कुछ कमाती हैं आदि। यह बातें उसके पारिवारिक बजट में एक विशेषता रखती हैं इसलिये यह विशेष ध्यान देने योग्य हैं।

अगर आप ध्यान से उनके बजट को देखेंगे तो आपको

पता लगेगा कि वह कुल आय का ६० से ८० प्रतिशत खाने पर व्यय कर देते हैं, १५-२० प्रतिशत कपड़े पर, तम्बाकू या चिलम में लगभग ५ प्रतिशत तथा तेल में १ या २ प्रतिशत। ईंधन के ऊपर तो उनका कुछ व्यय होता ही नहीं और न पक्का, सफाई आदि पर। बचत उनकी कुछ नहीं होती और आराम या आमोद वह जानते नहीं। यदि उनको कोई विशेष व्यय कभी करना पड़ता है तो वह ऋण का ही सहारा लेते हैं। यही उनकी दशा है। कभी-कभी वह ताड़ी पर भी व्यय करते पाये जाते हैं परंतु धन की कमी के कारण यह आदत उनमें बहुत कम है।

नीचे एक मजदूर तथा एक ग्रामीण शिल्पी के परिवारिक बजटों को दिया जाता है। आप भी इसी प्रकार कुछ बजटों को इकट्ठा कीजिए।

एक मिल मजदूर का पारिवारिक बजट

नाम—रामलाल

काम करने का स्थान—फ़ीरोजाबाद (ज़िला-आगरा)

पता—नाज की मण्डी

परिवार के सदस्य	आदमी.....१	उम्र—३० साल
	औरत.....२	उम्र ५५ तथा २५ साल
	बच्चे.....२	उम्र ८ और ६ साल
	कुल	५

मासिक मजदूरी—४५ रुपया

पारिवारिक बजट का समय

१ जनवरी, १९४६ से ३१ जनवरी, १९४६ तक

वस्तु का नाम	वस्तु की मात्रा	व्यय	दर
१. भोजन अन्न	म० से० छ०	र० आ० पा०	
चावल	० ७ १२	३ १४ ०	१ र० का २ सेर
गेहूँ का आटा	० २३ ४	६ ५ ०	१ र० का २ सेर ८ छ०
बाजरा	० ३१ ०	१४ ० ०	१ र० का २ सेर ४ छ०
जवा	० १५ ८	४ ८ ०	१ र० का ३ सेर ६ छ०
तरकारी			
आलू	० १२ ०	२ ० ०	१ र० का ६ सेर
मसाला	—	० ८ ०	
योग		३४—३—०	
२. कपड़ा		२—४—०	वर्ष भर में २७ र० श्रौसत २ र०
योम		२—४—०	४ आ० माहवार
३. रोशनी तथा ईंधन			
बकड़ी	२ मन	४—८—०	२ र० ४ आ० मन
मिष्टी का तेल	३ बोतल	०—६—०	३ आ० फी बोतल
दियासलाई	२ डिब्बिया	०—२—०	१ आ० फी डिब्बिया
बत्तन		५—३—०	

४. अन्य		
बीड़ी	१ बंडल रोज	३—६—०
योग		३—६—०
कुल योग		४५—०—०

प्रतिशत व्यय

व्यय के मद्	कुल व्यय	कुल आय का प्रतिशत व्यय
(१) भोजन	रु० आ० पा० ३४—३—०	७६%
(२) कपड़ा	२—४—०	५%
(३) रोसनी तथा ईंधन	५—३—०	१२%
(४) अन्य	३—६—०	७%
	४५—०—०	१००%

मजदूर का प्रतिशत व्यय चित्र द्वारा नीचे दिये प्रकार दिखलाया जा सकता है :—

अन्य ७%			
रोशनी तथा ईंधन १२%			
कपड़ा ५%			
+ भोजन			
+	७६%	+	+
+	+	+	+
+	+	+	+
+	+	+	+
+	+	+	+
+	+	+	+
+	+	+	+

एक ग्रामीण शिल्पकार का पारिवारिक बजट

नाम	कलुआ	
गाँव	फूलपुर	
काम	बढ़ईगीरी	
परिवार के सदस्य	आदमी १	उम्र ४० वर्ष
	औरत १	उम्र ३० वर्ष
	बच्चा १	उम्र १३ वर्ष
	कुल ३	

आमदनी २० रु० साहवार पारिवारिक बजट का समय १ माह

पारिवारिक आय-व्यय

१२५

वस्तुओं के नाम	वस्तु की मात्रा	व्यय	दर
१. भोजन	म० से० छ०	र०आ०पा०	
चावल	०-७-८	३-०-०	१ रु० का २ से० ८ छ०
बाजरा	०-३०-०	७-८-०	१ रु० का ४ सेर
दाल	०-३-०	१-९-०	१ रु० की ३ सेर
तरकारी		१-०-०	
मसाले		०-८-०	
तेल		०-१३-०	
गुड़	०-१-०	१-०-०	१ रु० का १ सेर ८ छ०
योग		१४-३-७	
२. कपड़ा		२-६-६	वार्षिक व्यय २६ रु० ४आ०
३. मकान		२-०-०	२ रु० माहवार
४. रोशनी तथा ईंधन			
मिट्टी का तेल	३ बोतल	०-६-०	३ आना बोतल
उपली		०-१३-६	
योग		१-६-६	
कुल योग		२०-०-०	

सारांश

किसी परिवार के किसी एक समय के आय-व्यय के विवरण को पारिवारिक आय-व्यय का चिह्न कहते हैं।

इसके रखने से कई लाभ हैं। इसके रखने से मनुष्य अधिक पैसा मनुष्य प्राप्त कर सकता है, देश की आर्थिक प्रणाली का पता लगा सकता है, सरकार अपनी कर-प्रणाली ठीक कर सकती है तथा सुधारक भी इसी द्वारा नशीली वस्तुओं के उपभोग की मात्रा के विषय में जान सकते हैं।

डाक्टर एंजिल ने इसके बारे में एक नियम निकाला है जो एंजिल का नियम कहलाता है। इस नियम के अनुसार एक मनुष्य की आमदनी ज्यों-ज्यों बढ़ती जाती है उसका भोजन पर प्रतिशत व्यय कम होता जाता है; कपड़ा, घर तथा ईंधन पर वही रहता है; तथा पढ़ाई, आराम, आनंद आदि पर प्रतिशत व्यय बढ़ जाता है।

इनको इकट्ठा करते समय बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये। यदि मनुष्य को किसी भी तरह का संदेह हो गया तो वह सही-सही खबर नहीं देगा।

हमारे किसानों के व्यय का अधिकांश भाग भोजन पर होता है। १०-१५ प्रतिशत व्यय उनका कपड़े पर होता है तथा लगभग ५ प्रतिशत तम्बाकू पर। बाकी के लिये उनके पास कुछ बचता ही नहीं। यही उनकी दशा है।

प्रश्न

१. पारिवारिक आय-व्यय के चिह्न से आप क्या मतलब समझते हैं ? इसके लाभ बताइये।
२. डाक्टर एंजिल का क्या नियम है ? विस्तारपूर्वक बताइये। क्या यह भारतवर्ष में भी लागू होता है ?

३. भारतवर्ष में विभिन्न श्रेणी के लोग अपनी आय का प्राप्त प्राप्त भाग किस तरह व्यय करते हैं ? समझाकर लिखिये ।
४. एक पारिवारिक आय-व्यय के चिह्ने में क्या क्या विवरण रहता है ? एक खाका खींचकर समझाइये ।
५. पारिवारिक बजट किस तरह इकट्ठे किये जाते हैं ? इनको इकट्ठा करते समय किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये ?
६. अपने स्कूल के चपरासी के माहवारी पारिवारिक बजट को बनाइये ।
७. गाँव के किसी किसान के पारिवारिक बजट को बनाकर उस चपरासी के बजट से मुकाबला कीजिये । उनके प्रतिशत व्यय में क्या क्या भिन्नताएँ हैं ?

अध्याय नवाँ

भोजन की मात्रा

हमारे देश के अधिकांश व्यक्ति गरीब हैं तथा उनकी आमदनी कम है। इस कारण उनकी आमदनी का ६०-७० प्रतिशत भाग भोजन पर व्यय हो जाता है। भोजन पर ही शरीर की शक्ति तथा काम करने की क्षमता निर्भर रहती है। इस कारण मनुष्य के जीवन में भोजन का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिये यह आवश्यक है कि वह उपयुक्त मात्रा में पौष्टिक भोजन करे। भोजन से शरीर को तत्व मिलते हैं। यह तत्व दो प्रकार के होते हैं: (१) वह तत्व जो शरीर को शक्ति देते हैं और जिनमें चर्बी (Fats) तथा कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) प्रसिद्ध हैं; तथा (२) वह जो शरीर की वृद्धि करते हैं और शरीर की हड्डियों को बढ़ाते हैं। इनमें प्रोटीन, विटामिन तथा खनिजत्त्व (Minerals) प्रसिद्ध हैं। हर एक खाने की वस्तु में चर्बी, कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन, विटामिन तथा खनिजत्त्व पदार्थ पाये जाते हैं। परन्तु उनकी मात्रा भिन्न-भिन्न होती है। गेहूँ में कार्बोहाइड्रेट अधिक मात्रा में पाया जाता है और चर्बी तथा खनिजत्त्व पदार्थ कम। इसके विपरीत आलू, गाजर तथा प्याज में पानी अधिक पाया जाता है और कार्बोहाइड्रेट तथा चर्बी कम। गेहूँ में प्रोटीन अधिक पाई जाती है और कार्बोहाइड्रेट बिलकुल नहीं। इसी

प्रोटीन	चर्बी	कार्बोहाइड्रेट	नमक	पानी	अन्य
१२.०	१.७	६७.५		१.२	—
७.७	०.४	७६		०.४	—
२३.६	२.६६	५३.४५		३.५७	—
१६.६	४.३१	५१.१३		३.७२	—
२१.६७	३.३३	५४.२७		५.५०	—
१.२	०.१	१६.७		—	२.३
०.५	०.३	१०.१		—	१.६
१.८	०.४	६.६		—	—
७.६	०.४	३.६		१.३	—
०.३	०.३	१०.५		०.५	—
१.०	१.०	१४.४		०.३	—
१२.५५	१२.११	०.५३	१.१२	७३.४७	—
३.०	८.०	—	१.०	१२.६५	—
४.०	३.७	५.८७	०.१६	८८.०	—

गोहूँ

झावला

मुगा

चना

आरहर

आलू

भाजर

कुरमकल्ला

टमाटर

सेब

अंपूर

अण्डा

मकलन

पाय का दूध

कारण यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक मनुष्य को विभिन्न पदार्थ नियमित मात्रा में खाने चाहिये जिससे उसे सभी तत्व आवश्यक मात्रा में मिल सकें। पृष्ठ १३० पर दी हुई तालिका से आप विभिन्न पदार्थों में मिलनेवाले तत्वों का पता लगा सकेंगे।

प्रोटीन—शरीर की वृद्ध करता है तथा मज्जा तन्तुओं (Tissues) को बनाता है। ऊपर की तालिका से आप समझ गये होंगे कि प्रोटीन दाल, अंडा और गोश्त में अधिक होता है। **विटामिन** शरीर को शक्ति पहुँचाते हैं तथा स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। यह कई प्रकार के होते हैं। विटामिन 'ए' फेफड़े, अंतर्द्वियों तथा आँख के लिये उपयोगी होता है तथा दूध, दही, मक्खन, घी, अण्डे आदि में पाया जाता है। विटामिन 'बी' पाचन शक्ति को बढ़ाता है तथा पेट ठीक रखता है। यह मस्तिष्क के लिये भी अत्यन्त लाभप्रद है। यह दाल, अनाज, फल तथा दूध में अधिक पाया जाता है। विटामिन 'सी' खून को साफ रखता है। यह हरे पत्तों की तरकारियों तथा फलों में पाया जाता है। विटामिन 'डी' हड्डियों तथा दाँतों को मजबूत करता है। यह अण्डा तथा मछली में अधिक पाया जाता है। **चर्बी** से शरीर को शक्ति मिलती है तथा इससे शरीर मोटा होता है। यही शरीर की रोगों से भी रक्षा करती है। यह दूध, घी, तेल, अण्डा गोश्त आदि में अधिक पाई जाती है। **कार्बोहाइड्रेट** शरीर को शक्ति पहुँचाते हैं। यह अनाज, आलू, शकरकन्दी, शक्कर, गुड़ आदि में मिलते हैं। **खनिज-क्षार पदार्थों** में कैल्शियम, फास्फोरस, लोहा आदि प्रसिद्ध हैं। कैल्शियम हड्डियों को बढ़ाता है तथा दूध, दही, घी, हरे सागों

आदि में पाया जाता है। फासफोरस खून को साफ करता है तथा गेहूँ, चावल, दाल, दूध, गाजर आदि में पाया जाता है। लौहा खून के बनाने के काम में आता है। यह सेब, मांस, गेहूँ आदि में काफी मात्रा में पाया जाता है।

भोजन से उत्पन्न होनेवाले तत्व शरीर को गर्मी पहुँचाते हैं जिसको विद्वान् लोग कैलोरीज (Calories) द्वारा नापते हैं। लीग आफ नेशन्स की कमेटी ने यह बताया है कि ऐसे व्यक्ति जो कि शारीरिक परिश्रम नहीं करते उनके लिए २४०० कैलोरीज प्रतिदिन की गर्मी काफी होगी। लेकिन जो व्यक्ति कठिन शारीरिक परिश्रम करते हैं उनके लिये ३००० कैलोरीज प्रतिदिन की आवश्यकता है। भारत सरकार के न्यूट्रीशन (Nutrition) विभाग के अध्यक्ष डाक्टर एफ़ोइड ने यह बताया है कि औसतन हिन्दुस्तानी के लिये २,६०० कैलोरीज प्रतिदिन की आवश्यकता है। शरीर को इतनी गर्मी पहुँचाने के लिये उसको निम्नलिखित भोजन खाना चाहिये।

अनाज	१८	औसत	प्रतिदिन
दाल	३	"	"
चीनी	२	"	"
तरकारी	६	"	"
फल	२	"	"
तेल तथा घी	१३	"	"
दूध	८	"	"

गन्धक, मछली, अण्डा आदि २ या ३ औंस

१८ ग्रॉम	८ ग्रॉम	६ ग्रॉम	३ ग्रॉम	३ ग्रॉम	२ ग्रॉम	२ ग्रॉम	११ ग्रॉम
अनाज	दूध	तरकारी	दाल	रोशन आदि	चीनी	फल	तेल या घी

परन्तु बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारे देश के किसानों की भोजन की मात्रा जेल में मिलनेवाले भोजन की मात्रा से भी कम है। उनके पास इतना पैसा नहीं कि वह अच्छा भोजन खा सके जिससे उन्हें आवश्यक गर्मी मिल जाय। उनका भोजन चना या बाजरा की रोटी ही है। दूध पीने को उन्हें कभी नसीब नहीं होता और घी कभी खा नहीं सकते। हरा साग वह शायद ही कभी खाते हों। उनके भोजन में फलों का भी कोई स्थान नहीं यद्यपि वह स्वयं दूध, घी, फल, तरकारी, गेहूँ, चावल आदि पैदा करते हैं। परन्तु गरीबी के कारण वह स्वयं उन्हें न खाकर दूसरों के हाथ बेच देते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उनका भोजन मात्रा में तो कम होता ही है उसमें शर्मी

के लिये आवश्यक तत्व भी नहीं होते। उनके भोजन में 'ए' 'बी' 'सी' विटामिनो की बहुत कमी होती है।

भोजन में जीवन तत्वों की मात्रा बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि जो व्यक्ति माँसाहारी नहीं हैं वह नित्य दूध तथा फलों का सेवन करें जिससे उनको 'ए' 'बी' 'सी' विटामिन मिल सकें। उनको घी और तेल भी खाना चाहिये जिससे कि उनके शरीर को आवश्यक चर्बी मिल सके। हरे साग में भी काफी प्रोटीन होता है। गाजर तथा टमाटर ऐसे फल हैं जिनके खाने से शरीर की हड्डियाँ बढ़ती हैं। सेब में लोहा बहुत होता है जो कि शरीर के लिये बहुत आवश्यक है। डाक्टरों का मत है कि यदि कोई व्यक्ति प्रतिदिन एक सेब खा लिया करे तो उसे कोई बीमारी नहीं हो सकती। स्वास्थ्य की दृष्टि से पपीता भी अत्यन्त लाभप्रद फल है।

भोजन में जीवन तत्वों की मात्रा बढ़ाने के लिये निम्न-लिखित बातें ध्यान रखने योग्य हैं :—

- (१) बिजली की चक्की में आटा पिसाने से उसके तत्व जल जाते हैं। यदि संभव हो सके तो हाथ की चक्की का पिसा आटा खाना चाहिये।
- (२) खाना अधिक गर्म आग पर सेंकने से उसके तत्व जल जाते हैं। इसलिये उसे कम आग पर धीरे-धीरे पकाना चाहिये।
- (३) हरे साग में जीवन-तत्व अधिक होते हैं। अतएव हरा साग खाना लाभप्रद है।
- (४) दूध को केवल एक उफान ही तक गर्म करना चाहिये।

अधिक गर्म करने से दूध का स्वाद तो अच्छा हो जाता है परन्तु उसके तत्व कम हो जाते हैं ।

- (५) भोजन की मात्रा में फलों का होना आवश्यक है । फलों में विटामिन अधिक होते हैं । वह फल जो कि मौसमी होते हैं उनका मौसम के समय उपभोग करना चाहिये ।
- (६) मांस तथा अण्डे में काफी विटामिन होते हैं और दूध तथा घी के अभाव में यह बहुत आवश्यक तथा उपयोगी हैं ।
- (७) बाजार की चीनी न खाकर गुड़ खाना अधिक अच्छा है । गुड़ में विटामिन 'ए' अधिक होता है परन्तु चीनी में वह नहीं पाया जाता ।
- (८) दूध न मिले तो मट्ठा या मक्खन निकला दूध पीना चाहिये । मक्खनियाँ दूध में उतनी ही अधिक प्रोटीन होता है जितनी कि अच्छे दूध में ।
- (९) हर मौसम का भोजन उन्हीं पदार्थों में से बनाना चाहिये जो उस मौसम में मिलते हों ।
- (१०) घी के स्थान पर तेल और हरा साग खाया जा सकता है । घी में विटामिन 'ए' होता है जो कि तेल में नहीं पाया जाता । परन्तु हरे साग में विटामिन 'ए' होता है । इसलिये तेल में हरा साग बनाकर खाने से घी का सा असर होता है । करमकल्ले को तेल में पकाकर खाने से उसमें भी घी के से गुण पैदा हो जाते हैं ।
- (११) चावलों को पकाते समय उनका माँड़ निकालना नहीं चाहिये । पके चावलों में कोई तत्व बाकी नहीं रहते सब

गुण माँड़ में आ जाते हैं। इसलिये जाबल के साथ माँड़ भी खाना चाहिये।

(१२) दाल को छिलके के साथ खाना चाहिये। छिलके में काफी तत्व होते हैं।

(१३) फल खाने समय उनके छिलके को उतारना नहीं चाहिये। कुछ व्यक्ति सेब, अमरुद, नासपाती आदि फलों के छिलके को उतारकर खाते हैं। ऐसा करना भूल है। छिलकों में जीवन तत्व बहुत पाये जाते हैं।

(१४) नशीली वस्तुओं का सेवन नहीं करना चाहिये। इससे स्वास्थ्य खराब हो जाता है।

१५) चाय, काफी, सिगरेट, तम्बाकू आदि का सेवन स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है। इनका सेवन नहीं करना चाहिये।

सारांश

मनुष्य को स्वस्थ रहने के लिये यह आवश्यक है कि वह पौष्टिक तथा उपयुक्त मात्रा में भोजन करे। भोजन से उसे चर्बी, प्रोटीन कार्बोहाइड्रेट तथा खनिज-द्वार तत्व प्राप्त होते हैं। चर्बी से शरीर को शक्ति मिलती है। प्रोटीन शरीर को वृद्धि करता है। कार्बोहाइड्रेट शरीर को शक्ति पहुँचाते हैं और खनिज-द्वार पदार्थ खून को साफ करते तथा हड्डी बढ़ाते हैं।

एक हिन्दुस्तानी के लिये यह आवश्यक है कि वह २,६०० कैलोरीज प्रातः भोजन द्वारा शरीर में पहुँचावे। इसके लिये उसे प्रति दिन १८ औंस अनाज, ३ औंस दाल, २ औंस चीनी, ६ औंस

तरकारी, १ औंस फल, १½ औंस तेल तथा घी, ८ औंस दूध तथा २ या ३ औंस अण्डा या गोश्त खाना चाहिये ।

हमारे देश के किसान बहुत गरीब हैं । वह दोनों समय भोजन भी नहीं कर पाते । उनका भोजन जेल की खुराक से भी कम है ।

भोजन में तत्व बढ़ाने के लिये कम आग पर सिका भोजन जिसमें साग, फल आदि की मात्रा अधिक हो खाना चाहिये । फलों के छिलकों को हटाना नहीं चाहिये तथा चावल से माँड़ अलग नहीं करना चाहिये । मौसमी फल तथा तरकारियों का सेवन अच्छा है ।

प्रश्न

१. मनुष्य के लिये भोजन क्यों आवश्यक है ? भोजन करने से उसे क्या लाभ होता है ?
२. भोजन में क्या-क्या जीवन-तत्व होते हैं ? स्पष्टतया बताइये ।
३. विटामिन कितने प्रकार के होते हैं ? उनमें क्या भेद हैं ?
४. खनिजद्वार पदार्थ क्या-क्या हैं ? वह शरीर को क्या लाभ पहुँचाते हैं ?
५. एक भारतवासी के लिये कितना भोजन करना आवश्यक है ? विस्तारपूर्वक लिखिये ।
६. भारतवासियों का भोजन कैसा होता है ? उसमें कितनी पुष्टता होती है ?
७. भोजन में जीवन-तत्व बढ़ाने के लिये क्या-क्या करना चाहिये ?

हाई-स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. आप 'संतुलित भोजन' से क्या समझते हैं ? इसकी क्या विशेषताएँ हैं ? (१९४७)

भाग ४
विनिमय

[अध्याय: १. विनिमय । २. वस्तु बेचने के स्थान ।]

अध्याय दसवाँ

विनिमय

आजकल आप देखते होंगे कि दूकानदार शीशों से जड़ी तथा चमचमाती पालिशवाली आलमारियों में सामान रखकर बाजार में बेचते हैं। रात्रि के समय तरह-तरह के रंगीन बल्बों से वह अपनी दूकान की शोभा को और भी अधिक बढ़ा देते हैं। नये-नये डिजायनों के सामानों को वह स्थान-स्थान पर टाँग कर उनका विज्ञापन करते हैं। ऐसा लगता है मानों उनकी दूकानों पर नृत्य ही दीवाली होती है। उनका इस तरह ऊपरी दिखावट पर इतना रूपया व्यय करने का आखिर क्या कारण है ? क्या आप बता सकते हैं ? उनका एकमात्र उद्देश्य अपनी दूकाना की बिक्री बढ़ाना है। वह जानते हैं कि रोशनी में हर एक वस्तु अधिक सुन्दर लगने लगती है। इसलिए दर्शकों को विजली के प्रकाश में प्रत्येक वस्तु बहुत अधिक सुन्दर जँचेगी और वह कुछ वस्तुयें अवश्य ही खरीदना चाहेंगे। आधुनिक समय में विज्ञापन का यह एक नया तरीका निकला है। गाँव के बाजारों में आप को यह सब देखने को नहीं मिलेगा। परंतु यदि आप किसी बड़े शहर में जावें तो आपकी आँख विजली के प्रकाश में अवश्य ही चकाचोंध हो जावेंगी।

विज्ञापन की यह कला नई है। पुराने समय में विज्ञापन तो जहाँ तहाँ रहा बाजारों का नाम तक न था और न कुछ बिक्री ही होती थी। आवश्यकता की सभी वस्तुयें मनुष्य स्वयं ही पैदा करते थे तथा उनको उपभोग कर संतुष्टि हो जाते थे। न

प्रारंभिक अर्थशास्त्र

किसी से कुछ लेना और न किसी को कुछ देना। आत्म-निर्भरता पूरी थी और वस्तु विनिमय का नाम तक न था।

परन्तु धीरे-धीरे यह दशा बदली। लोगों में निपुणता आना प्रारम्भ हो गया और श्रम का विभाजन आरम्भ हुआ। लोगों ने आवश्यकता की सभी वस्तुओं का बनाना बन्द कर दिया, वह केवल एक ही वस्तु बनाने लगे और अन्य वस्तुएँ उस वस्तु के बदले में लेने लगे। यानी यदि वह गेहूँ पैदा करते थे तो गेहूँ देकर जुलाहे से कपड़ा, लुहार से खुरपी, ग्वाले से दूध, आदि ले लेते थे। उस समय मुद्रा का चलन आरम्भ नहीं हुआ था, केवल वस्तु की अदला-बदली होती थी।

जैसे-जैसे आर्थिक प्रगति होती गई वस्तु की अदला-बदली के स्थान पर मुद्रा का चलन आरम्भ हो गया। अब किसी एक वस्तु में ही सभी वस्तुओं का मूल्यांकन होने लगा। जैसे यदि मान लिया जाय कि किसी समय गेहूँ चलन-मुद्रा थी तो उस समय यह कहा जाता होगा कि १ गज कपड़े का मूल्य ५ सेर गेहूँ है या १ सेर दूध का दाम २ सेर गेहूँ है, या १ सेर घी का दाम ८ सेर गेहूँ है या १ गाय का दाम १२ मन गेहूँ है आदि। धीरे-धीरे वस्तु की जगह कोई धातु चलन-मुद्रा मानी जाने लगी। वह स्थान बहुत दिनों तक स्वर्ण ने ले रखा था। अब धातु-मुद्रा की जगह कागजी मुद्रा का चलन आरम्भ हो गया है।

जैसे ही मुद्रा का चलन आरम्भ हुआ, उसी समय से अदला बदली की जगह क्रय-विक्रय आरम्भ हो गया। कपड़े के बदले में गेहूँ देने के स्थान पर रुपया दिया जाने लगा। गाय को भी रुपया द्वारा खरीदना सम्भव हो गया। तभी से बाजारों का निर्माण भी शुरू हुआ और धीरे-धीरे करके चौड़ी-चौड़ी सड़कों के दोनों

ओर बल्बों से प्रकाशित दूकानें खुल गईं जहाँ आप शौक से जाकर जो चाहें खरीद सकते हैं।

विनिमय का अर्थ—सम्पत्ति की अदला-बदली को ही विनिमय कहते हैं। चाहे आप सम्पत्ति के बदले में रुपया दें या कोई दूसरी वस्तु, दोनों ही अवस्था में यह विनिमय कहा लावेगा।

विनिमय में वस्तु का मालिक बदल जाता है। परन्तु साथ में यह भी आवश्यक है कि अदला-बदली कानूनन ठीक हो। दूसरे यह अदला-बदली दोनों तरफ से व्यक्तियों की मर्जी से की गई हो। तीसरे सम्पत्ति की अदला-बदली दोनों तरफ से होनी चाहिये। याद आप कुछ दे तो बदले में भी आपको कुछ मिलना अवश्य चाहिए।

उदाहरण के लिये मान लीजिये कि सेठ सुरेशचन्द्र के घर चोर चोरी कर ले जाते हैं। चोरी में उनकी सोने की अँगूठी भी चली जाती है। चोरी के कारण अँगूठी के मालिक अब सुरेशचन्द्र नहीं रहे। अब तो चोर उसका मालिक है। परन्तु यह अर्थशास्त्र के हिसाब से विनिमय नहीं क्योंकि यह अदला-बदली (१) न तो कानूनन मान्य है (२) न सेठ सुरेशचन्द्र की मर्जी से हुई है और (३) न सेठ जी को बदले में कुछ मिला ही है।

इसी तरह मान लीजिये कि आपके पिता बड़े अमीर हैं और उन्हें सरकार को प्रतिवर्ष एक हजार रुपये कर के रूप में देने पड़ते हैं। परन्तु क्या यह विनिमय है? नहीं यह विनिमय नहीं। यद्यपि (१) यह कानूनन ठीक है और (२) आपके पिताजी ने मर्जी से सरकार को रुपये दिये हैं फिर भी क्योंकि उसके बदले आपके पिताजी को कोई सम्पत्ति नहीं मिली इसलिये यह विनिमय नहीं।

लेकिन यदि आप अपने शहर से दिल्ली गाड़ी में बैठकर जाते हैं तो आपको गाड़ी में बैठने के लिये टिकट खरीदना पड़ता है। बिना टिकट खरीदे आप दिल्ली नहीं पहुँच सकते। गाड़ी सरकार की है और उनसे होनेवाली नफ़ा सरकार स्वयं ले लेती है। तब यह विनिमय है या नहीं? अर्थशास्त्र के हिसाब से यह विनिमय है क्योंकि (१) यह कानूनन मान्य है, (२) आप अपनी मर्जी से टिकट का रुपया देते हैं तथा (३) टिकट के रुपये के बदले में आप दिल्ली तक रेल में सवारी कर सकते हैं। इसी तरह यदि आप बाजार में जाकर कोई भी सामान खरीदे तो वह विनिमय कहलावेगा।

विनिमय के भेद

विनिमय दो प्रकार से हो सकता है: (१) वस्तु-परिवर्तन कर (Barter) जिसमें एक वस्तु के बदले में दूसरी वस्तु मिलती है तथा (२) क्रय-विक्रय कर (Purchase and sale) जिसमें वस्तु की अदला बदली रुपयों द्वारा की जाती है। यदि आप अनाज देकर लुहार से फावड़ा ले लें तो यह वस्तु-परिवर्तन कहलावेगा। परंतु यदि आप अनाज को मंडी में बेचकर रुपया वसूल कर लें और फिर उस रुपये से आप फावड़ा खरीद लें तो यह क्रय-विक्रय कहलावेगा।

वस्तु-परिवर्तन

हम बता चुके हैं कि पुराने समय में वस्तु परिवर्तन ही प्रचलित था। परन्तु धीरे धीरे इस प्रथा के स्थान पर क्रय-विक्रय प्रारम्भ हो गया है। यह इस कारण हुआ क्योंकि वस्तु-परिवर्तन में अनेकों कठिनाइयाँ हैं। वस्तु-परिवर्तन तभी

संभव हो सकता है जब कि दो मनुष्य ऐसे मिल जायँ जिनमें प्रत्येक द्वारा दिये जानेवाली वस्तु की दूसरे को माँग हो। उदाहरण के लिये राम और श्याम में वस्तु परिवर्तन तभी संभव हो सकता है जब कि राम के पास का धी श्याम लेना चाहे और श्याम के गेहूँ राम ले सके। जब तक ऐसे व्यक्ति नहीं मिलते वस्तु-परिवर्तन हो नहीं सकता। दूसरी कठिनाई तब उपस्थित हो उठती है जब कि एक व्यक्ति एक वस्तु के बदले में कई वस्तुएँ लेना चाहता है। मान लीजिये श्याम के पास एक भैंस है और उसके बदले में वह कपड़ा, अन्न, कलम तथा कैंची चाहता है। वह भैंस के टुकड़े तो कर नहीं सकता। तो फिर वह करे क्या ? इसी कारण वस्तु-परिवर्तन का चलन कम हो गया है।

परन्तु हमारे देश के गाँवों में वस्तु-परिवर्तन अब भी काफी मात्रा में प्रचलित है। गाँव में अब भी खेती के कटने के समय धोबी, नाई, लुहार, वढ़ई, कुम्हार आदि सभी को अन्न दे दिया जाता है और वह दूसरी फसल तक किसान का बे-पैसे काम करते हैं। यही नहीं कपड़े के बदले में अन्न अब भी दिया जाता है। यही हाल अन्य वस्तुओं के बारे में भी है।

वस्तु-परिवर्तन का गाँवों में इतना अधिक चलन होने के कई कारण हैं। एक तो गाँववाले पढ़े-लिखे नहीं हैं इसलिए वह रुपये-पैसों का हिसाब ठीक से नहीं रख सकते। वह सिक्कों को ठीक से पहचान भी नहीं सकते और प्रायः उसमें भूल कर जाते हैं। सीधे होने के कारण लोग उन्हें सुगमता से नकली सिक्के दे देते हैं और वह जान भी नहीं पाते। दूसरे बाप-दादों के समय से उनके यहाँ वस्तु-परिवर्तन चला आया है। सामाजिक रीति-रिवाज भी उसी पर निर्भर हैं। नाई, धोबी,

कुम्हार आदि की लेन-देन की प्रथा पहले से ही निश्चित है जो अब बदली नहीं जा सकती। तीसरे, गाँववाले नोटों से घबड़ाते हैं क्योंकि वह पसीने या पानी में गल जाते हैं, चूहे उन्हें काट जाते हैं तथा जमीन में उन्हें गाढ़ा नहीं जा सकता। इसी कारण वस्तु-परिवर्तन प्रथा की इतनी प्रचुरता है।

क्रय-विक्रय

क्रय-विक्रय रूपों द्वारा किया जाता है। इसमें वस्तु-परिवर्तन की बुराइयाँ नहीं हैं। इसीलिए इसका प्रचलन आजकल सभी स्थानों पर बढ़ता जा रहा है। क्रय-विक्रय में दो भिन्न-भिन्न क्रियाओं को किया जाता है : (१) क्रय या खरीदने की तथा (२) विक्रय या वस्तु बेचने की। दोनों क्रियायें एक दूसरे पर निर्भर हैं। बिना खरीद के विक्री नहीं हो सकती और जब तक विक्री नहीं होती कोई कुछ वस्तु खरीदी नहीं जा सकती।

बाजार

परन्तु खरीद और विक्री तभी हो सकती है जब कि वस्तुओं का कोई बाजार हो। अर्थशास्त्र में बाजार से मतलब उस स्थान से नहीं जहाँ ग्राहक और विक्रेता आपस में आकर मिलते हैं। हम अर्थशास्त्र में बाजार उन सुन्दर सजी हुई दुकानों से नहीं कहते जहाँ पर सभी वस्तुयें भाड़-पोंछकर सजा कर रखी हुई होती हैं ताकि ग्राहक आकर्षित होकर उन्हें खरीद ले जाँय अर्थशास्त्र में बाजार का मतलब तो केवल किसी वस्तु के खरीदारों तथा बेचनेवालों से है जिनमें आपस में स्पर्धा है। बाजार के लिये यह आवश्यक नहीं कि खरीदार तथा बेचनेवाले किसी एक स्थान पर मिलें। सुरेश के पिता विलायत से कपड़ा मँगवा

कर बेच सकते हैं चाहे उन्होंने अपने जीवन में कभी विलायत देखा भी न हो। रेलगाड़ी, जहाज तथा हवाई जहाजों के चल जाने से देश-विदेशों में व्यापार होने लगा है और बाजारों का क्षेत्र काफी बढ़ गया है।

बाजार का क्षेत्र एक गाँव या एक शहर तक सीमित हो सकता है, पूरे देश तक फैला हुआ हो सकता है या समस्त संसार तक विस्तृत हो सकता है। यह तो वस्तु उसकी माँग तथा पूर्ति पर निर्भर रहता है। यदि किसी वस्तु की माँग सर्वव्यापी है जैसे गेहूँ, रुई, सोना, चाँदी, कपड़ा आदि की, यदि उनकी पूर्ति भी हो सकती है, यदि वह वस्तुयें शीघ्र नष्ट होने वाली नहीं तथा यदि उनके उपभोक्ता वस्तुओं के एक देश से दूसरे देश तक ले जाने के व्यय को सह सकते हैं तो उन वस्तुओं का बाजार समस्त संसार तक फैला हुआ होगा। उदाहरण के लिए गेहूँ, रुई, चीनी, लोहा, सोना, चाँदी, कपड़ा, रेडियो, साइकिल, मोटर आदि का बाजार सम्पूर्ण संसार तक विस्तृत है। इसके विपरीत ईटों का बाजार एक गाँव या शहर तक सीमित रहता है और गांधी टोपी, जनानी धोती आदि का बाजार भारतवर्ष तक ही फैला हुआ है।

कीमत का निर्धारण

बाजार में कोई वस्तु खरीदते समय आपको कीमत देनी होती। आप पूछ सकते हैं कि यह कीमत किस तरह निर्धारित होती है? यह कैसे पता लग जाता है कि इस कलम के मूल्य ८ रूपया है, उसका दस तथा तीसरे का बीस? क्या यह सब अटकल से होता है।

कीमत निर्धारण का भी नियम है। बाजार में किसी वस्तु की कीमत उस वस्तु की माँग तथा पूर्ति पर निर्भर रहती है। वस्तु की माँग खरीदारों पर निर्भर है। यदि वस्तु खरीदारों की किसी तीव्र आवश्यकता को सन्तुष्ट करती है तो खरीदार उस वस्तु के लिए अधिक रुपया देने के लिये तैयार हो जावेंगे अन्यथा नहीं। कोई खरीदार वस्तु के लिये अधिक से अधिक उतना ही रुपया देगा जितनी कि उस वस्तु से उसको उपयोगिता मिलती है। वस्तु से मिलनेवाली उपयोगिता उसके मूल्य की अधिकतम सीमा है जिससे आगे कीमत कभी नहीं बढ़ सकती।

वस्तु की पूर्ति उसके उत्पादन के व्यय पर निर्भर है। जब वस्तु बनाई जाती है तो उस पर धन व्यय करना पड़ता है। वस्तु विक्रेता के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि उस वस्तु के बदले वह कम से कम उतना रुपया तो ले ही जितना कि उसका खर्च हुआ है। यदि उसके दस रुपये खर्च हुए हैं और उसे नौ रुपये ही मिल रहे हैं तो वह उस चीज को कदापि नहीं बेचेगा। उसे कम से कम दस रुपये तो चाहिये ही। इस तरह वस्तु के उत्पादन का खर्च उसकी कीमत की नीची से नीची सीमा है जिससे कम वह कभी नहीं हो सकती।

इन दो सीमाओं के अन्दर ही जो वस्तु की उपयोगिता तथा उत्पादन के व्यय से निश्चित होती है, वस्तु की कीमत निर्धारित होती है। वस्तु विक्रेता यह चाहते हैं कि वह अधिक अधिक कीमत वसूल करे। ग्राहक कम से कम देना चाहते हैं। इसीसे दोनों में स्पर्धा होती है। अन्त में ग्राहक की वस्तु पाने की इच्छा की प्रबलता तथा विक्रेता की वस्तु बेचने की प्रबलता ही वस्तु का मूल्य निर्धारित करती हैं। बाजार में कीमत वह होती है जहाँ पर वस्तु की माँग तथा पूर्ति दोनों बराबर हों।

उदाहरण के लिये मान लीजिये आप बाजार में जाकर अमरूद खरीदते हैं। अमरूद वाला कहता है कि वह दो-दो आने अमरूद देगा। आप कहेंगे कि नहीं हम दो-दो पैसे अमरूद लेंगे। इस पर मोल-तोल होता है। अमरूदवाला कहता है बाबू, अमरूद छै-छे पैसे ले जाइये। आप फिर भी नहीं मानते और अमरूद के दाम तीन-तीन पैसे तक बढ़ा देते हैं। अन्त में सौदा चार-चार पैसे की अमरूद में तय हो जाता है। इस दिन प्रति दिन के होने वाले मामूली से उदाहरण में आप देख सकते हैं कि अर्थशास्त्र के नियम का पूरी तरह पालन होता है।

गाँवों में मूल्य निर्धारण

गाँवों में कीमत ऊपर दिये प्रकार निश्चित नहीं होती। ऊपर दिया हुआ नियम तो तब लागू होता है जब कि विक्रेता तथा ग्राहकों में पूर्ण-स्पर्धा हो। परन्तु पूर्ण-स्पर्धा इस संसार में कभी भी नहीं होती। गाँववाले किसान प्रायः कर्जदार हैं। फिर खेती तैयार होते ही उन्हें लगान चुकाना पड़ता है इसलिये उन्हें अनाज बेचने की जल्दी रहती है। बाजारों की मंडी जाने की उनके पास सुविधा नहीं क्योंकि न तो उनके पास गाड़ियाँ हैं और न वह मन्डियों की हालत ही जानते हैं। लाचार होकर या तो वह सब फसल गाँव के दूकानदारों के हाथ बेच देते हैं या महाजन को दे देते हैं जिससे उन्होंने कर्जा ले रखा है। यह लोग किसानों से बहुत सस्ते दामों पर फसल खरीदते हैं। तौल में और कीमत देते समय वह अलग से बेईमानी कर लेते हैं। बिचारै किसान के पास दूसरा कोई साधन नहीं इसलिये लाचार होकर वह इस बेईमानी का शिकार हो जाता है।

इसके विपरीत जब गाँव के दूकानदार किसानों को सामान बेचते हैं तो काफी दाम वसूल करते हैं। यदि शहर में दिया-सलाई तीन पैसे में मिलती है तो गाँव में वह चार-पाँच पैसे में ही मिलेगी। गाँव में इन दूकानदारों से न तो कोई स्पर्धा करने-वाला ही है और न गाँववाले शहर आकर इन चीजों को सुगमता से खरीद ही सकते हैं। उनको गाँव से शहर आना पड़ेगा। इसलिये गाँव के दूकानदार काफी मुनाफा उठाते हैं।

सारांश

सम्पत्ति की अदला-बदली को विनिमय कहते हैं। इसके लिये यह आवश्यक है कि अदला-बदली (१) कानूनन मान्य हो, (२) दोनों की मर्जी से की गई हो तथा (३) दोनों को अपनी वस्तु के बदले में कुछ मिले।

विनिमय दो प्रकार से हो सकता है: (१) वस्तु परिवर्तन तथा (२) क्रय-विक्रय द्वारा। वस्तु-परिवर्तन की प्रथा आजकल बहुत कम हो गई है फिर भी भारतवर्ष के गाँवों में इसकी प्रचुरता है।

क्रय-विक्रय बाजारों में होता है। बाजार से आशय वस्तु के ग्राहक तथा विक्रेताओं से है जिनमें आपस में स्पर्धा है।

बाजार का क्षेत्र वस्तु पर, उसकी माँग तथा उसकी पूर्ति पर निर्भर है। कभी २ वह केवल एक गाँव तक ही सीमित रहता है, तो कभी देश तक फैला रहता है तो कभी पूरे संसार तक विस्तृत होता है।

वस्तु की कीमत उसकी माँग तथा पूर्ति पर निर्भर रहती है। बाजार में कीमत वहाँ पर निर्धारित होती है जहाँ पर वस्तु की माँग तथा पूर्ति बराबर होती है।

परन्तु गाँवों में स्पर्धा की कमी के कारण किसानों को फसलों के दाम बहुत कम मिलने पाते हैं। महाजन उन्हें बहुत कम कीमत देते हैं।

प्रश्न

१. विनिमय का अर्थ समझाइये। वस्तु-परिवर्तन तथा क्रय-विक्रय क्या इसीके भेद हैं ?
२. विनिमय की किस प्रकार प्रगति हुई ? लिखिये।
३. वस्तु परिवर्तन से हानियाँ बताइये। यह गाँवों में अब भी क्यों प्रचलित है।
४. बाज़ार की क्या परिभाषा है ? क्या बाजार किसी स्थान को कहते हैं ?
५. बाज़ार का विस्तार किन-किन बातों पर निर्भर रहता है ? क्या लोहे में वह गुण पाये जाते हैं ?
६. कीमत किस तरह निर्धारित की जाती है ? समझाकर लिखिये।
७. गाँवों की प्रचलित अवस्था में कीमत किस प्रकार निश्चित होती है ? समझाइये।

हाई-स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. वस्तु-परिवर्तन क्या है ? क्या यह आपके स्थान पर अब भी प्रचलित है ? क्रय-विक्रय ने इसका स्थान अब क्यों ले लिया है। (१६४३)

में लालटेन या दिया के प्रकाश में व्यापार करते हैं। दुकानों पर बिक्री भी कम होती है इसलिये अधिक देर तक दुकान खोलने की आवश्यकता ही नहीं। सामान खरीदनेवाले केवल गाँव के ही लोग होते हैं इसलिये बटन, डोरा, सुई, कपड़ा धोना साबुन, भुने चने, गुड़, चावल, लाई, मिठाई आदि मामूली चीजें दुकानों पर देखने को मिलती हैं। तम्बाकू तथा बीड़ा की बिक्री काफी होती है क्योंकि अधिकतर किसान इसके आदी है।

गाँव के दुकानदार शहरवालों की तरह दुकान में केवल एक ही वस्तु नहीं रखते। शहर में तो खरीदारी बहुत होती है इसलिये बड़े-बड़े दुकानदार केवल एक ही चीज बेचकर भी काफी लाभ उठा सकते हैं। परन्तु गाँव में कम बिक्री होती है। इसलिये एक दुकानदार कई चीजें रखता है। एक ही दुकान पर आपको डोरा, सुई, बटन, साबुन, बनिआयन, मौजे, भुना चना, गुड़ आदि मिल सकते हैं।

शहर में दुकाने अधिकतर घर से अलग स्थान पर होती है। गाँववाले घर के सामने ही छप्पर डालकर या घर के एक कमरे में दुकान लेकर बैठ जाते हैं। जहाँ सामान बिगड़ने का डर नहीं वहाँ तो वह खुले में ही सामान रख लेते हैं। यदि तेल की जरूरत हो तो तेली के घर जाकर तेल लिया जा सकता है। लुहार भी घर पर ही काम करता है।

गाँव के कुछ दुकानदार तो दुकान खोलकर भी नहीं बैठते। क्योंकि एक गाँव में थोड़े आदमी होते हैं और वह जानते हैं कि किस आदमी के पास क्या चीज मिलती है। इसलिये आवश्यकता पड़ने पर खरीदार उस व्यक्ति के घर जाकर चीज खरीद लाते हैं। यह

वात फसल की बिक्री के बारे में अधिक उपयुक्त है। अन्न कार्तकारों के घर से हो खरीदा जाता है, वह दुकान लेकर नहीं बैठते।

हाट या पैंठ

हाट या पैंठ में गाँवों के बाजारों से बड़ी मात्रा में क्रय-विक्रय होता है। पैंठ में आप-पास के कई गाँवों के खरीदार और बेचनेवाले आते हैं। बिक्री भी ऊँचे पैमाने पर तथा अधिक होती है। इसलिये इनका भारी महत्व है। क्योंकि गाँववाले अपने गाँव में अधिक चीजें नहीं बेच सकते इसलिये वह पैंठ में जाकर चीजें बेचते हैं। यहाँ बिक्री अधिक होने के कारण कभी-कभी कीमत भी अच्छी मिल जाती है।

पैंठ प्रति-दिन नहीं लगती। प्रायः यह हफ्ते में दो बार लगती है। प्रत्येक पैंठ का दिन अलग-अलग निश्चित होता है फिर भी यह कहा जा सकता है कि प्रायः यह मङ्गलवार तथा बृहस्पति-वार को ही लगती हैं।

आस पास के गाँवों में से एक गाँव जो बीच में होता है वह चुन लिया जाता है। इसी गाँव में हाट या पैंठ लगती हैं। हाट प्रायः दोपहर बाद लगती हैं परन्तु कभी-कभी दिन में आठ-नौ बजे से आरम्भ होकर शाम तक बंद हो जाती हैं। हाट रात्रि के समय नहीं लगती क्योंकि एक तो लोगो को अपने-अपने गाँव जाना रहता है और दूसरे गाँवों में रोशनी का भी प्रबन्ध नहीं होता।

हाट के दिन आस-पास के गाँवों के किसान अपनी अपनी वस्तु लेकर हाट के स्थान पर इकट्ठे हो जाते हैं। कोई-किसी लावा

हैं तो कोई कुछ, और शीघ्र ही एक बड़ा सा बाजार लग जाता है। इस बाजार में खरीदार भी आना शुरू हो जाते हैं और क्रय-विक्रय आरम्भ हो जाता है। हाट में दुकानदार जिस स्थान पर दुकान लेकर बैठता है उसका उसे किराया भी देना पड़ता है। किराया प्रायः एक आना या दो पैसा होता है।

पैठ या हाट में बाजार के मुकाबले अधिक स्पर्धा होती है। यहाँ दुकानदार भी कई गाँवों के होते हैं और खरीदार भी काफी। इसलिये दुकानदारों में आपस में एक तरफ स्पर्धा होती है तथा खरीदारों में आपस में दूसरी तरफ। विक्रेता तथा क्रय करने वालों में स्पर्धा भी होती है। इसलिये यहाँ के मूल्यों में तथा शहर के मूल्यों में अधिक समानता होती है।

मेला

हमारे पूर्वजों ने हाटों के अलावा मेलों का भी आयोजन कर रखा था। वह रिवाज अब भी चालू है। मेले किसी बड़े गाँव में या करबे में लगते हैं। यह किसी त्यौहार के समय लगते हैं तथा इनके साथ कुछ धार्मिक महत्व भी लगा रहता है। यदि मेला ऐसे स्थान पर हुआ जहाँ कोई नदी बहती है तब तो किसी नहान के परब के दिन मेला लगता है। यदि उस स्थान पर मन्दिर हुआ या कोई समाधि हुई तो उस महात्मा के जन्म दिन या मृत्यु के दिन मेला लगता है। मेले को धार्मिक रूप देने का तात्पर्य यही था कि मेले में अधिक लोग आवें तथा उनके लगने में कोई गलती न हो। जैसे प्रयाग में माघ के सहीने में गंगा स्नान के कारण मेला लगता है जो एक माह तक रहता है। सोन का मेला, बटेसुर का मेला, गढ़मुक्तेश्वर का मेला आदि अन्य प्रसिद्ध मेले भी धार्मिक रूप लिये हुए हैं।

मेलों के लगने का समय निश्चित होता है जो हिन्दी तिथि पर निर्धारित हैं। उसी तिथि को मेले हर वर्ष लगते हैं। मेले विभिन्न समय तक के लिये लगते हैं—कभी चार-छै दिन, कभी कभी हफ्ते दो हफ्ते तो कभी महीने भर तक। मेलों में दूर-दूर से लोग आते हैं और दूकानें भी बहुत दूर-दूर से। प्रयाग के मेले में प्रान्त भर की दूकानें तो आती ही हैं दूसरे प्रान्तों की भी दूकानें आ जाती हैं। दूकानों पर हर प्रकार की वस्तु मिलती है—छोटी से छोटी वस्तु से लेकर काफी कीमती तक। बनारसी साड़ियों की दूकानें देखने को मिलती हैं तो मुने चने बेचने वालों की भी।

मेलों का उद्देश्य धार्मिक होने के साथ-साथ मनोरंजन भी है। यहाँ बच्चों के लिये खिलौने, देखने को सरकस या नोटों की तथा भूलने को चरख भी आते हैं। इसलिये गाँव के बच्चों के लिये यह विशेष महत्व रखते हैं। जहाँ भी मेला लगता है, वह वहाँ जाना नहीं भूलते।

मेलों में दुकानें दूर-दूर से आने के कारण तथा आदमी अधिक संख्या में आने के कारण काफ़ी विक्री होती है। गाँव वाले इन मेलों को बड़े चाव से देखते रहते हैं क्योंकि इन दिनों उनकी विक्री अच्छी हो जाती है।

हाट या मेलों का महत्व

हाट तथा मेले हमारे ग्रामीण आर्थिक जीवन में काफी महत्त्व रखते हैं। यही ऐसे स्थान हैं जहाँ विभिन्न गाँवों के क्रय-विक्रय करने वाले आपस में मिलते हैं तथा दुकानदारी करते हैं। जो गाँववाले मन्डी नहीं जाते वह अपनी फसलों की यहीं

बेचते हैं। यहीं पर वह बहुत से दस्तकारों से मिल कर दस्तकारी के नये तरीके सीख लेते हैं और फिर नई-नई डिजाइनों की चीजे बनाते हैं।

यहाँ मिलकर गाँव वाले नये-नये रीति-रिवाज समझते हैं तथा आपस की नई-नई बातें जानते हैं। यहीं पर बहुत से शादी के रिश्ते भी तय होते हैं तथा दूर के रहनेवाले रिश्तेदारों से भी मुलाकात हो जाती है। गाँववालों के शुष्क जीवन में यह थोड़े दिन के लिये प्रसन्नता ला देते हैं और वह अपना दुःख भूल कर नये-नये कपड़ों में सजधज कर बच्चों सहित नई-नई चीजे देखने निकल पड़ते हैं। गाँववाले प्रायः घूमना पसन्द नहीं करते और न गाँवों में आवागमन के साधन ही मिलते हैं। इसलिये हाट तथा मेलों का महत्व बड़ा भारी है।

पर दुर्भाग्य से इनको संगठित करने का प्रयास कोई नहीं करता। क्योंकि यह पुराने समय से चले आये हैं इसलिये यह अब भी लगते हैं। परन्तु उनमें आवश्यक सुधार नहीं किया जाता। यह बड़ा ही अच्छा हो यदि सरकार इस तरफ ध्यान दे तथा मेलों के संगठन का कार्य एक कमेटी के हाथ सुपुर्द कर दे जिसमें गाँवों के सरपंच, टाउन एरिया तथा डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के चेयरमैन हों। वह इनको ठीक समय पर लगाने का प्रबन्ध किया करे। तभी इनकी दशा सुधर सकती है।

शहर में वस्तु बेचने के स्थान

मन्डो

जो गाँववाले अपनी फसल बड़े कस्बे या शहर में लाकर बेचते हैं उन्हें मन्डो में एकत्रित होना पड़ता है। मन्डो में केवल

दुकानदार आकर गाँव वालों से सामान खरीद सकते हैं, वहाँ रोजगारी, बिक्री नहीं होती। मन्डी में कई आढ़तिया होते हैं। यहीं आढ़तिया कमीशन या दलाली लेकर गाँववालों की फसल बेचने का प्रबन्ध करते हैं।

मन्डी एक बड़ा सा मैदान होता है जहाँ आढ़तियों के अपने-अपने बैठने के स्थान (जिन्हे 'फड़' कहते हैं) होते हैं। इन्हीं स्थानों पर वह गाँववालों को एकत्रित करते हैं। गाँववाले इस स्थान पर अपना-अपना सामान अलग-अलग ढेर बनाकर लगा देते हैं। जब काफी बेचनेवाले आ जाते हैं तो आढ़तिया खरीदने वाले दुकानदारों को इकट्ठा करता है। दुकानदार प्रत्येक ढेरी के माल को अच्छी तरह देख-देखकर भाव बोलते हैं। जो उस माल को सबसे अधिक मूल्य पर लेना चाहता है उसी के नाम बोली समाप्त हो जाती है तथा उसे वह उस ढेर के अनाज को खरीदना पड़ता है।

सब सामान की बोली हो जाने के बाद सामान की तुलाई शुरू होती है। खरीदार बोरे लेकर सामान लेने आ जाते हैं। आढ़तिया एक आदमी का (जो तौला कहलाता है) सामान तोलने के लिये निश्चित कर देता है। वह सामान तौल तौल कर बोरे में भरता जाता है और इस तरह सामान की पूरी तौल हो जाती है। तब सामान की तौल हो जाने पर आढ़तिया गाँववाले को हिसाब करके पैसे दे देता है।

पर आप पूछेंगे कि क्या आढ़तिया इतने सब कामों के लिये कुछ भी नहीं लेता ? नहीं, वह मुफ्त काम नहीं करता। वह अपने कामों के लिये आढ़त या दलाली या कमीशन लेता है।

यह कमीशन प्रायः दो पैसा रुपया होता है। पर आप कहेंगे कि इतने काम के दो पैसा रुपया तो कोई अधिक कमीशन नहीं? आपकी बात कुछ हद तक ठीक है। परन्तु आढ़तिया सिर्फ अपनी आढ़त लेकर ही सन्तुष्ट नहीं हो जाता। वह कुछ और भी बेईमानी द्वारा वसूल कर लेता है। वह गाँववालों से धर्म-खाते, तौला के लिये, भंगी के लिये, पानीवालों आदि के लिये अलग से पैसा काट लेता है। यही नहीं, वह तौलते समय पाँच सेर का साढ़े पाँच सेर तौलता है। कहीं-कहीं तो यह रिवाज है यदि गाँववाला फल या तरकारी बेचने वाले को उस फल या तरकारी के पाँच अदद बाँट के साथ पीछे रख दिये जाते हैं और तब वह पाँच सेर माना जाता है। यानी यदि कोई गाँववाला आम बेचने लावे तो पाँच आमों को पाँच सेर के बाँट के साथ रखकर तब तौला जावेगा। पाँच आम एक सेर के हो जाते हैं। इस तरह पाँच सेर की जगह छै सेर तौला जाता है। यदि कभी बड़े-बड़े फल बेचने की बात हुई—जैसे कि यदि गाँववालों लौकी बेचने लावे तो पाँच सेर की जगह साढ़े-छै सेर तौली जाती है। यह तो ईमानदारी के साथ खुले आम सीना निकालकर किया जाता है। इसके अतिरिक्त जो बेईमानी की जाती है वह अलग। इस तरह गाँव से जानेवालों को काफी लूटा जाता है। भाव में दुकानदार उनसे सस्ते दामों पर चीजें खरीदते हैं। बेचारे किसानों को बाजार-भाव का तो कुछपता रहता ही नहीं इसलिये वह यह भी नहीं जान पाते कि उनको उचित कीमत मिल रही है या नहीं।

दलालों की धुरेशानी

ऊपर दिये गये विवरण से आप समझ गये होंगे कि चाहे

किसान गाँव में सामान बेचें या शहर में वह बुरी तरह लूटे जाते हैं। चाहे गाँव का बनिया या महाजन हो या शहर का आढ़तिया सभी उनके भोलेपन तथा नासमझी से फायदा उठाते हैं। गाँव का बनिया यह ज्ञानता है कि किसान को फसल काटते ही रुपये की आवश्यकता पड़ती है। उसे जमींदारों को लगान, महाजन को किश्त, नाई, धोबी, कुम्हार आदि को पैसा देना होता है। इसलिये उसे फसल बेचने को उतावली रहता है। अतएव जैसे ही किसान उसके पास आया वह काफी सस्ते दामों पर फसल खरीद लेता है। किसान तो यह जानते ही नहीं कि बाजार में उन वस्तुओं के क्या दाम हैं। बनिया उनको उल्टे-सीधे पाठ पढ़ा कर मन चाहे दाम दे देता है। तौल-नाप तथा हिसाब में जो बेईमानी करता है वह तो अलग से। यही हाल गाँव के महाजन का है। क्योंकि उसने उधार रुपया दिया है इसलिये किसानों को उसका डर रहता है। वह उसे नाराज नहीं कर सकते इसलिये वह जो कहता है—चाहे वह उंचत हो या अनुचित—उसकी बात माननी ही पड़ती है। आढ़तिया का हाल आप जान ही गये हैं। किसानों की दशा तो ऐसी हो गई है कि 'इधर गिरें तो कुँआ उधर गिरें तो खाई।'

फसल की बिक्री में अन्य कठिनाइयाँ

मन्डी में आढ़तिया द्वारा तथा गाँव में महाजन तथा बनिया द्वारा की जानेवाली लूट के अतिरिक्त भी फसल की बिक्री में कई अन्य कठिनाइयाँ भी हैं। गाँव में आवागमन के साधन पर्याप्त नहीं। लोगों को या तो पैदल ; या ऊँट, घोड़े या गदहे पर ; या बैलगाड़ियों में ही सामान ले जाना पड़ता है। हर एक किसान के पास घोड़े ऊँट या बैलगाड़ियाँ तो होती नहीं।

उनको सामान ले जाने के लिये गाड़ियाँ किससे पर करजी होती हैं और उनमें खर्च बहुत पड़े जाता है। गाड़ीवाला अपना खर्च, बैलों का खर्च, गाड़ी की घिसावट तथा मुनाफा यह सब घसूल करता है। यदि रेल से उतनी ही दूर सामान भेजा जाय तो खर्च चौथाई भी न पड़े। फिर यह गाड़ियाँ बड़ी धीरे-धीरे चलती हैं और काफी समय बर्बाद करती हैं। इस पर भी एक किसान को पूरी गाड़ी करनी पड़ती है, चाहे उसके पास ले जाने को गाड़ी भर सामान हो या न हो। इसमें उसका व्यय बहुत बढ़ जाता है।

दूसरे गाँवों के रास्ते बहुत बुरे हैं। वहाँ सीमेन्ट या तार-कोल की पक्की सड़के नहीं हैं। कहीं-कहीं तो कंकड़ की सड़के हैं अन्यथा गाँव वाले खेतों में होकर ही आने-जाने का मार्ग बना लेते हैं। रास्ते कच्चे तो होते ही हैं, उनकी मरम्मत का प्रश्न उठता ही नहीं। बरसात के दिनों में तो वह पानी के भरे तालाब-हा ही जाते हैं और आना-जाना कठिन और कष्टदायक हो जाता है। सरकार को चाहिये कि शीघ्र से शीघ्र रास्तों को पक्का करने का प्रबन्ध करे जिससे गाँव के लोग आसानी से शहर आ जा सकें।

तीसरे गाँव वाले सीधे, बिना पढ़े-लिखे तथा वास्तुओं के भाव से अनभिन्न रहते हैं। इसके कारण लोग उन्हें ठग ले जाते हैं। इसकी परम आवश्यकता है कि गाँव वालों को उचित शिक्षा दी जाय तथा उनको बाजारों के भाव बताये जायँ। इसमें ग्राम पंचायत लाभदायक सिद्ध हो सकती हैं। सरकार रेडियो पर ग्रामीण जनता के प्रोग्राम में फसलों के भाव बताती है। परन्तु कितने गाँवों में रेडियो हैं तथा कितने में लोग उन्हें सुनते हैं? इससे कहीं अच्छा हो यदि सरकार फसलों के बँटने के समय

स्कूल के मास्टर्स को यह काम सौंप दे कि वह गाँव में जा जाकर भाव बतावें। मास्टर्स को यह भाव डाक द्वारा प्रतिदिन बताये जा सकते हैं। मास्टर्स को इसके लिये कुछ वेतन दिया जा सकता है।

सहकारी-बिक्री संस्थाएँ

परन्तु क्या इस विषम स्थिति से निकलने का कोई मार्ग नहीं? क्या गरीब किसान अपने पसीने की गाढ़ी कमाई का पूरा रुपया पा ही नहीं सकते? क्या उनको इसी तरह बीच वालों की बेईमानी का शिकार होना पड़ेगा? नहीं, हालत इतनी खराब नहीं। इससे बचने का उपाय है और वह भी बड़ा सीधा सा। किसानों को चाहिये कि वह आपस में मिल जायँ और एक सहकारी-बिक्री समिति खोल लें। इस समिति के सभी किसान सदस्य होंगे; सभी इसकी देखभाल करेंगे तथा सभी का इसे सहयोग प्राप्त होगा।

सब किसान अपनी अपनी फसल इस संस्था को बेचने के लिये दे दें। जब सभी किसान अपनी अपनी फसल दे देंगे तो इसके पास काफी फसल जमा हो जावेगी। तब यह संस्था एक ऐसा मण्डली नियुक्त कर सकती है जो मण्डली के कामों में होशियार हो, जो बाजार भाव को जानता हो तथा उसके उतार-चढ़ाव को समझता हो। जो यह जानता हो कि किस मण्डली में क्या भाव है और कहाँ पर मूल्य सबसे अधिक मिलेगे। ऐसे व्यक्ति की सहायता से फसल मण्डली में जाकर अच्छे से अच्छे दाम पर बेची जा सकती है। क्योंकि एक साथ पूरी फसल को ले जाया जावेगा इसलिए गाड़ियों का खर्च तथा मण्डली में ठहरने का

सहकारी समिति क्या है तथा यह कैसे खोली जाती है इसकी विशेष जानकारी के लिये देखिये अध्याय सैंतीस।

खर्च भी कम पड़ेगा। संभव है आढ़तिया भी कम दलाली लेने के लिये रोजी हो जाय। सूक्ष्म में किसानों को सभी तरफ से लाभ ही होगा और वह मैनेजर के वेतन से कहीं अधिक लाभ कर सकेंगे। सहकारी-समितियों में लाभ यह है कि यदि यह संस्थायें लाभ उठाती हैं तो वह लाभ सदस्यों में ही आपस में बाँट दिया जाता है।

इस तरह की सहकारी समितियों का विदेशों में काफी प्रचार है। हमारे देश में भी इनका प्रचार बढ़ रहा है। जब से कांग्रेस ने प्रान्तों में काम की बागडोर संभाली है, तब से उनकी बराबर यही कोशिश रही है कि इन समितियों की काफी प्रगति हो। यदि ऐसी समितियाँ गाँव-गाँव में फैल गईं तो निम्संदेह फसल की बिक्री के संबन्ध में आशातीत उन्नति हो सकेगी और गाँव के किसान अपनी उपज को उचित कीमत पर बेच सकेंगे।

सारांश

गाँव वाले अपनी वस्तुएँ या तो गाँवों में बेचते हैं या शहर में। गाँवों में वस्तु बेचने के तीन स्थान हैं—बाजार, हाट या पैंठ तथा मेला।

गाँव के बाजारों में बिक्री बहुत कम होती है। यहाँ दूकानें छोटी छोटी हैं, उनमें सामान भी कम रहता है तथा एक दूकानदार कई वस्तुएँ बेचता है। यह दूकानें रात्रि में प्रायः नहीं खुलती और शाम को ही बंद हो जाती हैं।

हाट या पैंठ हफ्ते में एक या दो बार लगते हैं। इनमें आस-पास के गाँवों के लोग क्रय-विक्रय करने आते हैं। यहाँ दूकानें अधिक मात्रा में आती हैं तथा बिक्री और खरीद भी बाजारों से अधिक होती है।

मेले वर्ष में एक दफा लगते हैं। इनके लगने का समय भी भिन्न-भिन्न होता है। कभी यह एक हफ्ते तक लगते हैं तो कभी महीने-महीने भर तक।

हाट तथा मेलों का महत्व ग्रामीण-आर्थिक जीवन में बहुत अधिक है। परन्तु इनको संगठित करने की बड़ी आवश्यकता है।

शहर में किसान मंडियों फसल बेचते हैं। वहाँ उनको आड़तिया के पास जाना पड़ता है जो उनके सामान को सबसे अधिक क्रोमत पर खरीदने वाले के हाथ बेच कर उन्हें दाम दे देता है।

आड़तिया अपनी आड़त लेता है जो प्रायः दो पैसा रुपया होती है। इसके अलावा वह तौला, भगी, पानीवाले, तथा धर्मखाते के लिये भी पैसे वसूल करता है। ऊपर से वह तौल में अलग वेईमानी करता है।

इन सब तकलीफों के साथ साथ गाँव वालों को फसल की बिक्री में अन्य कठिनाइयाँ भी हैं। सामान ले जाने के साधनों की कमी तथा रास्ते की कठिनाई उन्हें परेशान कर देती है। ऊपर से उनका सीधापन और बाजार भाव से अनभिज्ञता उनको कम दाम पर फसल बेचने के लिये बाध्य कर देती है। सरकार को चाहिए कि इन कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न करे।

कठिनाइयों से बचने का सबसे सुगम उपाय है सहकारी बिक्री समिति का खोलना। इससे किसानों को फसल के उचित मूल्य तो मिलेंगे ही उनको पहले से कहीं अधिक लाभ भी होगा।

प्रश्न

१. गाँव वाले अपने सामानों को किस जगह बेचते हैं? उनका वर्णन कीजिये।
२. बाजारों का गाँवों में क्या स्थान है? उनमें तथा शहरों के बाजारों में अन्तर बताइये।
३. हाट या पैठ तथा बाजारों में क्या अन्तर है? हाटों की विशेषतायें बताइये।

४. हाट तथा मेलों का महत्व ग्रामीण आर्थिक जीवन में क्या है ?
क्या इनको पुनः संगठित करने की आवश्यकता है ?
५. एक मण्डी का वर्णन कीजिये। आड़तिया किस तरह किसान को लूटता है ?
६. फसल बेचने में होने वाली कठिनाइयों को बताइये। क्या सहकारी बिक्री समिति इसमें कुछ लाभ पहुँचा सकती है ?

हाई-स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. साप्ताहिक हाट तथा कभी-कभी होने वाले मेलों का आर्थिक महत्व गाँववालों को क्या है ? गाँव का 'बनिया' क्या आर्थिक कार्य करता है ? (१९४३)
२. आपके जिले में खेती की वस्तुओं की बिक्री किस तरह होती है ? किसान अपनी उपज के लिये उचित मूल्य क्यों नहीं पाने पाते ? (१९४४)
३. भारतीय किसान को फसल बेचने में क्या क्या कठिनाइयाँ उठानी पड़ती हैं ? (१९४७)

भाग पाँच

वितरण

[अध्याय १२. वितरण । १३. लगान तथा माल-
गुजारी । १४. भारतवर्ष में बटाई प्रथा । १५. मजदूरी
१६. सूद । १७. लाभ ।]

अध्याय बारह

वितरण

आप जानते हैं कि 'आजकल मनुष्य' उत्पादन अकेले नहीं करते। कई व्यक्ति आपस में मिलकर सहयोग के साथ काम करते हैं। बड़ी-बड़ी मिल्नों में आप देखते हैं कि बीसियों क्लर्क, हजारों श्रमिक, कई इंजीनीयर आपस में मिल कर काम करते हैं और सभी का उत्पादन कार्य में कुछ न कुछ काम रहता है। उत्पत्ति के पाँच साधन हैं और उन सब का सहयोग उत्पादन कार्य में आवश्यक है। जब सब उत्पादन के साधन मिलकर उत्पादन करते हैं तो यह जरूरी हो जाता है कि उत्पादित वस्तु द्वारा मिला हुआ धन सभी लोगों में उनके श्रम के अनुसार बाँटा दिया जाय। परन्तु प्रश्न यह उठता है कि यह धन किस हिसाब से बाँटा जाय ? कपड़े की मिल में मिल-मालिक का, जिसने पूरा जोखिम उठाया है, और एक क्लर्क का जो आफिस में बैठ-बैठे कलम घिसता रहता है उत्पादित धन में क्या भाग है यह कैसे निर्दिष्ट हो ? इस प्रश्न का उत्तर आसान नहीं। आमतौर पर यह कहा जा सकता है कि प्रत्येक उत्पत्ति के साधन का पुरस्कार उस साधन को मींग तथा पूर्ति पर निर्भर रहता है। वितरण में उन सब समस्याओं का अध्ययन किया जाता है जो कि सहयोग से उत्पन्न धन के वितरण से सम्बन्ध रखती हैं।

धन के उत्पादन में उत्पत्ति के पाँचों साधनों का सहयोग होता है। इसलिए उत्पादित धन भी इन्हीं पाँचों साधनों में

बाँट दिया जाता है। इनको जो पुरस्कार मिलता है उनको अलग-अलग नामों से पुकारा जाता है। भूमि को मिलने वाला पुरस्कार लगान, श्रम का पुरस्कार मजदूरी, धन का पुरस्कार ब्याज या सूद, प्रबन्ध का पुरस्कार वेतन तथा जोखिम का पुरस्कार लाभ है। लगान, मजदूरी, ब्याज, वेतन तथा लाभ किस तरह निर्धारित किये जाते हैं इसीका अध्ययन वितरण में किया जाता है।

खेती में वितरण का ढङ्ग

खेती में भी बड़े-बड़े कारखानों की तरह उत्पादन कार्य में कई व्यक्ति सहयोग देते हैं। हमारे देश में किसान भूमि का स्वयं मालिक नहीं है। या तो वह भूमि जमींदार से काश्त करने के लिये लेता है या वह सीधे सरकार से। इसलिये सरकार या जमींदार खेती के उत्पादन के लिये भूमि देते हैं। इसके बाद भूमि पर बीज डाले जाते हैं तथा उसे बोया और जोता जाता है। इस कार्य के लिये पूँजी की आवश्यकता होती है तथा श्रम की। पूँजी किसान प्रायः उधार लेकर ही इकट्ठा करते हैं। पूँजी को वह गाँव के महाजन या साहूकार से लाते हैं। इस तरह कृषि के उत्पादन-कार्य में दूसरा सहयोगी महाजन या साहूकार होता है। खेत जोतते समय, बोते समय तथा काटते समय उसे कई आदमियों की आवश्यकता पड़ती है। या तो वह काम के लिये मजदूरों को रखता है या वह अपने घर वालों से ही काम लेता है। यह सब श्रम का काम करते हैं। किसान स्वयं ही यह निश्चित करता है कि वह खेत में क्या अनाज बोए, किस समय बोए, किस समय खेत में पानी दे, किस समय फसल काटे, और उसे कहाँ बेचे। इसलिये वह स्वयं ही प्रबन्धक का काम

करता है। खेत से होने वाले हानि-लाभ का वही जिम्मेदार है। अतएव वही जोखिम भी उठाता है। इस तरह हम कह सकते हैं कि कृषि के उत्पादन कार्य में—

१. भूमि सरकार या जमींदार देते हैं तथा इसके बदले में उन्हें लगान मिलता है।

२. श्रम घर के लोग या मजदूर देते हैं तथा उन्हें बदले में मजदूरी मिलती है।

३. पूँजी गाँव के महाजन या साहूकार देते हैं तथा वह बदले में ब्याज पाते हैं।

४. प्रबन्ध किसान स्वयं ही करता है। परन्तु इसके लिये अलग से कुछ नहीं लेता; तथा

५. जोखिम भी किसान स्वयं ही उठाता है और हानि-लाभ का वही मालिक है।

किसान स्वयं प्रबन्ध करता है तथा जोखिम उठाता है। वह तथा उसके घर वाले श्रमी का काम भी करते हैं। परन्तु इन सब कार्यों के लिये किसान अलग-अलग पैसा नहीं लेता। उसकी बचत में सभी कुछ आ जाता है।

खेती के वितरण में केवल मजदूरों की मजदूरी तो उनके काम के समय दे दी जाती है परन्तु अन्य सब पुरस्कार फसल कट जाने पर ही दिये जाते हैं। किसान लगान सरकार द्वारा निश्चित समय पर देता है। परन्तु यह समय ऐसा है जब कि किसान अपना खेत काट चुके होते हैं।

उद्योगों में यह होता है कि उत्पादन के सभी साधनों को पुरस्कार मिल जाने के पश्चात् ही जोखिम उठाने वाला लाभ ले सकता है। परन्तु किसान जमींदारों को लगान देने तथा महाजन

को सूद देने के पहले भी फसल को व्यवहार में ले आते हैं। कभी-कभी तो लगान तथा सूद एक-दो वर्ष पिछड़ भी जाता है। यह कृषि की विशेषता है तथा इसका कारण किसानों की गरीबी और खेती से कम उपज है। खेती से पैदावार इतनी कम होती है कि किसान स्वयं अपना पेट ही नहीं भर सकता। ऐसी अबस्था में वह लगान और सूद दे कहाँ से ?

ऊपर दी गई बातों से आप समझ गये होंगे कि कृषि में भी उत्पत्ति के पाँचों साधन भाग लेते हैं तथा पाँचों को पुरस्कार दिया जाता है। भारतवर्ष में यह विशेषता है कि किसान लगान और सूद चुदा कर देते हैं। परन्तु हर एक देश में ऐसा नहीं होता। यह तो केवल हमारे किसानों की गरीबी के कारण होता है।

सारांश

जब मनुष्य आविर्भूतता की सभी वस्तुओं का स्वयं ही उत्पादन करते थे तब वितरण की समस्या नहीं थी। वितरण की समस्या तो सामुहिक उत्पादन के साथ ही पैदा हुई है।

उत्पादन में भूमि, श्रम, पूँजी, प्रबन्ध तथा जोखिम इन पाँचों उत्पत्ति के साधनों का सहयोग आवश्यक है। खेती में भी इनका सहयोग होता है। परन्तु स्वयं किसान ही प्रबन्धक तथा जोखिम उठाने वाला होता है। दूसरे उद्योगों में जोखिम उठाने वाला सबसे आखीर में अपना पुरस्कार लेता है। परन्तु कार्तकार गरीबी के कारण सूद और लगान देने के पहले ही कर्मण्य भाग ले लेते हैं।

भूमि का पुरस्कार लगाब, श्रम का मजदूरी, पूँजी का सूद, प्रबन्ध का वेतन तथा जोखिम का लाभ कहलाता है।

प्रश्न

१. वितरण से आप क्या मतलब समझते हैं। इसमें किन-किन बातों का अध्ययन किया जाता है ?
 २. वितरण की समस्या किस तरह उठी और क्यों उठी ? समझाकर लिखिये।
 ३. वितरण किस तरह होता है ? लिखिये।
 ४. खेती में कौन प्रबन्धक का कार्य करता है ? वह खेती का किस तरह प्रबन्ध करता है ?
 ५. कृषि के वितरण में तथा अन्य व्यवसायों के वितरण में क्या कुछ भेद है ? यदि है तो उसे स्पष्टतया बताइये।
-

अध्याय तेरह

लगान तथा मालगुजारी

लगान का अर्थ—किसान के पास जोतने को भूमि नहीं होती। वह या तो जमींदार या सरकार से भूमि लेकर जोतता है तथा बदले में लगान देता है। आमतौर पर इसीको लगान कहते हैं। परन्तु लगान शब्द के अर्थ अर्थशास्त्र में भिन्न हैं। यदि अधिक उपजाऊ और कम उपजाऊ दो तरह की भूमि जोती जायें तो बराबर रुपया व्यय करने पर अधिक उपजाऊ भूमि से अधिक पैदा होगी और कम उपजाऊ से कम। दोनों तरह की भूमि की उत्पत्ति में जो अंतर है वह लगान कहलाना है तथा उसी के लेने का जमींदार हक रखता है। सीमान्त भूमि तथा उससे अधिक उपजाऊ भूमि की उत्पत्ति में जो अंतर है वही अर्थशास्त्र में लगान कहलाता है।

लगान की उत्पत्ति का नियम—इंगलैण्ड के प्रसिद्ध विद्वान्, रिकार्डोंने लगान की उत्पत्ति का नियम अर्थशास्त्र में निकाला था और वह अभी तक प्रसिद्ध है। उनका कहना था कि भूमि कई प्रकार की होती है—कोई कम उपजाऊ तो कोई अधिक उपजाऊ। अधिक उपजाऊ भूमि पर धन व्यय करके जितनी फसल उग सकेगी उतनी फसल उतना ही धन व्यय करने पर कम उपजाऊ भूमि पर नहीं होगी। इसलिये भूमि के उपजाऊपन के कारण भूमि की उत्पत्ति में अन्तर आ जाता है। यह अंतर जो भूमि के

उपजाऊपन के कारण है लगान कहलाता है और उसे जमींदार लगान के रूप में ले लेता है।

उदाहरण के लिये मान लीजिये कि किसी देश में अ, ब और स तीन तरह की भूमि है। बराबर रुपया व्यय करने पर अ भूमि से उत्पत्ति १०० मन, व से ८० मन तथा स से ६० मन होती है। क्योंकि सबसे कम उपजाऊ भूमि स है इसलिये यह सीमान्त भूमि कहलावेगी और इस भूमि को जोतने वाला किसान कुछ भी लगान नहीं देगा। अ भूमि को जोतने वाला किसान $(१०० - ६०) = ४०$ मन तथा ब भूमि वाला $(८० - ६०) = २०$ मन फसल लगान के रूप में जमींदार को देगा। यही लगान निर्धारित करने का अर्थशास्त्र द्वारा बताया गया नियम है।

परन्तु आप जानते होंगे कि यह आर्थिक नियम वास्तव जगत में लागू नहीं होता। हमारे देश में भूमि की कमी है और भूमि जोतने वाले व्यक्ति अधिक हैं। इसलिये ऐसी कोई भी भूमि नहीं जिस पर लगान न लगता हो। अर्थशास्त्र यह कहता है कि सीमान्त भूमि पर लगान नहीं लगना चाहिये। परन्तु हमारे देश में यह बात लागू नहीं। दूसरे जो लगान किसान देते हैं वह आर्थिक-लगान से कहीं अधिक है। जब जमीन से इतनी पैदा ही नहीं होती कि किसान खेती का व्यय तथा अपना खर्चा निकाल सकें तो वह भूमि तो सीमान्त भूमि से भी नीची भूमि रही। और जब सीमान्त भूमि लगान नहीं देती तो उससे भी कम उपजाऊ भूमि पर लगान लगना ही नहीं चाहिये। इसलिये हम कह सकते हैं कि रिकार्डों द्वारा प्रतिपादित आर्थिक लगान का नियम भारतवर्ष में लागू नहीं होता।

भारतवर्ष में लगान तथा मालगुजारी

भारतवर्ष में सब भूमि सरकार की है और वही उसकी मालिक है। सरकार ने यह भूमि खेती के लिये दो प्रकार से उठाई है। पहली प्रथा के अनुसार सरकार ने किसानों के हाथ भूमि जोतने को दे दी है और किसान उस भूमि का लगान सीधे सरकार को दे देते हैं। इस प्रथा में महालवारी तथा रैयतवारी काश्नकार आते हैं और इस प्रथा में किसान तथा सरकार के बीच कोई भी जमींदार नहीं होता।

दूसरी प्रथा के अनुसार सरकार ने भूमि जमींदारों को दे दी है। जमींदार एक निश्चित रूपया मालगुजारी के रूप में सरकार को देने को बाध्य हैं। सरकार मालगुजारी उगांवार से वसूल करती है और न मिलने पर उनकी जमींदारी और जायदाद कुड़क करवा लेती है। इस प्रथा में सरकार को किसानों से कोई मतलब नहीं। जमींदार सरकार से भूमि लेकर किसानों को खेती के लिये देते हैं। जमींदार किसानों से मनमाना लगान वसूल कर लेते हैं और जब चाहें उन्हें निकाल देते हैं। जमींदारी प्रथा में किसानों पर बड़ा अत्याचार होता है।

बन्दोबस्त

हमारे देश में बन्दोबस्त की प्रथा दो प्रकार की है—
(१) स्थायी तथा (२) अस्थायी। स्थायी प्रथा में तो मालगुजारी हमेशा के लिये तय हो गई है और वह कभी बढ़ नहीं सकती। परन्तु अस्थायी प्रथा में सरकार मालगुजारी हर २० या ३० वर्ष के बाद फिर तय करती रहती है। २० वर्ष के बाद वह खेती की

उत्पत्ति के बारे में जाँच पड़ताल करती है जिसे बन्दोबस्त कहते हैं और उसको देखकर लगान घटा या बढ़ा देती है ।

स्थायी बन्दोबस्त—हमारे देश में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी का राज्य हुआ तो उन्होंने सबसे पहले जमींदारी प्रथा चलाई । और जमींदारी प्रथा में उन्होंने स्थायी बंदोबस्त का ही सहारा लिया । सन् १७९३ में लार्ड कार्नवालिस ने स्थायी बन्दोबस्त को सबसे पहले बंगाल प्रान्त में जारी किया । बाद में जब बिहार जीता गया तो वहाँ पर भी यही प्रथा लागू हो गई । धीरे-धीरे यह सयुक्त प्रान्त तथा मद्रास प्रान्त के कुछ भागों में और उड़ीसा में भी फैल गया । आज तक यह बंदोबस्त इन सब जगह लागू है ।

यह बन्दोबस्त चलाते समय ईस्ट इंडिया कम्पनी ने यह देखा कि देश की स्थिति ठीक नहीं और लगान वसूल नहीं होने पाता । इसलिये उन्होंने कुछ लोगों को इसकी वसूली के लिये जिम्मेदार बना दिया । इससे कम्पनी की आमदनी निश्चित हो गई, देश की चाहे कुछ भी हालत क्यों न हो । पहले तो लोग इस जिम्मेदारी को लेने को तैयार नहीं थे और कम्पनी ने उन्हें जबरन यह काम सौंपा । परन्तु धीरे-धीरे जब भूमि के मूल्य बढ़ते गये तो जमींदारों को भी लाभ होने लगा क्योंकि वह किसानों से अधिक लगान वसूल करने लगे परन्तु उनकी मालगुजारी वही पुरानी रही । यही जमींदार अपने आर्थिक हित के लिये ब्रिटिश साम्राज्य के सबसे बड़े भक्त रहे ।

जैसा कि बताया जा चुका है स्थायी बन्दोबस्त में जमींदारों की मालगुजारी हमेशा के लिये तग हो गई है और वह बढ़ाई नहीं जा सकती । किन्तु किसानों का लगान बढ़ाया या घटाया जा

सकता है। परिणाम यह हुआ है कि ज्यों-ज्यों भूमि की माँग बढ़ती गई है लगान भी बढ़ता जा रहा है। किसान विचारे पैसे जा रहे हैं। सरकार को भी कोई लाभ नहीं। किन्तु बीच वाले जमींदार आधिक कमा-कमा कर आराम से जीवन व्यतीत कर रहे हैं।

किसानों की बुरी दशा तथा जमींदारों के अत्याचार देखकर बंगाल प्रान्त ने सन् १९४० में एक कमीशन श्रीयुत पलाउड की अध्यक्षता में नियुक्त किया जिसका कार्य स्थायी बन्दोबस्त की जाँच-पड़ताल करना था। कमीशन ने यह रिपोर्ट दी है कि स्थायी प्रथा में खेती की भूमि में कोई भी सुधार नहीं हुआ। जमींदारों ने खेती की तरफ ध्यान नहीं दिया और न उसके सुधार के लिये ही कुछ काम किया है। इसके विपरीत प्रान्तीय सरकार को आमदनी की बड़ी हानि हुई है क्योंकि मालगुजारी बढ़ने नहीं पाती। बंगाल प्रान्त की सरकार को इससे कई करोड़ रुपया वार्षिक की हानि हो रही है। अतएव जमींदारी प्रथा को समाप्त कर-दिया जाय। सरकार जमींदारों को मुआब्जा (Compensation) देकर भूमि पर अधिकार कर ले। बंगाल सरकार ने यह रिपोर्ट मान ली है तथा जमींदारी प्रथा का अंत करने के लिये आवश्यक बिल बना लिया है।

अस्थायी बन्दोबस्त—भारत में अन्य स्थानों पर अस्थायी बन्दोबस्त चालू है। यहाँ पर भूमि की जाँच सरकार हर २० या ३० वर्ष बाद कराती है तथा मालगुजारी निश्चित कर देती है। यह मालगुजारी उस समय की खेती की दशा पर निर्भर रहती है।

अस्थायी बन्दोबस्त के अन्दर जमींदारी प्रथा आती है तथा

अन्य प्रथायें में भी जिनके अन्दर सरकार किसान को भूमि सीधे देती है। इस तरह अस्थायी बन्दोबस्त में तीन तरह के मालगुजार पाये जाते हैं—(१) जमींदार, (२) रैयतवार तथा (३) महलवार।

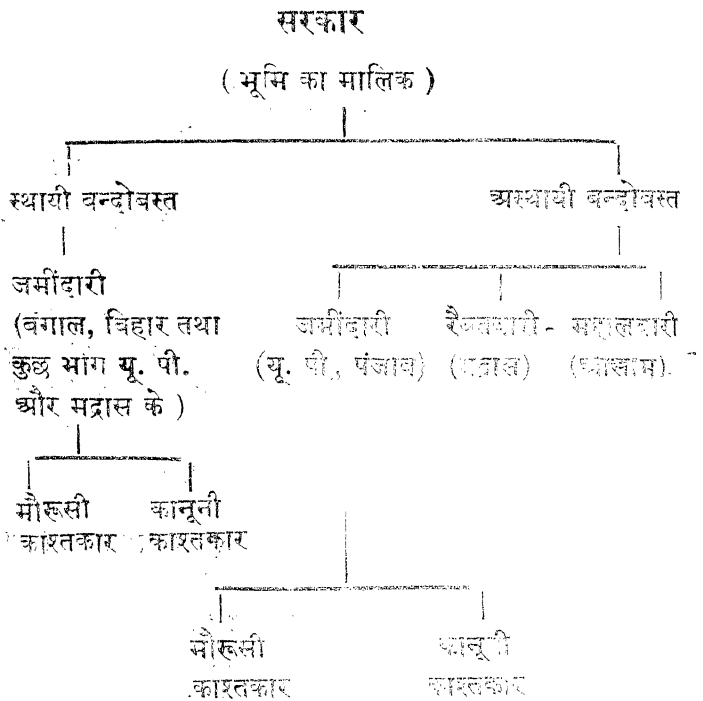
जमींदारी प्रथा—अस्थायी जमींदारी प्रथा संयुक्त-प्रान्त, अवध, मध्य प्रान्त तथा पंजाब में प्रचलित है। यहाँ पर जमींदार किसानों को भूमि लगान पर दे देते हैं और स्वयं निर्धारित मालगुजारी सरकारी खजाने में जमा कर देते हैं। आजकल यह भूमि की उपज का ४० से ५० प्रतिशत भाग ही सरकार को मालगुजारी के रूप में देते हैं। परन्तु किसानों से यह उपज का ७० से ९० प्रतिशत भाग तक बसूल कर लेते हैं।

रैयतवारी प्रथा—यह प्रथा बम्बई, मद्रास, सिंध, बरार आदि प्रान्तों में प्रचलित है। इसके अनुसार सरकार सीधे किसानों को भूमि खेती के लिये देती है और किसान लगान सीधे खजाने में जमा कर देते हैं। सरकार और किसानों के बीच में कोई भी जमींदार नहीं होते। प्रत्येक किसान अपने खेत पर लगाने वाले लगान के लिये जिम्मेदार होता है।

महालवारी प्रथा—इस प्रथा के अनुसार सरकार पूरे गाँव को भूमि देती है और उस गाँव के सब किसान व्यक्तिगत तथा सामुहिक रूप से पूरा लगान देने के लिये उत्तरदायी होते हैं। यदि कोई एक किसान लगान न दे तो वह लगान पूरे गाँव से बसूल किया जा सकता है। गाँव का एक व्यक्ति मालगुजार चुन लिया जाता है जो कि लगान बसूल कर सरकारी खजाने में जमा करता है। मालगुजार को ही सरकार मालगुजारी के लिये सबसे पहले

जिम्मेदार ठहराती है। इस प्रथा में तथा रैयतवारी प्रथा में भेद केवल इतना है कि रैयतवारी प्रथा में प्रत्येक किसान व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार है, महालवारी में वह सामुहिक रूप से भी।

हमारे देश में प्रचलित बन्दोबस्त, मालगुजारी तथा लगान का ढंग नीचे दिये गये प्रकार है :—



संयुक्त प्रान्त में मालगुजारी तथा लगान की प्रथा

संयुक्त प्रान्त में सरकार भूमि की मालिक है। लेकिन उसने

भूमि जमींदारों के हाथ मालगुजारी* पर दे दी है। इसीलिये हमारे प्रान्त में जमींदारी प्रथा प्रचलित है। जमींदारी दो प्रकार की है—स्थायी तथा अस्थायी। स्थायी जमींदारी तो केवल बनारस कमिश्नरी में ही प्रचलित है। यहाँ की मालगुजारी हमेशा के लिये निश्चित है। बाकी पूरे प्रान्त में अस्थायी जमींदारी प्रथा प्रचलित है। हर २० वर्ष के बाद भूमि का बन्दोबस्त होता है और मालगुजारी घटा-बढ़ा दी जाती है। मालगुजारी प्रायः उपज की ४० से ६० प्रतिशत के बराबर होती है।

प्रान्त के काश्तकार—जमींदार किसानोंको भूमि लगान पर दे देते हैं। युक्त प्रान्त के सन् १९३९ के आराजी-कानून के बाद अब प्रान्त में केवल दो प्रकार के काश्तकार रह गये हैं। यह काश्तकार मौरूसी तथा कानूनी काश्तकार कहलाते हैं।

मौरूसी काश्तकार (Occupancy Tenants)—वह काश्तकार हैं जो बेदखल नहीं किये जा सकते। इनको अपनी भूमि बेचने का अधिकार प्राप्त है तथा घर में पिता के मरने के बाद भूमि उसके लड़कों को मिल जाती है। जमींदार उसे हड़प नहीं कर सकता। इनका लगान अदालत की आज्ञा के बिना बढ़ाया नहीं जा सकता और वह भी रुपये में आने-दो आने से अधिक नहीं। यदि यह किसान लगान न देने पावे तो इनके बीज, चौपाहे या अनाज कुर्क नहीं कराये जा सकते।

*मालगुजारी और लगान में भेद है। मालगुजारी तो वह रकम है जो सरकार जमींदारों से लेती है। परन्तु जमींदार काश्तकारों से जो रकम लेते हैं वह लगान कहलाती है।

कानूनी काश्तकार (Statutory Tenants)—
 सन् १९३९ के आराजी-कानून के पहले कुछ प्रायः सभी शिकमी काश्तकार थे। यानी उनको कोई व्यक्ति—जमींदार या मौजूसी काश्तकार दो-एक साल को भूमि जोतने के लिये दे फेले थे और बाद में उनको अपनी मर्जी से हटा देते थे। शिकमी काश्तकारों का जमीन पर कोई हक नहीं था। सन् १९३९ के आराजी कानून के पास होने पर यह नियम हो गया कि जो भी काश्तकार एक वर्ष तक खेत जोत ले तो उस खेत पर उनका मौजूसी हक हो जावेगा तथा वह बेदखल नहीं किया जा सकता। बीस वर्ष तक उसका लगान नहीं बढ़ सकता तथा उनके मरने से पाँच वर्ष बाद तक उनके वारिसों को भूमि जोतने का हक रहेगा। जो भी काश्तकार सन् १९३९ के कानून पास होने के पहले मौजूसी हक नहीं रखते थे वह सब कानूनी काश्तकार कहलाने लगे हैं।

जमींदारी प्रथा के दोष

जब हमारे देश में जमींदारी प्रथा चली थी तब सरकार ने यह आशा की थी कि जमींदार कृषि को उन्नति करेंगे। वह किसानों से सहृदयता का वर्तान करेंगे तथा सरकार द्वारा दिये गये कमीशन पर सन्तुष्ट होकर किसानों को लुटेंगे नहीं। वास्तु परिणाम इसके विलकुल विपरीत ही निकला। जमींदारी प्रथा में निम्नलिखित दोष पाये जाते हैं :—

१. जमींदार किसानों से बहुत अधिक लगान बसूल करते हैं। जब कि सरकार उनसे उपज का ४० से ५० प्रतिशत भाग मालगुजारी के रूप में लेती है। वह किसानों से उपज का ७० से ८० प्रतिशत भाग तक ले लेते हैं जिसके कारण किसान अपना दोनों समय पेट भी नहीं भर पाते।

२. परन्तु उनकी लूट का यही अन्त नहीं । वह किसानों से बेगार भी लेते हैं । किसानों को जमींदार के खेत, घर, बाग आदि में मुफ्त काम करने को बाध्य किया जाता है । यदि जमींदार को घर की सफाई करानी है तो बस दस-बारह किसानों को पकड़ लिया और काम कराके भगा दिया । अगर कहीं आँगन की लिपाई करानी है तो गाँव वालों की स्त्रियों को काम पर बुला लिया जाता है और उनको कुछ भी मजदूरी नहीं दी जाती । मना करने पर उन्हें मार पड़ती है और उनको खेत से हटा दिया जाता है ।

३. यही नहीं उनसे नजराना और भेंट भी वसूल की जाती है । प्रत्येक त्यौहार पर गाँव के किसानों को घी, दूध या फल भेजना पड़ता है । शादी पर तो उनको मुफ्त ही अनाज दाल, घी, दूध आदि का प्रबन्ध करना पड़ता है । यदि जमींदार या उनका पुत्र-उनके गाँव जायें तो उनको भेंट चढ़ानी पड़ती है ।

४. इस पर भी यदि वह समय पर लगान नहीं दे सके तो फिर उनकी आफत आ जाती है । दिन भर उनको बाँध कर पेड़ से लटका दिया जाता है, या मुर्गा बना कर खड़ा कर दिया जाता है । मार पड़ती है वह अलग । आरजू-मिन्नत से काम नहीं चलता । उनके घर के सभी लोग हाथ-जोड़ कर भूखे-प्यासे खड़े रहते हैं पर जमींदार साहब का दिल नहीं पिघलता । बाद में एक के दो रुपये लिखवा कर जब रुक्का ले लिया जाता है तो किसान की जान छोड़ी जाती है ।

(५) प्रायः जमींदार गाँवों में नहीं रहते क्योंकि वहाँ पर उनको आमोद-प्रमोद के साधन नहीं मिलते । इसलिये जमींदारी का सब काम उनके कारिन्दे करते हैं । यह लोग जमींदारों से भी अधिक दुष्ट तथा जालिम होते हैं । यह थोडा वेतन पाने वाले

लोग होते हैं और जब इनको कुछ प्रभुत्व मिल जाता है तो यह जुल्म करने से नहीं डरते और जमींदारों की तरह स्वयं भी नजराना, भेंट तथा बेगार लेते हैं।

(६) काश्तकार को बेदखल करना, पटवारी से उसका खेत दूसरे के नाम चढ़वा देना, किसानों को पिटवाना, उनका घर या खेत जलवा देना, लगान लेने पर रसीद न देना, रसीद कम लगान की देना, लगान न देने पर अधिक रुपयों का रुक्का लिखवा लेना आदि अन्य बातें हैं जो कि जमींदार या उनके कारिन्दे समय-समय पर किसानों को तंग करने के लिये करते हैं।

(७) यह सब होने पर भी जमींदार किसानों की भलाई तथा गाँवों की सफाई की तरफ ध्यान नहीं देते। गाँवों में स्कूल, या अस्पताल खुलवाने से उनको कोई मतलब नहीं। भूमि की उपज बढ़ाना उनका काम नहीं। किसानों के आमोद-प्रमोद का आयोजन करना उनकी प्रतिष्ठा के विपरीत है। यदि किसान खुशहाल हो जावेंगे तो उनके काबू से निकल जावेंगे इसलिये उनको गरीब व भ्रष्ट देखना ही उनका ध्येय है। यह है हमारे अधिकांश जमींदारों की मनोवृत्ति।

कांग्रेस सरकार का किसानों के लिये कार्य—
जमींदारों का जुल्म अंग्रेजों के समय तक बे-रोक-टोक चलता रहा। बिचारे किसानों की मुँह से आवाज निकालने तक की हिम्मत नहीं पड़ती थी। परन्तु जैसे ही कांग्रेस सरकार प्रान्तों में बनी, उसने किसानों की भलाई के लिये कानून बनाना आरम्भ कर दिये। सन् १९३७ में कांग्रेस सरकारें बनीं और एक-दो वर्ष के भीतर ही सभी प्रान्तों ने आराजी कानून

(Tenancy Laws) पास हो गये जिनके अनुसार जमादारों के जुल्म कम हो गये। किसानों से बेगार, नजराना या भेट लेना कानूनन अपराध ठहरा दिया गया है। प्रत्येक जमींदार को लगान लेते समय रसीद देना अनिवार्य हो गया है। किसानों का यह अधिकार है कि वह सीधे खजाने में रुपया जमा करा सकते हैं या मनी-ऑर्डर द्वारा जमींदार को भेज सकते हैं। जमींदार किसी को मार-पीट नहीं सकते। काश्तकारों को बेदखल कराने के कानून भी कठिन हो गये हैं और आसानी से वह खेत से हटाये नहीं जा सकते। यदि लगान के न देने पर उनको बेदखल किया जाता है तो बेदखल होने पर लगान पटा हुआ समझा जाता है। लगान की वसूली में उनके बीज, अनाज या गाय-बैल कुर्क नहीं किये जा सकते। किसानों को खेत में बाग लगाने, कुआ खोदने तथा घर बनवाने की भी आज्ञा मिल गई है। जमींदारों द्वारा मनमाना लगान बढ़ा लेने पर भी रोक लग गई है। बिना अदालत की आज्ञा के वह मौरूसी काश्तकार का लगान नहीं बढ़ा सकते।

इन आराजी कानूनों से जमींदारों का जुल्म रुका है। वह पहले की तरह सरताज नहीं रहे। परन्तु दशा पूरी तरह न सुधरी। कांग्रेस सरकार के त्यागपत्र देते ही जमींदार फिर मनमानी करने लगे। अतएव जब कांग्रेस सरकार सन् १९४५ में पुनः बन गई तो उन्होंने जमींदारी प्रथा का अंत करने का निश्चय कर लिया। अखिल-भारतीय-कांग्रेस-कमिटी की भी यही राय है। अतएव लगभग सभी प्रान्त जमींदारी समाप्त करने के लिये बिल बना कर धारा सभा द्वारा पास करवा रहे हैं। कुछ प्रान्तों ने तो बिल पास भी कर दिया है। शीघ्र ही हमारे देश में

जमींदारी तथा जागीरदारी का अंत हो जावेगा। सौभाग्य से देशी रजवाड़ों में भी ऐसे ही कानून बन रहे हैं। केन्द्रीय सरकार यह चाहती है कि इस सम्बन्ध में देश के सभी प्रान्तों में तथा रजवाड़ों में एकसी योजना द्वारा काम किया जाय। इसी के लिए प्रयत्न किया जा रहा है। अब जमींदारी प्रथा का अंत हो जावेगा और किसान स्वयं भूमि के मालिक हो जावेंगे। सरकार जमींदारों को कुछ मुआब्जा देगी। यह हो जाने पर देश के काश्तकार तथा किसानों की दशा अवश्य ही सुधर जावेगी।

संयुक्त प्रान्त का जमींदारी विरोधी कानून

संयुक्त प्रान्त की सरकार जमींदारी प्रथा का अन्त कर देने के लिये एक बिल पास करने वाली है जिसकी मुख्य-मुख्य धारायें निम्नलिखित हैं :—

१. सीर की भूमि जो कि जमींदार स्वयं जोतते हैं वह उनके पास ही रहेगी और उस भूमि पर उनको वही अधिकार प्राप्त होंगे जो अन्य किसानों को मिलेंगे।

२. लेकिन जो सीर की जमीन जमींदारों ने किसानों को उठा दी है उस पर किसानों का मौरूसी हक हो जावेगा।

३. जमींदारों से भूमि लेते समय उनको मुआब्जा दिया जावेगा। मुआब्जा उनकी असली आमदनी के हिसाब से दिया जावेगा।

४. मुआब्जा जमींदारों की असली आमदनी के तिगुने से पच्चीस गुने तक होगा। मुआब्जा नीचे बताये गये अनुसार मिलेगा :—

जिन जमींदारों की असली आमदनी	मुआवजा आमदनी का
२५ रु० तक है	२५ गुना
२५ रु० से ५० रु० तक	२२½ गुना
५० रु० से १०० रु० तक	२० गुना
१०० रु० से २५० रु० तक	१७½ गुना
२५० रु० से ५०० रु० तक	१५ गुना
५०० रु० से २,००० रु० तक	१२½ गुना
२,००० रु० से ३,५०० रु० तक	१० गुना
३,५०० रु० से ५,००० रु० तक	९ गुना
५,००० रु० से १०,००० रु० तक	८ गुना
१०,००० रु० से अधिक पर	३ गुने से ८ गुना तक

५. अनुमान है कि प्रान्त भर में २०, १६, ७८३ जमींदार हैं जिनमें से १७ लाख २५ रु० से कम लगान देते हैं, २ लाख २५० रु० से अधिक देते हैं और केवल ३० हजार बड़े जमींदार हैं। इस तरह कम लगान देने वाले जमींदारों को इससे लाभ होगा।

६. अनुमान लगाया गया है कि ऊपर दिये गये हिसाब से कुल मुआवजा १३७ करोड़ रुपया होगा। इस रुपये को सरकार ४० वर्ष के ऋण बॉन्ड के रूप में जिन पर २½ प्रतिशत व्याज मिलेगा अदा करना चाहती है। इस तरह से वार्षिक व्यय ५½ करोड़ रुपया पड़ेगा।

७. यदि किसान चाहें तो वह भूमि को खरीद सकते हैं और खरीद लेने पर उसके मालिक बन सकते हैं। भूमि का मालिक बनने के लिये उन्हें लगान का १२ गुना दाम देना होगा।

८. इस समय जमींदार किसानों को भूमि काश्त पर उठा देते हैं और बहुत अधिक लगान वसूल करके उन्हें लूटते हैं। इस लूट को बन्द करने के लिए जमीन लगान पर उठाना बन्द हो जावेगा। लेकिन यदि कोई विधवा या नाबालिग, जो जमीन नहीं जोत सकता, उसे उठाना चाहे तो उनको आज्ञा मिल जावेगी। परन्तु लगान की दर गाँव की पंचायत तय करेगी।

९. जमींदारी प्रथा का अंत हो जाने पर गाँवों में सहकारी-कृषि आरम्भ की जावेगी। ५० एकड़ भूमि के खेत को दस व्यक्ति मिलकर जोता करेंगे।

१०. जमींदारी प्रथा के अंत हो जाने पर उन किसानों की मालगुजारी जो १० एकड़ से कम भूमि जोतते हैं कम कर दी जावेगी। मालगुजारी में कमी एक आना रुपया से लेकर ६ आने फ्री-रुपया तक होगी। प्रान्त के लगभग ७० प्रतिशत किसानों को इससे लाभ होगा और उनको १५० लाख रुपये वार्षिक की बचत हो जावेगी।

सारांश

सीमान्त भूमि तथा उससे अधिक उपजाऊ भूमि की उत्पत्ति में जो अन्तर है वही अर्थशास्त्र में लगान कहलाता है।

आर्थिक लगान भूमि की उपजाऊपन की भिन्नता के कारण पैदा होता है। यही रिकार्डों द्वारा प्रतिपादित आर्थिक लगान का नियम है। परन्तु यह नियम भारतवर्ष में लागू नहीं होता।

भारतवर्ष में सरकार स्वयं भूमि की मालिक है। यह भूमि या तो उसने जमींदारों को दे दी है या सीधे काश्तकारों को। पहली प्रथा

जमींदारी प्रथा कहलाती है। तथा दूसरी में रैयतवारी तथा महालवारी काश्तकार आते हैं।

जमींदारी दो प्रकार की है—अस्थायी तथा स्थायी। स्थायी जमींदारी लार्ड कार्नवालिस ने सन् १७६३ में बंगाल में सबसे पहले चलाई थी। धीरे-धीरे यह अन्य प्रान्तों में भी फैल गई और अब बंगाल, बिहार और मद्रास तथा युक्त प्रान्त के कुछ भागों में पाई जाती है।

अस्थायी बन्दोबस्त ऊपर दिये गये प्रान्तों को छोड़कर सभी जगह पाया जाता है। इसमें तीन तरह के काश्तकार पाये जाते हैं : (१) जमींदार (२) रैयतवार तथा (३) महालवार। रैयतवारी प्रथा में काश्तकार सीधे सरकार को रुपया दे देते हैं और वह लगान के लिये व्यक्तिगत रूप से जिम्मेदार हैं। महालवारी प्रथा में गाँव का प्रत्येक काश्तकार लगान के लिये व्यक्तिगत तथा सामुहिक रूप से जिम्मेदार हैं।

जमींदार किसानों से बेगार लेते हैं, उनसे नजराना लेते हैं, समय पर लगान न देने पर मारते तथा अधिक रुपये का रुक्का लिखा लेते हैं, लगान ले लेने पर रसीद नहीं देते, उनको बेदखल कर देते हैं और अन्य तरीकों से तंग करते हैं। फिर भी उनकी भलाई की तरफ कतई ध्यान नहीं देते। यही कारण है कि कांग्रेस सरकार ने जमींदारी प्रथा का अंत करने का निश्चय कर लिया है।

कांग्रेस सरकार ने बेगार तथा नजराना लेना कानूनन बंद कर दिया है। जमींदारों को रसीद देना अनिवार्य हो गया है। किसान चाहें तो लगान सीधे खजाने में जमा कर सकते हैं या मनीआर्डर द्वारा भेज सकते हैं। उनको आसानी से बेदखल नहीं कराया जा सकता तथा उनके ढोरों को कुड़क नहीं कराया जा सकता। इन कानूनों से जमींदारों के जुल्म काफी कम हो गये हैं।

लगान तथा मालगुजारी

१९१

भी लिखिये कि वहाँ कौन-कौन^० से काश्तकार पाये जाते हैं ?
(१६४६)

३. निम्नलिखित पर टिप्पणी कीजिये :—

(अ) संयुक्त प्रान्त में लगान (ब) बटाई प्रथा (स) कानूनी काश्तकार
(द) बेगार (क) शिकमी काश्तकार (ख) मौरूसी काश्तकार ।
(१६४५, १६४६, १६४७, १६४८)

अध्याय चौदह भारतवर्ष में बटाई प्रथा

आप जमींदारी प्रथा के बारे में अच्छी तरह जान गये होंगे। इस प्रथा के अनुसार जमींदार एक निश्चित रकम सरकार को दे देते हैं। बाद में उनको स्वतन्त्रता रहती है कि भूमि को वह जिस तरह चाहें व्यवहार में लावे। कुछ भूमि तो जमींदार काश्तकारों को खेती के लिये दे देते हैं और उनसे लगान वसूल करते हैं। सरकार यह तय कर देती है कि लगान खेतों से एक निर्धारित दर से अधिक वसूल नहीं किया जा सकता। जमींदार उसी हिसाब से लगान वसूल करते हैं। भूमि लेने पर यह काश्तकार का काम है कि वह खेत जोतने, बोने, सींचने आदि का प्रबन्ध करे। जमींदार को तो बाद में केवल अपने लगान से मतलब रह जाता है।

इसके अतिरिक्त जमींदार कभी-कभी भूमि का कुछ भाग स्वयं जोतने के लिये रख छोड़ते हैं। परन्तु वह स्वयं तो जोतते नहीं क्योंकि उसमें बड़ा भ्रंश रहता है। वह किसानों को इस शर्त पर उठा देते हैं कि किसान नकद लगान की जगह भूमि की उपज का कुछ भाग जमींदार को दे दे। किसान उपज का कितना भाग देगा यह तो आपस में तय होने की बात है। परन्तु अधिकतर यह होता है कि यदि किसान भूमि लेकर स्वयं ही हल, बैल, बीज आदि का प्रबन्ध करता है तो वह उपज का आधा भाग जमींदार को देकर आधा स्वयं ले लेता है। परन्तु यदि जमींदार हल, बैल, बीज आदि भी देता है तो वह उपज

का दो-तिहाई भाग ले लेता है। इस प्रथा को बटाई प्रथा कहते हैं।

बटाई की दर—बटाई की दर सब जगह एकसी नहीं होती। दर निश्चित करते समय निम्नलिखित बातों पर ध्यान दिया जाता है:—

(१) **भूमि का उपजाऊपन**—यदि भूमि बंजर या ऊसर है तो जमींदार कुछ समय के लिये उसे बिना कुछ लिये हुए भी दे देता है। वह जानते हैं कि किसान मेहनत करके जमीन को खेती लायक बना देगा क्योंकि उसे भूमि बिना कुछ दिये ही मिल गई है। परन्तु दो-तीन साल बाद जैसे ही भूमि कुछ उपजाऊ बन जाती है जमींदार बटाई लेना आरम्भ कर देता है। आरम्भ में किसान एक-तिहाई या चौथाई भाग ही जमींदार को देता है। परन्तु यदि भूमि उपजाऊ हुई या नहर के पास हुई तो जमींदार अच्छे हिसाब पर उसे देता है और उपज का दो-तिहाई भाग तक ले लेता है।

(२) **अन्य सामानों का देना**—भूमि के अतिरिक्त भी यदि जमींदार बीज, खाद, हल, बैल आदि कुछ देता है तो बटाई बढ़ जाती है। यदि खेत के पास ही कुछ पेड़ हैं जो कि बटाई की भूमि में आ जाते हैं तो जमींदार को मिलने वाला पुरस्कार और भी अधिक बढ़ जाता है।

(३) **मालगुजारी**—बटाई पर दी जाने वाली भूमि का लगान जमींदार अपने पास से देता है और किसान से नहीं।

लेता। परन्तु मध्य-प्रान्त में लगान किसान से ही लिया जाता है। ऐसी दशा में जमींदार का भाग बटाई में कम हो जाता है।

ऊपर दी हुई बातों को ध्यान में रख कर यह कहा जा सकता है कि जमींदार का भाग उपज का एक चौथाई से लेकर दो-तिहाई तक होता है। संयुक्त-प्रान्त में यह प्रायः आधा है। यहाँ यह बता देना आवश्यक है कि जमींदार ही हमेशा अपने खेत बटाई पर नहीं देते। मौरूसी काश्तकार भी अपने खेतों को बटाई पर दे देते हैं। परन्तु यह तभी होता है जब कि काश्तकार के घर में कोई काम करने वाला नहीं होता या वह बीमार हो जाता है या नाबालिग होता है या वह किसी विधवा का खेत होता है।

बटाई प्रथा से लाभ—इस प्रथा से किसानों को निम्न-लिखित लाभ हैं :—

१. किसान को कुछ भी जोखिम नहीं उठानी पड़ती। न तो उसे लगान देने का डर है और न बीज और हल इकट्ठा करने का संभ्रम। वह काम करता है और उस श्रम के बदले उसे उपज का आधा या तिहाई भाग मिल जाता है। यह उसके खाने के लिए काफी होता है। यदि वह स्वयं काश्तकार हो तो फसल नष्ट होजाने पर उसे रुपया उधार लेकर लगान जमा करना पड़ता है। बीज और हल के लिये भी उसे महाजन के चंगुल में फसना पड़ता है। फसल बेचते समय वह मण्डी में आदृतिया तथा गाँव के बनिया द्वारा अलग लूटा जाता है। खलियान में चूहे उसका अनाज अलग-अलग खा डालते हैं। वह हर प्रकार से परेशान रहता है। इस प्रथा में उसे कुछ भी परेशानी नहीं।

जो भी फसल होगी—अच्छी या बुरी—उसी का एक भाग उसे जमींदार को देना पड़ेगा ।

२. लगान रूप्यों में देना पड़ता है । इसलिए यदि बजार भाव गिर गये तो काश्तकार की तो आफत ही आ जाती है । उसे सस्ते दाम पर फसल बेच कर लगान चुकाना पड़ता है । परन्तु बटाई प्रथा में यह सब अंदेशा नहीं ।

३. नाबालिग तथा विधवाओं की दृष्टि से जो खेतों पर काम नहीं कर सकते, यह प्रथा काफी लाभदायक है । उनके पास इतना रुपया तो होता नहीं कि वह मजदूरों से खेती करावें । और यदि करावें तो भी उन्हें फायदा नहीं हो सकता । यदि खेत न जोतें तो उनका खेत पर से हक मारा जाता है और फिर खाने को कहाँ से आवे ? इस प्रथा के कारण सब बातें पूरी हो जाती हैं । अतएव यह प्रथा काफी उपयोगी है ।

बटाई प्रथा से हानियाँ:—इस प्रथा में निम्नलिखित हानियाँ हैं :—इस प्रथा में जमदारों को खेती करने का पूरा जोखिम उठाना पड़ता है । यदि खेती खराब हो गई तो उनकी आमदनी कम हो जाती है और खेती तो प्रायः खराब होती ही है । हमारे देश में सिंचाई के साधनों की कमी है इसलिये किसानों को मेह के पानी पर निर्भर रहना पड़ता है । हर पाँच वर्षों में दो वर्ष आवश्यकता से अधिक पानी पड़ता है तथा दो साल सूखा । पाँच में से केवल एक वर्ष अच्छी खेती होती है । यही नहीं जमींदारों को बैल, हल, बीज आदि का प्रबन्ध भी करना पड़ता है और इस में उनका काफी व्यय बैठ जाता है । कभी-कभी किसान बेईमानी कर लेते हैं और रात में ही पकी फसल काट

ले जाते हैं। इसतरह जमींदारों का भाग काफी कम हो जाता है। अतएव यह प्रथा जमींदारों के हितों के विरुद्ध है।

खेती करने वाले काश्तकारों को भी इससे यह हानि है कि उनका खेत पर कोई भी हक नहीं रहता। जमींदार जब चाहें उनको हटा दें। वह केवल मजदूरों की तरह काम करते हैं। दूसरे यद्यपि किसान स्वयं मेहनत करके खेत की उपज बढ़ाता है परन्तु इसका आधा लाभ जमींदार को मिलता है।

अन्य प्रकार की बटाई प्रथा

आपको अभी तक भूमि के बदले दिये जाने वाली उपज की बटाई के बारे में बताया गया है। गाँवों में दूसरी तरह की आदि व्यक्ति बटाई भी प्रचलित है। गाँवों में धोबी, नाई, लुहार, बढ़ई, तेली फसल तक काश्तकार का मुफ्त काम किया करते हैं। जब कभी काश्तकार को आवश्यकता पड़ती है वह इनको बुलाकर काम करवा लेता है और उस समय पैसा नहीं देता। परन्तु जैसे ही फसल कटती है उसका कुछ भाग इनको दे दिया जाता है। यह सब लोग खलियान पर पहुँच जाते हैं और फसल का अपना अपना भाग ले लेते हैं। प्रत्येक का भाग गाँव की प्रचलित रीति-रिवाज पर निर्भर रहता है। इसके अतिरिक्त किसान खेत जोतते, सींचते तथा काटते समय कुछ मजदूरों से खेत पर काम कराता है। इनको भी वह बटाई पर रखता है और फसल कटने पर उसका कुछ भाग इनको बाँट देता है। पुरस्कार का यह वितरण भी बटाई कहलाता है।

सारांश

भारतवर्ष में बटाई प्रथा का भी चलन है। इसके अनुसार

जमींदार अपनी भूमि को काश्तकारों को जोतने के लिये दे देते हैं और बदले में खेत पर होने वाली उपज का कुछ भाग स्वयं ले लेते हैं। यह भाग प्रायः आधा होता है परन्तु यदि जमींदार बीज या हल भी देते हैं तो वह दो-तिहाई भाग तक ले लेते हैं।

बटाई की दर भूमि के उपजाऊपन, अन्य वस्तुओं के देने पर तथा भूमि की मालगुजारी पर निर्भर रहती है।

इस प्रथा से किसानों को कई लाभ हैं। उनको खेती की जोखिम नहीं उठानी पड़ती, तथा कुछ व्यय भी नहीं करना पड़ता। खेती नष्ट हो जाने पर लगान देने का उन्हें डर नहीं रहता। नाबालिग तथा विधवा काश्तकारों के लिए यह प्रथा काफी लाभदायक है।

परन्तु इससे जमींदारों को हानि है। खेती नष्ट हो जाने पर उनकी आमदनी कम हो जाती है। उन्हें बैल तथा बीजों का भी इन्तजाम करना पड़ता है। खेती की सारी जोखिम उनके ऊपर आ जाती है। किसानों की भी इसमें हानि है। उनको भूमि पर कोई काश्तकारी हक नहीं मिलते और जमींदार जब चाहें उन्हें निकाल सकते हैं।

बटाई की दूसरी प्रथा भी है। काश्तकार, नाई, घोबी, कुम्हार, लुहार, बढ़ई आदि से मुफ्त काम कराते रहते हैं और फसल होने पर उनको फसल का कुछ भाग बाँट देते हैं। यही प्रथा कभी-कभी मजदूरों के साथ भी प्रयोग में लाई जाती है।

प्रश्न

- १—बटाई प्रथा क्या है ? इसके क्या क्या भेद हैं ?
- २—बटाई प्रथा के गुण दोषों का वर्णन कीजिये।
- ३ बटाई की दर किन-किन बातों पर निर्भर रहती है।
- ४—आप किसानों को भूमि बटाई पर देना ठीक समझते हैं या जमींदारी प्रथा के अनुसार ? कारण सहित उत्तर दीजिये।

अध्याय पन्द्रह

मजदूरी

श्रमिक को मजदूरी करने के कारण जो पुरस्कार दिया जाता है उसको अर्थशास्त्र में मजदूरी या वेतन कहते हैं। वेतन या मजदूरी रुपयों-पैसों में दी जा सकती है या वस्तुओं में। दोनों ही दशा में वह मजदूरी कहलावेगी। कभी-कभी मजदूरी रुपयों में दी जाती है परन्तु साथ ही मजदूर को कुछ वस्तुयें भी दी जाती हैं। ऐसे समय में उसकी पूरी मजदूरी रुपया तथा वस्तु दोनों की कीमत मिला कर आंकी जाती है।

नकद तथा असल कीमत मजदूरी—(Real and Nominal Wages') मजदूर को मजदूरी के रूप में जो नकद रुपये जैसे मिलते हैं वह नकद मजदूरी कहलाती है। परन्तु यदि उसको मजदूरी के बदले में अन्न, वस्त्र, तथा अन्य लाभ भी प्राप्त हों तो वह सब मिलाकर उसकी असल मजदूरी कहलावेगी। एक श्रमिक नकद मजदूरी की तरफ ध्यान नहीं देता, वह तो असल मजदूरी देखना चाहता है। दो स्थानों पर से (चाहे वहाँ नकद वेतन एकसा हो) वह उस स्थान पर काम करेगा जहाँ असल वेतन अधिक हो। एक श्रमिक के असल वेतन को जानने के लिये निम्नलिखित बातों पर ध्यान देना आवश्यक है:—

रुपये का मूल्य-रुपया तो वस्तुओं को खरीदकर उन्हें उपभोग

करने का एक साधनमात्र है। इसलिये श्रमिक यह देखता है कि वह रुपया व्यय करके उससे कितनी वस्तुयें खरीद सकता है। यह इस बात पर निर्भर है कि वस्तुओं की कीमते क्या हैं। अनाज के मूल्य गाँवों में सस्ते होते हैं परन्तु बम्बई आदि बड़े शहरों में अधिक। एक रुपये से गाँव में जितना गेहूँ आ जावेगा, उतना बम्बई, कलकत्ता आदि शहरों में शायद सवा रुपये में आवें। इसलिये यदि किसी श्रमिक को बम्बई में वही नकद मजदूरी मिले जो उसे गाँव में मिलती है तो वह बम्बई नहीं जावेगा क्योंकि वहाँ उसकी असल मजदूरी कम होगी।

(२) अन्य लाभ—कभी श्रमिक को नकद मजदूरी के साथ-साथ कपड़ा, खाना, रहने को कोठरी आदि भी मिलते हैं। उस स्थान पर उसकी असल मजदूरी अधिक होने के कारण वह वही काम करना चाहता है।

(३) काम का ढंग—असल वेतन काम पर भी निर्भर रहता है। यदि काम ऐसा है जिसमें जान का खतरा है जैसे फौज का काम या गोला बारूद बनाने का काम, तो यहाँ मजदूरी अधिक होनी चाहिये। जिन स्थानों पर अधिक समय तक काम करना पड़ता है, अधिक ताकत से काम करना पड़ता है, या जो काम स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है वहाँ श्रमिक अधिक नकद वेतन चाहेगा उस काम के मुकाबले में जहाँ कम काम करना पड़ता हो तथा काम आराम का हो।

(४) अन्य बातें—जिस स्थान पर छुट्टियाँ अधिक मिलती हैं, बाद में पेन्शन मिलती है, तथा जहाँ मजदूरी समय पर मिल जाती है वहाँ का असल वेतन अधिक

समझा जाता है उस स्थान के मुकाबले जहाँ पर यह सुविधायें प्राप्त नहीं हैं चाहे दोनों स्थानों पर नकद वेतन एक ही हो। यदि काम ऐसा है कि श्रमिक दूसरे समय किसी अन्य जगह काम कर कुछ कमा सकता है तो स्थान पर उसका असल वेतन अधिक माना जावेगा।

इससे आप समझ गये होंगे कि चाहे श्रमिकों के नकद वेतन एक ही क्यों न हों फिर भी उनको कुछ अन्य सुविधायें प्राप्त होने के कारण उनके असल वेतन भिन्न-भिन्न हो सकते हैं। यही कारण है कि वह एक स्थान पर काम न करके दूसरे स्थान पर काम करते हैं। यही नहीं श्रमिक कम नकद वेतन पर भी एक स्थान पर काम कर लेगा परन्तु अधिक नकद वेतन पर दूसरी जगह नहीं जावेगा यदि पहले स्थान पर उसका असली वेतन अधिक हो। उदाहरण के लिये एक किसान अपने गाँव में आठ दस आने रोज की नकद मजदूरी पर काम कर लेगा परन्तु कानपुर जैसे बड़े शहर में दो-तीन रुपये रोज पर भी न जावेगा। इसके निम्नलिखित कारण हैं—

(१) गाँव में अनाज आदि आवश्यकता की वस्तुओं के दाम सस्ते हैं और कानपुर में अधिक। इसलिये वह गाँव में आठ आने से जितना अनाज खरीद सकेगा उसके लिये कानपुर में उसे एक रुपये से भी अधिक व्यय करना पड़ेगा।

(२) गाँव में मजदूरी के साथ-साथ उसे फसल कटने पर अनाज भी मिल जाता है जिसके कारण उसकी असल मजदूरी अधिक हो जाती है। परन्तु कानपुर में यह सुविधा प्राप्त नहीं।

(६) गाँव में उसे रहने की सुविधा है। उसे रहने का स्थान

सस्ते दामों पर मिल सकता है। पर कानपुर में उसे रहने की कोठरी मिलना एक दूभर काम है। यदि मिल भी गई तो उसे किराया बहुत देना पड़ेगा।

४. कानपुर में मिलों में काम करने से उसका स्वास्थ्य बिगड़ जावेगा। वहाँ अधिक काम करना पड़ता है और उसमें अधिक मेहनत पड़ती है। यदि वह कपड़े की मिल में काम करता है तो रुई उड़-उड़ कर उसके नथनों में, घुस जाती है जिसके कारण उसको बीमारी हो जाने का डर रहता है। कानपुर की आवहवा भी बड़ी खराब है। इसके विपरीत गाँव में उसे स्वच्छ वायु मिलती है। खुले हुये खेतों पर काम करने से स्वास्थ्य भी अच्छा रहता है, बिगड़ता नहीं।

५. फिर गाँव में वह अपने घरवालों के साथ रहता है। वहाँ एक ही चूल्हे पर कई व्यक्तियों का खाना बनता है इसलिये खाने का खर्चा कम पड़ता है। परन्तु कानपुर में रह कर उसे अलग खाना बनाना पड़ेगा। एक चूल्हे से दो चूल्हों पर व्यय अधिक बैठ जाता है।

यही कारण है कि श्रमिक गाँव के आठ-दस आने को बड़े शहर के दो-तीन रुपये से अच्छा समझता है। गाँव में उसकी असल मजदूरी शहर से अधिक होती है यद्यपि नकद मजदूरी कम।

मजदूरी किस तरह निर्धारित की जाती है? अर्थशास्त्र में मजदूरी निर्धारण का नियम माँग तथा पूर्ति का नियम कहलाता है। श्रमिक की माँग इसलिये होती है क्योंकि श्रमिक उत्पादन कर सकते हैं। एक मिल मालिक थैह जानता है कि यदि वह एक श्रमिक को काम पर लगाकर दो-रुपये देगा तो इससे अधिक का

वह काम कर देगा। यदि वह दो रुपये से कम का काम करेगा तो मिल मालिक उसे हरगिज नहीं रखेगा इसलिये श्रमिक को अधिक से अधिक उसके उत्पादन के मूल्य के बराबर मजदूरी मिल सकती है उससे अधिक नहीं।

परन्तु मजदूर भी अपना जीवन-स्तर कायम रखना चाहता है। वह अपने रहन-सहन के दर्जे को कम नहीं करना चाहता क्योंकि उसे गिरा-देने पर मजदूर को बड़ी तकलीफ होगी। इसलिये वह कम से कम इतनी मजदूरी तो चाहता ही है कि उसका रहन-सहन का दर्जा नीचे न गिरे।

इस तरह मजदूर द्वारा उत्पादित वस्तु का मूल्य उसके वेतन की अधिकतम सीमा है और उसके रहन-सहन का दर्जा मजदूरी की न्यूनतम सीमा। इन्हीं दोनों सीमाओं के बीच उसकी मजदूरी निर्धारित होता है। जिस मजदूरी पर श्रमिक की माँग तथा पूर्ति दोनों ही बराबर होती हैं वही उसको मजदूरी मिलती है।

भारतवर्ष के गाँवों में मजदूरी—मजदूरी निर्धारित करने का अर्थशास्त्र द्वारा बताया गया नियम हमारे गाँवों में लागू नहीं होता। गाँवों में मजदूरी मजदूर के रहन-सहन के दर्जे तथा उसकी माँग पर निर्भर नहीं। वहाँ तो प्रचलित रीति-रिवाज का ही बोलबाला है। नाई जितनी मजदूरी पाता रहा है उतनी ही अब भी उसको मिलती है उससे अधिक नहीं। यही हाल अन्य मजदूरों का भी है। धोबी, तेली, कुम्हार, लुहार आदि सभी को इसी हिसाब से मजदूरी दी जाती है। यहाँ तक कि खेत पर काम करने वाले मजदूरों को भी प्रचलित रीति के अनुसार ही मजदूरी मिलती है।

मजदूरी नकद नहीं दी जाती। मजदूरों को फसल का कुछ

भाग मजदूरी के रूप में मिलता है। चाहे वह वर्ष में कितना ही काम करें या न करें उनको उतनी ही मजदूरी मिलेगी। त्योहारों पर भी उनको प्रचलित रीति के अनुसार ही सामान मिलता है। शादी पर उनको शादी से संबन्धित सभी काम करना पड़ता है और मजदूरी प्रचलित रीति के अनुसार मिलती है। गाँव का यही नियम है।

अब यह होने लगा है कि फसल काटते समय मजदूरों की माँग पूर्ति से अधिक होने के कारण उनको नकद मजदूरी दे दी जाती है। यह मजदूरी माँग तथा पूर्ति नियम के आधार पर निश्चित होती है। परन्तु सभी गाँवों में ऐसा नहीं होता। जो गाँव शहर या कस्बों के पास हैं वहाँ यह प्रथा चल पड़ी है। यह भी इस कारण क्योंकि गाँव के मजदूर ही शहर में काम करने जाते हैं और शहर में उनको नकद मजदूरी मिलती है। जब वही मजदूर गाँव में खेतों पर काम करते हैं तो वहाँ भी वह नकद मजदूरी लेना अधिक पसंद करते हैं क्योंकि नकद मजदूरी पाने के वह आदी हो गये हैं। परन्तु शहर से दूर गाँवों में अब भी मजदूरी की पुरानी प्रथा प्रचलित है।

गाँवों में मजदूरी तथा कार्यकुशलता—गाँवों में मजदूरी देने की जो प्रथा है उसका मजदूरों की कार्य-कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ा है। उनकी कुशलता धीरे-धीरे कम होती जा रही है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

१. मजदूरों को वही मजदूरी मिलती है चाहे वह कितना ही काम क्यों न करें। जब अधिक काम करने पर उनकी मजदूरी बढ़ती नहीं और कम काम करने पर घटती नहीं तो यह स्वभाविक है कि वह कम काम करेंगे और धीरे-धीरे करेंगे।

२. वह जानते हैं कि यदि बीमारी के कारण या अन्य किसी कारण वह काम पर न भी जायँ तो भी उनको मजदूरी तो मिल ही जावेगी। इसलिये वह लापरवाह हो जाते हैं।

३. गाँव में एक तरह का काम करने वाले दो-एक व्यक्ति ही होते हैं। एक घर में जो आदमी काम करता आया है उसीके घर वाले उस घर में काम कर सकते हैं दूसरा नहीं। जो नाई जिस घर का है वहाँ दूसरा नाई आकर काम नहीं कर सकता। यही हाल पंडित, भङ्गी, धीमर, चमार, कुम्हार आदि के बारे में भी है। इसलिये इन लोगों का एकाधिकार सा हो जाता है। वह जानते हैं कि काम के लिये उन्हें बुलाया तो अवश्य ही जावेगा चाहे कुछ भी हो। इसलिये यह बेफिक्र हो जाते हैं।

परन्तु साथ ही यह तो मानना पड़ेगा कि क्योंकि एक ही व्यक्ति और उसके घर वाले एक ही काम पीढ़ियों से करते चले आते हैं इसलिये वह उस काम को करने के आदी हो जाते हैं। वही काम करते करते वह उसमें काफी कुशल हो जाते हैं। यह होते हुए भी यह मानना पड़ेगा कि यदि अधिक काम करने पर उनका वेतन बढ़ सकता तो अवश्य ही वह अधिक कुशल हो जाते।

मजदूरी के भिन्न-भिन्न होने के कारण

श्रमिकों को मजदूरी एकसी नहीं मिलती। भिन्न-भिन्न काम करने की मजदूरी अलग-अलग तो होती ही है कभी-कभी एकसा काम करने पर भी मजदूरी भिन्न-भिन्न मिलती है। उसके निम्नलिखित कारण हैं :—

१. श्रमिकों की कार्य करने की अलग-अलग कुशलता होने

के कारण उनका वेतन भी अलग-अलग होता है। जो मजदूर अच्छा काम कर सकते हैं या अधिक मात्रा में कर सकते हैं उनकी मजदूरी दूसरों से अधिक होती है।

२. श्रमिकों के रहन-सहन के दर्जे पर भी उनकी मजदूरी निर्भर रहती है। जिन लोगों का जीवन-स्तर नीचा है उनका वेतन भी कम होता है। हमारे गाँवों में मजदूरी कम होने का यह भी एक कारण है।

३. श्रमिकों की माँग पर भी उनका वेतन निर्भर रहता है। यदि उनकी माँग अधिक है तो उनका वेतन भी अधिक होगा।

४. काम सीखने पर होने वाले व्यय के ऊपर भी श्रमिकों की मजदूरी निर्भर रहती है। जैसे कि इन्जीनियरिंग सीखने में काफी रुपया व्यय होता है इसलिये इन्जीनियरों का वेतन भी अधिक होता है।

५. जब मजदूरी रीति-रिवाज पर निर्भर है तो प्रचलित रिवाज के कारण मजदूरी भिन्न-भिन्न हो सकती है।

हमारे गाँव वालों को भिन्न-भिन्न मजदूरी ऊपर दिये हुए कारणों से ही मिलती है। कोई अधिक काम करता है तो कोई कम, किसी की रीति के कारण मजदूरी अधिक मिलती है तो दूसरे को कम। परन्तु यदि सब व्यक्ति सब काम करने लगे तो सबकी मजदूरी एक हो जायगी क्योंकि उनमें कुशलता का अन्तर नहीं रहेगा। उस समय सबकी माँग भी एक सी हो जावेगी।

सारांश

मजदूरों को उत्पादन करने के कारण जो पुरस्कार मिलता है वह मजदूरी कहलाती है ।

मजदूरी दो प्रकार की होती है—नकद तथा असल । जो मजदूरी उसे नकद रूपों में मिलती है वह नकद मजदूरी कहलाती है । परन्तु नकद के साथ-साथ यदि उसे कपड़ा, अन्न, रहने को मकान या अन्य कुछ लाभ मिलें तो वह सब मिलाकर उसकी असल मजदूरी कहा जावेगी । असल मजदूरी रुपये के मूल्य, अन्य वस्तुएँ, काम का ढग, आदि पर निर्भर रहता है ।

गाँवका किसान गाँव में आठ-दस आने पर काम करने को तैयार हो जाता है पर बाहर के दो-तीन रुपये उसे नहीं भाते । इसका कारण यही है कि शहर में वस्तुओं के मूल्य अधिक होते हैं । वहाँ पर रहने को मकान अधिक दामों पर मिलते हैं, वहाँ काम अधिक करना पड़ता है तथा वहाँ की आबहवा अच्छी नहीं होती । इस कारण शहरों में असल मजदूरी कम होती है ।

मजदूरी मजदूरों की माँग तथा पूर्ति पर निर्भर है । मजदूरों वहाँ निर्धारित होती है जहाँ मजदूरों की माँग तथा पूर्ति बराबर होती है ।

हमारे गाँवों में मजदूरी का माँग तथा पूर्ति नियम लागू नहीं होता । वहाँ मजदूरी गाँव की प्रचलित रिवाज के अनुसार तय होती है ।

इस प्रचलित रिवाज के कारण मजदूरों की कार्य-कुशलता कम हो गई है ।

सबकी मजदूरी एकसी नहीं होती । इसके कई कारण हैं । परन्तु यदि सब व्यक्ति सब काम करने लगे तो उनकी मजदूरी एक हो जावेगी ।

प्रश्न

१. मजदूरी का क्या अर्थ है ? इलको निर्धारण करने का क्या नियम है ?
२. असल तथा नकद मजदूरी में भेद बताइये ।
३. गाँवों में मजदूरी किस तरह तय की जाती है ? वहाँ मजदूरी का माँग तथा पूर्ति नियम लागू होता है या नहीं ?
४. गाँवों में प्रचलित मजदूरी प्रथा का प्रभाव मजदूरों की कार्य कुशलता पर क्या पड़ा है ?
५. एक व्यक्ति गाँव में कम मजदूरी पर काम करना पसंद करता है परन्तु शहर में अधिक मजदूरी पर नहीं । इसका क्या कारण है ? समझा कर लिखिये ।
६. मजदूरी क्यों भिन्न-भिन्न होती है ? समझाकर लिखिये ।

हाई स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. गाँवों के मजदूरों को किस प्रकार पुरस्कार दिया जाता है ? मजदूरी देने की प्रथा का उनकी कुशलता पर क्या प्रभाव पड़ा है ? (१९४४)
२. मजदूरी की परिभाषा दीजिये । गाँव का मजदूर अपने गाँव में १२ आना रोज पर काम करने को क्यों तैयार हो जाता है और कानपुर में ढाई रुपये रोज पर काम नहीं करना चाहता ? (१९४६)
३. (अ) भिन्न-भिन्न श्रेणियों के ग्रामीण मजदूरों की मजदूरों क्यों भिन्न होती है ?
(ब) यदि गाँव के सभी किसान सभी काम एकसा ही करने लगे तो उनकी मजदूरी में कोई भिन्नता रहेगी या नहीं ? (१९४८)

अध्याय सोलह

सूद

किसान साहूकार से रुपया उधार लेते हैं। उसको वह अपने काम में लाते हैं। रुपये को काम में लाने के कारण उनको साहूकार का कुछ पुरस्कार के रूप में देना पड़ता है। यह पुरस्कार सूद कहलाता है। साहूकार अपने रुपये या धन को स्वयं काम में न लाकर उसका उपयोग किसानों को थोड़े समय के लिये दे देता है। इस कारण साहूकार को तकलीफ होती है। साहूकार स्वयं उस धन को अन्य किसी काम में नहीं लगा सकता। इस कारण वह किसानों से सूद पुरस्कार के रूप में लेता है।

वास्तविक तथा कुल सूद—सूद दो प्रकार की होती है। वास्तविक तथा कुल सूद वास्तविक सूद वह सूद है जो कि कोई व्यक्ति धन के उपयोग के बदले ऋणदाता को देता है। परन्तु किसान महाजन को जो सूद देता है वह कुल सूद है। उसमें वास्तविक सूद के अतिरिक्त भी बहुत से पुरस्कार रहते हैं। वह अन्य पुरस्कार निम्नलिखित हैं।

१. **पूँजीपति के जोखिम उठाने का प्रतिफल**—पूँजीपति उधार रुपया देता है। उसे यह जोखिम रहता है कि कहीं रुपया उधार लेने वाला व्यक्ति रुपया मार न जाय। इसके लिये वह सूद के अतिरिक्त भी कुछ पुरस्कार अलग से लेता है।

२. **ऋण की व्यवस्था करने का खर्च**—पूँजीपति को उधार रुपया देने का हिसाब-किताब रखना पड़ता

है। उसको ज्यों-ज्यों रकम मिलती है वही खाते में लिखनी पड़ती है। उसकी रसीद देनी पड़ती है। समय पर रुपया न आने पर तकादे के लिये आदमी भेजना पड़ता है। इन सब कामों पर उसका खर्चा होता है जिसको वह सूद में लगा देता है।

३. पूँजीपति की विशेष असुविधाओं का प्रतिफल—

उधार ले जाने वाला ऐसे समय में रुपया वापिस दे सकता है जब कि पूँजीपति उस धन को कुछ समय तक अन्य किसी काम में लगा ही न सके। इस असुविधा के लिये वह कुछ पुरस्कार लेता है। ऊपर बताये गये सब पुरस्कार तथा वास्तविक सूद मिलाकर जो भुगतान होता है कुल सूद कहलाता है। आमतौर पर पूँजीपति कुल सूद ही वसूल करते हैं।

सूद की दर का निर्धारण

सूद की दर पूँजी की माँग तथा पूर्ति पर निर्भर है। पूँजी की माँग उन सब लोगों द्वारा होती है जो पूँजी को किसी कार्य में लगाना चाहते हैं। इसके लिये वह सूद देने को तत्पर हो जाते हैं। परन्तु धन को उत्पादन के कार्य में लगाने से जो आमदनी होती है उससे अधिक रुपया वह सूद के रूप में नहीं दे सकते। इस तरह धन के उत्पादन काय में लगाने से जो आमदनी बढ़ जाती है वह सूद की अधिकतम सीमा है जिससे अधिक सूद कभी नहीं हो सकती।

सूद की कम से कम सीमा पूँजीपति के कष्ट पर निर्भर है। जब पूँजीपति धन जोड़ता है तो उसको कष्ट सहना पड़ता है क्योंकि वह धन का उस समय उपभोग नहीं कर सकता। उधार देने समय वह धन का उपभोग कुछ समय के लिये दूसरे को

द देता है। उसने धन के सचय में जो कष्ट सहें हैं उसके लिये वह कुछ पुरस्कार चाहता है। जो पुरस्कार वह चाहेगा वह उसके कष्ट के मूल्य से कम नहीं हो सकता। इसलिये धन के सचय में होने वाले कष्ट का मूल्य सूद की न्यूनतम सीमा है।

इन्हीं दोनों सीमाओं के बीच सूद उस स्थान पर निर्धारित होती है जहाँ पर पूँजी की माँग तथा पूर्ति बराबर हो। यही सूद के निर्धारण का नियम है।

सूद की दर किन बातों पर निर्भर है ?—सूद की दर तो ऊपर दिये सिद्धान्त के अनुसार ही निश्चित होती है। परन्तु आप देखते होंगे कि हमारे देश में सूद की दरें एक नहीं। काबुला या अफगानी लोग १००-२०० प्रतिशत सूद वसूल करते हैं, तो महाजन ५०-६० प्रतिशत। सहकारी बैंक ६-७ प्रतिशत सूद पर रुपया उधार दे देती हैं तो अन्य बैंक रुपया जमा करने पर केवल १॥ या २ प्रतिशत ही ब्याज देती हैं। आखिर इसका क्या कारण है? सूद की भिन्नता के निम्नलिखित कारण हैं :—

१. रुपया उधार देने में जोखिम—यदि उधार रुपया देने में जोखिम अधिक है तो फिर पूँजीपति सूद की दर बढ़ा देता है। यदि कोई व्यक्ति बैंक में सोना रख कर उसकी साख पर रुपया उधार ले तो उसे कम सूद पर रुपया मिल जाता है। परन्तु यदि वह कुछ भी सिक्क्योरटी बैंक में जमा न करे तो संभव है बैंक रुपया उधार ही न दे। गाँव के किसान गरीब हैं, उनके पास स्वयं की भूमि नहीं। मकान भी उनका स्वयं का नहीं। रेहन रखने को भी उनके पास कुछ नहीं होता। गाँव का महाजन

किसानों की व्यक्तिगत सिन्क्रोरटी पर रुपया उधार दे देता है। इसमें रुपया मारे जाने का डर भी बहुत रहता है। इस कारण वह किसानों को अधिक सूद पर रुपया देता है। हमारे देश में काबुली और अफगानी कम पैसे वाले मजदूरों को रुका लिखाकर रुपया उधार दे देते हैं। गरीब मजदूरों के पास कोई सम्पत्ति नहीं तथा उनकी कोई साख भी नहीं। यही कारण है कि अफगानी काफी सूद वसूल करते हैं।

२. पूँजी की पूर्ति—गाँव के किसान तथा काश्तकार अपना व्यय खेती की आसदनी से नहीं चला सकते। इस कारण उपभोग के लिये वह रुपया उधार लेते हैं। बैंक उपभोग के लिए रुपया उधार नहीं देती। सहकारी समिति भी केवल उत्पादन कार्य के लिये ही रुपया उधार देती है। अतएव गाँव वालों को उपभोग के लिये उधार रुपया देने वाले या तो महाजन हैं या काबुली और अफगानी। क्योंकि उधार देने वाले व्यक्ति कम हैं और उधार लेने वाले अधिक इसलिए गाँव वालों को अधिक सूद पर रुपया मिलता है।

२. रुपया वसूल करने की दिक्कत—किसानों से या गरीब मजदूरों से रुपया आसानी से नहीं मिलता। उनके पास कुर्क करा लेने वाली कोई चीज तो होती नहीं केवल फसल कटते समय ही सूद या असल की वसूलयात्री हो सकती है। इसलिये फसल तैयार हो जाने पर महाजन को प्रति-दिन अपना आदमी भेजना पड़ता है जो रुपये का तफादा करता है और वह भी देखता रहता है कि कहीं फसल कट तो नहीं गई। तब भी कभी-कभी किसान फसल काट कर बेच देते हैं। और पूँजीपति को कुछ नहीं मिल पाता। बार-बार तफादा करने में पूँजीपति का

काफी रूपया व्यय हो जाता है। इसी कारण वह अधिक मूद भी वसूल करता है।

इन्हीं सब कारणों से गाँवों में मूद की दर अधिक है तथा अफगानी और महाजन काफी अधिक मूद वसूल करते हैं। सहकारी ऋण-समितियाँ अधिक मूद नहीं लेतीं परन्तु वह केवल उत्पादक कार्यों के लिये ही रूपया उधार देती हैं। सो भी केवल समिति के सदस्यों को। क्योंकि सहकारी ऋण-समितियों के सदस्यों का स्वयं का ही रूपया समिति में जमा रहता है इसी कारण वह व्यक्तिगत साख पर उधार दे देती हैं और व्याज कम लेती हैं। व्यवसायिक बैंक बिना कुछ रेहन रखे या सिक्योरिटी लिये कभी रूपया उधार नहीं देती सिक्योरिटी ले लेने के कारण उनको कुछ भी जोखिम नहीं उठानी पड़ती। वह एक हजार रुपये की चीज रख कर केवल सात सौ या आठ सौ रूपया उधार देते हैं। उधार देने में जोखिम न होने के कारण ही वह कम मूद पर रूपया दे देती हैं।

सारांश

पूँजी को व्यवहार में लाये जाने के कारण पूँजीपति को जो पुरस्कार दिया जाता है वह मूद कहलाता है।

मूद दो प्रकार की होती है। (१) वास्तविक तथा (२) कुल। कुल मूद में वास्तविक मूद के अतिरिक्त (१) रूपया उधार देने में जोखिम उठाने का पुरस्कार (२) रूपया वसूल करने में खर्च तथा (३) अन्य असुविधाओं का पुरस्कार भी सम्मिलित रहता है। मूद पूँजी की माँग तथा पूर्ति पर निर्भर रहती है। जहाँ पर पूँजी की माँग तथा पूर्ति बराबर होती है वहाँ मूद की दर निर्धारित होती है।

मूद की दर—(१) रूपया उधार देने में जोखिम (२) पूँजी की पूर्ति

तथा (३) रुपया वसूल करने में दिक्कतों पर निर्भर है। हमारे गाँवों के किसान गरीब हैं। उनके पास कोई संपत्ति नहीं और न वह कुछ सिन्क्योरिटी ही दे सकते हैं। इस कारण उन्हें रुपया देना बड़ा जोखिम का काम है। साथ में उनसे रुपया वसूल करने में भी बड़ी दिक्कत पड़ती है। यही कारण है कि गाँवों में सूद की दर अधिक होती है और महाजन काफी अधिक सूद वसूल करते हैं।

प्रश्न

१. सूद से आम क्या मतलब समझते हैं ? वार्षिक और कुल सूद में भेद बताइये।
२. सूद क्यों वसूल की जाती है ? सूद-निर्धारण का नियम बताइये।
३. सूद की दर किन-किन बातों पर निर्भर है ?
४. गाँवों में सूद की दर अधिक क्यों है ? इसको किस तरह कम किया जा सकता है।
५. अफगानी बैंकों के मुकाबले में अधिक सूद क्यों वसूल करते हैं ?

हाई-स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. भारतवर्ष के गाँवों में सूद की दर अधिक होने के कारणों को बताइये। इसको कम करने के लिये आप क्या उपाय बतावेंगे ? (१६४३)
 २. (अ) सूद क्यों दी जाती है ?
 - (ब) (१) अफगानी काश्तकारों को ३६ प्रतिशत सूद पर रुपया उधार देता है।
 - (२) सहकारी समितियाँ १२ प्रतिशत पर उधार देती हैं।
 - (३) बैंक दूकानदारों को ६ प्रतिशत पर उधार देती हैं।
- व्याज की दर ऊपर के उदाहरणों में भिन्न होने के कारण बताइये। (१६४६)

अध्याय सत्रह

लाभ

जोखिम उठाने में यदि आय व्यय से अधिक हो जाय तो उन दोनों का भेद लाभ कहलाता है। व्यय से जितनी भी अधिक आय हो वह लाभ कहलाती है। परन्तु यदि आय व्यय से कम है तो उसे हानि कहते हैं। लाभ तथा हानि उठाने की क्षमता को ही जोखिम कहते हैं।

लाभ या हानि प्रबन्धक की कार्य-कुशलता पर निर्भर है। यदि प्रबन्धक का अंदाज ठीक है, यदि उत्पादन, माँग, वस्तु की कीमत आदि के बारे में लगाये गये उसके अनुमान ठीक निकल आते हैं तब तो उस व्यवसाय में लाभ हो जाता है अन्यथा हानि। इसलिये उत्पादन में प्रबंधक का बड़ा महत्व है। जितना अच्छा प्रबंधक होगा व्यवसाय में उतना ही अधिक लाभ होगा।

हमारे देश के किसान पुरानी लकड़ी के फकीर हैं। वह खेती के नये-नये साधनों से सर्वथा अनभिज्ञ हैं। पढ़े-लिखे न होने के कारण वह समझ नहीं सकते कि विदेशों में किसानों ने कितनी अधिक उन्नति कर ली है। वह दूसरे देशों को तो कभी जाते ही नहीं। इसलिये अन्य देशों द्वारा इतनी अधिक उन्नति कर लेने पर भी हमारे किसान पुराने तरीके पर ही खेती करते हैं। यही नहीं वह यह भी नहीं जानते कि जमींदार उनसे लगान वसूल कर रहा है वह ठीक है या नहीं? उनको वह लगान की रसीद ठीक दे रहा है या नहीं? मण्डी में अनाज का क्या भाव है? बड़े शहरों में

अनाज का क्या भाव है ? उनका अनाज ठीक से तुल रहा है या कम ज्यादा ? हिसाब से उसे दाम मिल रहे हैं या नहीं ? उसे किस मण्डी में ले जाकर फसल बेचनी चाहिये आदि ? परिणाम यह होता है कि वह अच्छा प्रबन्धक नहीं बन पाता और खेती से लाभ नहीं कर पाता । हमारे देश में खेती की इतनी बुरी दशा होने का यह भी एक कारण है । जब तक किसानों में उचित शिक्षा का प्रचार नहीं होता यह बुराई दूर नहीं हो सकती । शिक्षा पाने पर ही वह अच्छे प्रबन्धक हो सकेंगे ।

खेती में ही क्या हमारे देश भर में अच्छे प्रबन्धकों की सर्वत्र कमी है । केवल थोड़े से पूँजीपतियों के हाथ में बहुत से व्यापार हैं और वही अधिकांश उद्योगों को चला रहे हैं । यह देश की बड़ी भारी कमी है ।

सारांश

व्यय से ऊपर जो भी आय होती है वह लाभ कहलाता है और व्यय से कम आय को हानि कहते हैं ।

हानिया लाभ प्रबन्धक की कार्य-कुशलता पर निर्भर है । अच्छे प्रबन्धक को लाभ और बुरे को हानि होती है ।

हमारे किसान अच्छे प्रबन्धक नहीं । अज्ञानता के कारण वह अच्छा प्रबन्ध नहीं कर सकते । इस कारण उनको हानि उठानी पड़ती है ।

प्रश्न .

१. लाभ की परिभाषा दीजिये । यह क्यों होते हैं ?

२. हमारे काश्तकारों को प्रायः हानि क्यों होती है ? कारण स्पष्टतया बताइये ।
३. क्या खेती से होने वाले नुकसान को रोका जा सकता है ? उपाय बताइये ।
४. 'किसान अच्छा प्रबन्धक नहीं ।' क्या यह कथन ठीक है ?



भाग ६

गाँवों की व्यवस्था

[अध्याय १. गाँवों की समस्या । २. गाँवों की सफाई । ३. ग्रामीण शिक्षा । ४. मनोरंजन के साधन । ५. व्यक्तिगत स्वास्थ्य तथा उसके सिद्धान्त । ६. गाय बैलों की समस्या । ७. खेती की उन्नति के उपाय । ८. मुकदमेवाजी । ९. ग्रामीण ऋण । १०. गाँव तथा जिले का शासन । ११. ग्राम्य स्वराज्य । १२. पंचायत राज्य कानून । १३. सरकारी कृषि विभाग ।]

अध्याय अटारह

गाँवों की समस्या

भारतवर्ष एक गाँव-प्रधान देश है। यहाँ लगभग नौ लाख गाँव हैं और वहाँ पर देश की ९० प्रतिशत जनता रहती है। उस जनता में से ७५ प्रतिशत जनता जीविका के लिये खेती पर निर्भर रहती है। बाकी १५ प्रतिशत में तेली, धोबी, नाई, महाजन, दुकानदार, जमींदार, अध्यापक आदि आते हैं। यही गाँव हमारे देश के सच्चे प्रतीक हैं। पूज्य बापू ने ठीक ही कहा था कि सच्चे भारतवर्ष का पता कलकत्ता, बम्बई या दिल्ली आदि बड़े शहरों को देख कर नहीं लग सकता उसके लिये तो हमें गाँवों में जाना पड़ेगा।

जब देश की ७५ प्रतिशत जनता जीविका के लिये खेती पर आश्रित रहती है तो आप समझ सकते हैं कि हमारे देश की आर्थिक प्रणाली में कृषि का क्या स्थान होगा। परन्तु दुर्भाग्य की बात है कि इतना महत्वपूर्ण उद्योग आजकल बुरी दशा में है। बिचारे किसान दिन-रात मेहनत करते हैं। गर्म लू या सूर्य की तेज धूप की वह परवाह नहीं करते, पसीने से लथ-पथ बह एकाग्रचित्त हो खेतों में फावड़ा चलाते रहते हैं। पूस-माघ की ठन्डी रातों में भी फटी-पुरानी चादर में किसी तरह अपना तन ढँके काँपते-काँपते वह रात भर फसल की निगरानी किया करते हैं। परन्तु फिर भी उनको भरपेट भोजन नहीं मिलता। भूखे रहने के कारण उनका शरीर दुर्बल हो गया है। उनको

रोगों ने आ बेरा है। उनके बच्चे बिना पढ़े-लिखे तथा अशिक्षित हैं। उनको पहनने को कपड़ा नहीं। उनके फटे-पुराने कपड़े भी गन्दे हैं क्योंकि मफाड़े का उन्हें ज्ञान नहीं। मनोरंजन का उनका कोई साधन नहीं, और महाजन तथा जमींदार का डर उन्हें हमेशा सताये रहता है। उनके जीवन में हँसी का कोई स्थान नहीं। ऋण के बोझ से उनकी पीठ टूटी जाती है। मुकदमेबाजी उनकी रही-सही आमदनी चट किये जाती है। खेती की पैदावार बढ़ने की कोई आशा नहीं। उनके खेत छोटे-छोटे तथा छिटके हैं, उनमें खाद नहीं पड़ती, ठीक से सिंचाई नहीं होती, बीज भी खराब डाले जाते हैं और पुराने तरीके के औजारों से उसे जोता तथा निराया जाता है। भगवान भी उनसे नाराज रहते हैं। कभी बाढ़ नुकसान पहुँचाती है तो कभी सूखा पड़ जाता है। कभी जंगली जानवर उनके अनाज को खा जाते हैं तो कभी फसल में ही कीड़ा लग जाता है। जैसे ही फसल तैयार होकर काटी गई जमींदार तथा महाजन के आदमी आकर अपनी बसूल-याबी के लिये उस पर अधिकार कर लेते हैं। लगान उनसे इतना अधिक लिया जाता है कि बेचारों के पास खाने को कुछ बचने ही नहीं पाता। जमींदार तथा महाजनों से बचाकर वह कुछ फसल छिपाकर रख लेता है। इसीको वह साल भर खाता है। यदि वह कुछ फसल छिपा कर न रख सका तो वर्ष भर उधार ले लेकर ही पेट भरता है। जब उनकी दशा इतनी बुरी है तो उनके जानवरों की दशा कैने अच्छी हो सकती है? भूख के मारे वह भी दुबले-पतले हो गये हैं। शरीर उनका शिथिल पड़ गया है तथा थोड़ा सा काम करते ही वह थक जाते हैं। इस तरह गाँव की हालत सब तरफ से बिगड़ चुकी है।

किसान की समस्याओं को हम तीन भागों में बाँट सकते हैं:

(१) आर्थिक समस्या जिसके अंदर वह सब बातें आ जाती हैं जिनके कारण खेती की उपज कम होती है (२) स्वास्थ्य तथा सफाई की समस्या जिसमें गाँवों की सफाई और किसानों की व्यक्तिगत सफाई तथा स्वास्थ्य की बातें आती हैं तथा (३) शिक्षा और आमोद की समस्या। प्रत्येक भाग के अन्दर बहुत सी छोटी-छोटी समस्यायें हैं जो नीचे दी जाती हैं :—

१. आर्थिक समस्या

- (अ) खेती की उन्नति की समस्या
- (ब) पशु-पालन की समस्या
- (स) ग्रामीण ऋण की समस्या
- (द) मुकद्दमेबाजी की समस्या

२. स्वास्थ्य तथा सफाई की समस्या

- (अ) गाँव की सफाई की समस्या
- (ब) गाँव वालों के स्वास्थ्य की समस्या

३. शिक्षा की समस्या

- (अ) ग्रामीण शिक्षा की समस्या
- (ब) मनोरंजन के साधनों की समस्या

इन सब समस्याओं पर हम एक-एक करके विचार करेंगे और साथ में यह भी बतावेंगे कि इन समस्याओं को किस तरह सुलझाया जा सकता है। महात्मा गाँधी यह चाहते थे कि किसानों की दशा सुधरे। ग्राम्य-सुधार आन्दोलन उनके राजनैतिक आन्दोलन का एक भाग था। कांग्रेस सरकारों गाँधी जी के बताये रास्ते

पर चल रही हैं और वह गाँवों की समस्त बुराइयों को दूर करना चाहती हैं। कांग्रेस सरकार द्वारा किये गये कार्यों का भी हम साथ ही में उल्लेख करेंगे।

सारांश

हमारे देश की ६० प्रतिशत जनता गाँवों में रहती है तथा ७५ प्रतिशत जनता जीविका के लिये खेती पर निर्भर है। परन्तु गाँवों की दशा बहुत खराब है। खेतों से पैदावार कम होती है, उममें खाद नहीं पड़ती, बीज भी खराब डाले जाते हैं और सिंचाई के साधन और भी ठीक नहीं। लगान की प्रथा तथा ऋण के बोझ से वह तग हो गये हैं। शिक्षा के अभाव के कारण वह कुछ कर नहीं सकते तथा उनका स्वास्थ्य खराब होता जा रहा है। गाँवों में सफाई का प्रबन्ध उचित नहीं। किसानों की समस्याओं को तीन भागों में बाँटा जा सकता है (१) आर्थिक (२) स्वास्थ्य सम्बन्धी तथा (३) शिक्षा सम्बन्धी इन्हीं समस्याओं को सुलझाने पर देश का कल्याण हो जावेगा।

प्रश्न

१. ग्रामीण जनता की समस्याओं का दिग्दर्शन कराइये।
२. ग्रामीण जनता की समस्याओं को किन-किन भागों में बाँटा जा सकता है ? प्रत्येक भाग में कौन-कौन सी समस्याएँ हैं ?
३. गाँवों की आर्थिक समस्याओं पर प्रकाश डालिये तथा उनके कारणों को बतलाइये।
४. गाँवों में शिक्षा की क्या दशा है ? उनके मनोरंजन के साधनों के बारे में भी बताइये।

अध्याय उन्नीस

गाँवों की सफाई

भारतवर्ष में गाँवों के लोग सफाई की तरफ ध्यान नहीं देते। घर के पास ही वे कूड़े का ढेर लगा देते हैं जिस पर मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं और जहाँ कीटाणु पैदा होकर हवा के सहारे तमाम गाँव में फैलते रहते हैं। गाँवों में कूड़ा उठाने का कोई प्रबन्ध नहीं और या तो आँधीसे उड़कर या मेह के पानी से बह कर ही वह कम होता है। यही नहीं छोटे २ बच्चे घरों के आस-पास शौच या पेशाब के लिये बैठ जाते हैं। प्रौढ़ों को पेशाब के लिये कोई नियत स्थान नहीं। नालियों का गंदा पानी भी यत्र-तत्र फैला रहता है और गड्ढों में भरा सड़ता रहता है। प्रायः यह गंदा पानी तालाब या पोखर में मिलकर तालाब के पानी को भो गंदा कर देता है। परन्तु गाँव वाले इसकी तरफ ध्यान नहीं देते। उंसी तालाब के पानी को उनके जानवर पीते हैं तथा उसी में उनके बच्चे नहाते भी हैं। पीने के पानी के कुए के आस-पास भी काफी गंदगी रहती है। गाँवों में न तो अच्छी सड़कें हैं और न वहाँ नालियाँ ही बनी हुई हैं जिनमें होकर गंदा पानी बह सके, न पाखाने व पेशाब के स्थान नियुक्त हैं, न कूड़ा करकट उठाने के लिये साधन ही हैं और न गाँवों की सड़कों पर कभी भाड़ू ही लगाई जाती है। जब सफाई की इतनी बुरी हालत है तो यदि गाँव में रोग फैलें तो इसमें अचरज ही क्या ? यह बड़े सौभाग्य की बात है कि गाँव वाले खुली हवा

में तथा सूर्य की रोशनी में काम करते हैं जिसके कारण उनका स्वास्थ्य कुछ अच्छा बना रहता है। अन्यथा जितनी गंदगी में वे रहते हैं उससे तो उनका स्वास्थ्य एकदम चौपट हो गया होता।

गाँव वालों की दशा सुधारने के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है कि गाँव की सफाई की तरफ उचित ध्यान दिशा जाय। जब तक गाँव में सफाई का उचित प्रबन्ध न होगा गाँव वालों का तथा उनके जानवरों का स्वास्थ्य ठीक नहीं हो सकता। ठीक स्वास्थ्य न रहने के कारण वह खेतों पर पूरी मेहनत से काम नहीं कर सकते और इस कारण खेतों की पैदावार भी नहीं बढ़ सकती। गाँव की सफाई के लिये निम्नलिखित कार्य करने आवश्यक हैं :—

तालाब तथा पोखरों की सफाई—गाँव वालों के भोपड़े मिट्टी के बने हुये होते हैं। बरसात में वह प्रायः गिर जाते हैं और क्रिमान उन्हें दुबारा बनाते हैं। इसके लिये उनको मिट्टी चाहिये जिसको वह गाँव के पास ही जमीन से खोदकर ले आते हैं। धीरे-२ करके वह गड्ढा बड़ा हो जाता है तथा बरसात के दिनों में उसमें पानी भर जाता है। तभी यह पोखर या तालाब कहलाने लगता है। तालाब का पानी निकलता नहीं, उसी गड्ढे में वह हरदम भरा रहता है। वह पानी प्रायः मेह का होता है और वह गाँव भर की गंदगी को अपने साथ बहा लाता है। इसी कारण वह पानी गंदा, मटीला तथा बदबूदार होता है। गाँव के लोग तालाब के आस-पास ही शौच को जाते हैं और मल-मूत्र तालाब में ही बहता रहता है। गाँव के जानवरों को भी उसी में नहलाया जाता है। उनके बदन की सारी गंदगी इसी

तालाब में जमा हो जाती है और वह नहाते समय मल-मूत्र का त्याग भी तालाब में ही कर देते हैं। इसके ऊपर से गाँव भर के गंदे कपड़े भी इसी तालाब में धोये जाते हैं। अतः पानी इनका गंदा हो जाता है कि दूर से ही उसमें बदबू आने लगती है। गाँव भर के लोग इसी तालाब में नहाते हैं और यदि गाँव में कुआ नहीं होता तो यही पानी पीने के काम में भी आता है। इस गंदे बदबूदार तथा विभिन्न बीमारियों के कीटाणुओं से युक्त पानी पीने से यदि गाँव के जानवरों और मनुष्यों का स्वास्थ्य खराब हो जाय तो इसमें अचरज ही क्या है ?

गाँव में इन तालाबों के पानी को साफ रखने की समस्या काफ़ी महत्वपूर्ण है। इसके लिये यह आवश्यक है कि जहाँ तक हो सके, तालाब पक्के हों जिससे कि गन्दा हो जाने पर उनका पानी निकाला जा सके। तालाब के आस-पास लोगों को शौच जाने की मनाही कर दी जाय। जिस तालाब का पानी पीने के काम में आवे उसमें न तो जानवर ही नहा सकें और न आड़मी ही और न उसमें गंदे कपड़े ही धोये जायें। इन सब कामों के लिये गाँव में दूसरा तालाब होना चाहिये। इन तालाबों की महीने में एक या दो बार सफाई अवश्य होनी चाहिये। उनका तमाम पानी निकाल कर फेंक देना चाहिये। उनमें जमा हुई कीचड़ और गंदगी को फावड़ों से खींच-खींच कर बाहर फेंक देना चाहिये और उसमें नहर का साफ पानी भर देना चाहिये। इस काम में सरकार की सहायता की अत्यन्त आवश्यकता है। जिला बोर्ड को चाहिये की वह कीटाणु मारने की लाल दवा जिसे कि पोटेसियम पर-मैंगनेट (Potassium Permagnate) कहते हैं प्रक्ति

सप्ताह इन तालाबों में डलवा दिया करे। तालाबों के चारों ओर ऊँची-ऊँची मेड़ बनवा देनी चाहिये जिससे कि गाँव का गन्दा पानी उसमें न जाय। ऐसा होने पर ही तालाब या पोखरों का पानी साफ रह सकता है।

कुओं की सफाई—गाँवों के कुओं की दशा भी अच्छी नहीं। वह प्रायः कच्चे होते हैं तथा निचाई पर बने हुये होते हैं। गाँव के लोग वहीं पर बैठ कर कपड़े धोते हैं तथा नहाते व मुँह-हाथ धोते हैं। इस तरह कुओं का पानी चारों ओर बहता रहता है। उस पानी को बहा ले जाने के लिये नालियों का कोई प्रबन्ध नहीं होता। इस कारण पानी वहीं आसपास गड्ढों में जमा हो जाता है और सड़ता रहता है। गन्दा पानी जमीन के अन्दर ही अन्दर कुए के पानी से मिल जाता है और उस पानी को भी गन्दा बना देता है। यही नहीं पेड़ों के पत्ते टूट-टूट कर कुए में गिरते रूटते हैं और सड़कर कुए के पानी को आर भी गन्दा बना देते हैं।

कुए के पानी को साफ रखने के लिये यह आवश्यक है कि कुए के मुँह के चारों ओर काफी ऊँची मेड़ बनवा दी जाय जिससे कि नहाते समय गन्दा पानी या साबुन कुए में न जाय। कुए के आस-पास जमीन ऊँची कर देनी चाहिये और नालियाँ खोदकर पानी बह जाने का इन्तजाम कर देना चाहिये जिससे कुए के आस-पास गन्दा पानी जमा न हो। कुओं में भी कीटाणु मारने वाली लाल दवा, पोटाशियम परमैंगनेट डालना चाहिये तथा उनकी समय-समय पर सफाई करा देनी चाहिये। आजकल ट्यूब-वैल (Tube-Well) का प्रयोग बढ़ गया है। इनको लगवाने

का व्यय भी अधिक नहीं होता। इनसे पानी भी कम मेहनत से निकल आता है तथा इनके पानी के गन्दा होने का कोई डर नहीं होता। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने बहुत से गाँवों में ट्यूब-वैल लगवा दिये हैं जिनसे गाँव वालों को पीने के पानी के साथ-साथ सिंचाई की भी सुविधा हो गई है। सरकार को चाहिये कि इस तरह के कुओं की संख्या बढ़ावे।

शौच-स्थान—गाँव के लोग घरों में शौच के लिये नहीं जाते क्योंकि वहाँ शौच-स्थान नहीं होते। प्रौढ़ तो बाहर खेतों में शौच के लिये जाते हैं परन्तु बालक घरों के आस-पास ही शौच के लिये बैठ जाते हैं। यह रिवाज बहुत बुरा है और इस कारण गाँव में गन्दगी फैली रहती है। गाँव के लोग प्रायः नंगे पैर ही इधर-उधर घूमा करते हैं। इससे उनके पैरों में मल लग जाता है। इससे उनको एक प्रकार का रोग जिसे हुक-वार्म (Hook-Worm) कहते हैं, हो जाता है। कुछ लोग यह समझते हैं कि जब वह मल त्यागने खेतों में जाते हैं तो वह खाद की मात्रा बढ़ा कर भूमि को अधिक उपजाऊ बना देते हैं। परन्तु उनकी यह धारणा सर्वथा गलत है। जब तक मल को गड्ढे में बन्द न कर दिया जाय, जिससे कि वह सड़ जाय, तब तक उसकी खाद तैयार नहीं हो सकती। इस तरह तो मल से उत्पन्न होने वाले कीटाणु हवा में उड़कर रोग उत्पन्न करते हैं और गाँव की आब-हवा और भी गन्दी कर देते हैं।

गाँव में सफाई रखने के लिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक घर में एक शौच-स्थान हो और वहाँ पर घर भर के लोग मल का त्याग करें। बाद में यह मैला उठाकर एक गड्ढे में भर दिया

जाय और मिट्टी से पाट दिया जाय। ऐसा करने से थोड़े ही समय में अच्छी खाद तैयार हो जावेगी। यदि हर मकान में शौच-स्थान बनाना संभव न हो तो जिला बोर्ड को यह चाहिये कि प्रत्येक गाँव में कुछ सार्वजनिक शौच-स्थान बनवा दे जिससे गाँव के लोग इधर-उधर शौच के लिये न बैठें। जो लोग खेतों में शौच के लिये जाते हैं उनको यह चाहिये कि वह पहले जमीन के अन्दर लगभग एक फुट गहरा गड्ढा खोद लें और शौच जाने के पश्चात् उस गड्ढे को मिट्टी से बन्द कर दें। ऐसा करने से न तो गन्दे कीटाणु हवा में ही मिलेंगे और न बीमारियाँ ही फैलेंगी। साथ ही उससे यह लाभ होगा कि खेतों में अच्छी खाद तैयार हो जावेगी।

नालियों की समस्या—गाँव में गन्दे पानी के बहने का कोई ठीक प्रबन्ध नहीं। रसोई का, बर्तन मांजने का तथा नहाने-धोने का गन्दा पानी घरों में तथा गलियों में सर्वत्र फैला रहता है। इस कारण स्थान-स्थान पर कीचड़ जमा हो जाती है जिनमें तरह-तरह के कीड़े पैदा हो जाते हैं।

यह आवश्यक है कि प्रत्येक घर का गन्दा पानी एक नाली द्वारा लाकर बाहर एक गड्ढे में जमा कर दिया जाय जिससे वह सब जगह न फैले। वह गड्ढा हमेशा ढका रहना चाहिये तथा उसमें चूना या ब्लीचिङ्ग पाउडर डाल देना चाहिये जिससे कि उसमें मच्छर पैदा न हों। समय-समय पर इन गड्ढों को साफ करते रहना चाहिये। यदि हो सके तो सोकेज पिट (Soakage Pit) खोदने चाहिये जिससे कि पानी उसमें चला जाय और उनको बार-बार साफ करने का भ्रम न रहे। संयुक्त प्रान्त की सरकार सोकेज पिट खुदवाने के पक्ष में है और उसने इस दिशा में सराहनीय कार्य किया है।

गाँव की आवहवा को और भी दूषित बना देता है। यह आवश्यक है कि गाँव की बस्ती के कुछ दूर एक गड्ढा खोद दिया जाय तथा गाँव भर का कूड़ा उसी में डाला जाय। इस गड्ढे को हमेशा मिट्टी से ढके रखना चाहिये। जैसे ही कूड़ा डाला जाय उसके ऊपर कुछ मिट्टी डाल देनी चाहिये जिससे कि गंदगा हवा में न फैले।

डाक्टरों की समस्या—हमारे गाँवों में डाक्टर बहुत कम पाये जाते हैं। यदि किसी गाँव वाले को डाक्टर की आवश्यकता होती है तो उसको कई मील चलकर शहरों में आना पड़ता है और तब कहीं वह डाक्टरों से दवा ले सकता है। गाँवों में कुछ वैद्य अवश्य पाये जाते हैं। परन्तु वह अधिक होशियार नहीं होते। डाक्टरों के अभाव के कारण हमारे गाँव के हजारों व्यक्ति प्रतिवर्ष असमय ही इस संसार से विदा ले लेते हैं। यह अत्यन्त आवश्यक है कि सरकार दस-बीस गाँवों के बीच में एक दवाखाना खोलने का प्रबंध करे। यदि हो सके तो घूमने वाले दवाखानों को खोले जो गाँवों में घूम-घूम कर बीमारों को देखें और उन्हें दवा दें। हमारे प्रान्तों के जिला बोर्डों का भी यह काम है कि वह गाँव में डाक्टरों का प्रबन्ध करें। परन्तु धन के अभाव के कारण वह अभी तक अधिक कार्य नहीं कर सके हैं। सरकार को चाहिये कि वह जिला बोर्डों के अधिकारियों के साथ मिलकर एक ऐसी योजना बनाये कि गाँवों में चिकित्सा का प्रबन्ध अच्छा हो जाय। आजकल होमोपैथी दवाइयाँ सस्ती तथा उपयोगी सिद्ध हो रहीं हैं। सरकार को चाहिये कि होमोपैथी के डाक्टर नियुक्त करे। ऐसा करने से डाक्टरों पर तथा दवाओं पर व्यय अधिक न होगा।

गाँवों में इस बात की भी आवश्यकता है कि गर्भवती स्त्रियों की ठीक से देख-भाल की जाय। गाँवों में होशियार दाइयाँ नहीं होती। गाँव की बूढ़ी औरतें ही पुराने ढंगों के अनुसार बच्चे जनवाती हैं जिसके कारण बहुत-सी औरतों की कुसमय मृत्यु हो जाती है। सरकार को चाहिये कि गाँवों में कुशल दाइयों की नियुक्ति करे जो कि बच्चा होते समय गर्भवती स्त्रियों की ठीक से देख-भाल कर सकें। उन्हीं दाइयों का यह भी काम होना चाहिये कि वह बच्चों के रखने के बारे में माताओं को ठीक से शिक्षा दें। इससे हमारे देश में बढ़ी हुई बाल-मृत्यु-संख्या कम हो जावेगी।

बम्बई सरकार ने एक ग्रामीण-सहायक-योजना निकाली है जिसके अनुसार गाँवों के अध्यापक थोड़े समय के लिये कुछ केन्द्रों में मामूली रोगों की चिकित्सा के बारे में ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं और फिर गाँवों में उन रोगों का इलाज करते हैं। होम्यो-पैथी ऐसी दवा है जो आसानी से सीखी जा सकती है। अन्य प्रान्तों को बम्बई सरकार के सुझाव पर चलना चाहिये और अध्यापकों को होमोपैथी का ज्ञान कराकर उन्हें गाँव वालों की दवा करने का आदेश दे देना चाहिये। इस कार्य के लिये उन्हें अलग से कुछ वेतन देना चाहिये।

अन्य उपाय—इन सब उपायों के साथ २ यह भी आवश्यक है कि गाँव वालों को अच्छा तथा स्वास्थ्यप्रद भोजन खाने के लिये प्रोत्साहित किया जाय। आपको बताया जा चुका है कि अच्छे भोजन के लिये क्या २ खाना आवश्यक है। गाँव वालों को अपना भोजन

अच्छा बनाना चाहिये। साथ ही गाँवों में सफाई रखने तथा उससे लाभों को बताने के लिये समय २ मेले तथा नुमायश होने चाहिये। प्रान्तीय सरकार को प्रान्त भर के सबसे साफ गाँव को प्रति वर्ष इनाम देने की एक योजना चलानी चाहिये जिससे सफाई की तरफ उनका उत्साह बढ़े। अब पंचायत-राज्य कायम हो गया है। इसलिये पंचायतों को इस आवश्यक कार्य के लिये सबसे पहले कदम उठाना चाहिये।

सारांश

हमारे गाँवों में सफाई की तरफ ध्यान नहीं दिया जाता जिससे गाँव वालों का स्वास्थ्य बड़ा खराब हो जाता है।

गाँवों के पोखर तथा तालाब बड़े गन्दे होते हैं। उनमें बरसत का पानी जो कि गाँव भर का कूड़ा लिये आता है जमा हो जाता है। उसी तालाब में जानवर नहाते हैं, गन्दे कपड़े धुलते हैं, पाखाना-पेशाब गिरता है, लोग नहाते हैं तथा उसी पानी को पीते हैं। यह आवश्यक है कि पीने के पानी का तालाब अन्य सब तालाबों से अलग हो तथा उसका पानी केवल पीने के ही काम आवे। वह पक्का हो तथा उसका पानी प्रति माह नहर के पानी से बदला जाय। उसमें पोटासियम परमैंगनेट डाला जाय जिससे सब कीटाणु मर जायँ।

कुओं की सफाई के लिये यह आवश्यक है कि उनकी मेंड़ को ऊँचा बनाया जाय जिससे नहाने का पानी या साबुन का पानी कुए में न जाय। प्रतिमास उनका उदेउ होना चाहिये तथा उसमें लाल दवा डालना चाहिये जिससे सब कीटाणु मर जायँ।

गाँवों में शौच-स्थान की समस्या बड़ी विकट है। गाँव के छोटे छोटे घर के आस-पास ही मल त्याग करते हैं जिसके कारण हुक

वार्म (Hook worm) जैसी बीमारियाँ हो जाती हैं। प्रौढ़ लोग खेतों में मल त्याग करते हैं। यह प्रथा बहुत बुरी है क्योंकि मैले में होने वाले कीड़े हवा में मिल कर गाँव की हवा दूषित कर देते हैं: यह आवश्यक है कि या तो प्रत्येक घर में एक शौच-स्थान बना दिया जाय या गाँव भर के लिये सामूहिक शौच-स्थान खोले जायँ। जो खेतों में शौच के लिये जायँ, उनको एक फुट नीचा गड्ढा खोदकर उसमें मल त्यागकरना चाहिए और बाद में उसे बंद कर देना चाहिये।

गाँवों में नालियों की बड़ी कमी है। गाँव भर का गन्दा पानी इधर-उधर पड़ा रहता है जिससे बीमारियाँ फैलने लगती हैं। यह आवश्यक है कि प्रत्येक घर का गन्दा पानी बाहर एक गड्ढा में जमा किया जाय। यदि सोकेज-पिट खोदें जायँ तो बहुत अच्छा।

गाँवों के घरों में हवा तथा रोशनी का उचित प्रबन्ध नहीं रहता। न तो उनमें खिड़कियाँ ही होती हैं और न रोशदान ही। घर भर के सभी लोग एक ही कमरे में सोते हैं। यह आवश्यक है कि घरों में खिड़की तथा रोशनदान हों।

गाँवों के लोग कूड़ा घर के पास ही जमा कर देते हैं और उसको कोई नहीं उठाता। यह आवश्यक है कि गाँव से थोड़ी दूर पर एक गड्ढा खोद दिया जाय और उसी में गाँव भर का कूड़ा पड़ा करे। परन्तु कूड़ा डालने के बाद ही उस पर थोड़ी सी मिट्टी डाल देनी चाहिये।

गाँवों में डाक्टर नहीं होते जिससे बहुत से लोग कुसमय ही इन ससार से उठ जाते हैं। यह आवश्यक है कि सरकार को ८-१० गाँवों के बीच एक अस्पताल अवश्य ही खोलने का प्रबन्ध करना चाहिये। चलते-फिरते अस्पताल भी स्थापित करने चाहिये जिससे वह गाँव-गाँव जाकर बीमारों को दवा दे सकें। आजकल होमोपैथी

दवाइयाँ बड़ी सस्ती होती हैं। सरकार को इन्हीं का प्रयोग बढ़ाना चाहिये। औरतों तथा बच्चों के स्वास्थ्य की रक्षा के लिये होशियार दाइयों को भी नियुक्त करना चाहिये।

इन सबके अतिरिक्त गाँव वालों का भोजन अधिक स्वास्थ्यप्रद होना चाहिये। समय-समय पर मेले तथा नुमाइश करने चाहिए जिनमें सफाई रखने के तरीकों पर प्रकाश डालना चाहिए। सरकार को चाहिए कि वह प्रान्न भर के सबसे साफ गाँव को प्रति वर्ष एक इनाम दिया करे। इससे उनको सफाई रखने में उत्साह बढ़ेगा।

प्रश्न

१. गाँवों में सफाई की क्या ब्यवस्था है ? उसके लिए क्या क्रिया जा सकता है ?
२. सफाई न रखने से गाँव वालों को क्या हानियाँ हैं ? सफाई किस तरह रखी जा सकती है ?
३. गाँवों में तालाबों को किस तरह साफ रखा जा सकता है ? कुओं के पानी की सफाई की समस्या पर प्रकाश डालिए।
४. गाँवों में शौच जाने का क्या प्रबन्ध है ? इस प्रथा की बुराइयाँ बताइए। आप इसमें किस तरह सुधार करेंगे ?
५. घरों को किस प्रकार स्वास्थ्य-प्रद बनाया जा सकता है ? उनमें हवा जाने का क्या प्रबन्ध होना चाहिए ?
६. हमारे देश के गाँवों में इलाज की क्या सुविधायें प्राप्त हैं ? उनको किस तरह बढ़ाया जा सकता है ?
७. स्त्रियों की देख-रेख तथा बालकों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिए क्या करना आवश्यक है ?
८. किसी गाँव जिनको आपने देखा हो उसमें जो सफाई की दशा थी उस पर प्रकाश डालिए।

अध्याय बीस

ग्रामीण-शिक्षा

हमारे गाँव-वासियों की गिरी हुई दशा से कौन देशवासी अनभिन्न होगा ? अपनी बुरी दशा के कारण वह इतने निराश हो गये हैं कि वह यह कभी नहीं सोचते कि उनकी दशा भी सुधरेगी । वह भाग्य पर विश्वास करते हैं और सब दुःखों को दैवी दुःख मानकर चुप रह जाते हैं । सामाजिक तथा धार्मिक रूढ़ियों के वह बुरी तरह शिकार बने हुए हैं । इन सब दुःखों का एक महत्वपूर्ण कारण गाँवों में फैली हुई निरक्षरता है । यों तो हमारे देश में साक्षरता अधिक नहीं । प्रति १०० व्यक्तियों में से ९० निरक्षर हैं । परन्तु हमारे गाँवों में तो यह दशा और भी बुरी है । वहाँ शायद ही कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति मिलेगा । यदि गाँव का कोई व्यक्ति पढ़ा भी तो वह पढ़कर सीधे शहर में चला आता है क्योंकि गाँव का जीवन उसे रुचिकर नहीं लगता । वह मेहनत करके रोटी कमाने को बुरी दृष्टि से देखने लगता है । गाँव वालों की वेष-भूषा उसे नहीं सुहाती । वह बैल हाँकना, हल चलाना या फावड़ा चलाना अपनी शान के विपरीत समझता है । वह कुर्सी पर बैठकर कलम घिस सकता है परन्तु फाँवड़ा नहीं चला सकता । इस कारण यह आवश्यक हो जाता है कि वह गाँव छोड़कर शहर चला जाय । यह भावना एक दूषित मनोवृत्ति का परिणाम है और वर्तमान शिक्षा का पाठ्यक्रम इसके लिये बहुत कुछ जिम्मेदार है ।

शिक्षा से मनुष्य के मस्तिष्क का विकास होता है। उसका ज्ञान बढ़ता है। वह समझने लगता है कि उसे क्या करना चाहिये और क्या नहीं। शिक्षा के बाद उसे आदमी हिसाब-किताब में धोका नहीं दे सकते। वह यह समझ जाता है कि उसे कौन-सी वस्तु कहाँ मिलेगी और किस दाम पर। यह सब होने के साथ-साथ उसमें परोपकार की भावनाएँ आ जाती हैं। वह सहनशील हो जाता है, संगठित होकर काम करता है और लड़ाई-भगड़े से दूर रहता है। एक शिक्षित मनुष्य गाँव के लिये निधि हो सकता है।

आजकल का पाठ्यक्रम ठीक नहीं—परन्तु प्रत्येक पढ़ा-लिखा मनुष्य शिक्षित नहीं हो जाता। पढ़ने-लिखने से ही मनुष्य सहनशील तथा परोपकारी नहीं बन जाता। इसके लिये आवश्यक है कि मनुष्य ठीक प्रकार से शिक्षा ग्रहण करे। और यह तभी संभव हो सकता है जब कि हमारी शिक्षा का पाठ्यक्रम बदले। इस समय शिक्षा का पाठ्यक्रम बहुत गलत है। ब्रिटिश सरकार ने शिक्षा का पाठ्यक्रम विदेशी सभ्यता के प्रति अनुराग बढ़ाने, स्वदेशी वस्तुओं से घृणा सिखाने तथा दफ्तरों के लिये बाबू तैयार करने के लिये बनाया था। इसमें उनको भूरी सफलता मिली। अब हमारा देश स्वतन्त्र हो गया है। अब हमको ऐसा पाठ्यक्रम चाहिये जो स्वावलम्बन का पाठ पढ़ाये, श्रम के महत्व को समझाये, बच्चों को दस्तकारी सिखाये, कृषि के नये-नये तरीके बताये तथा उसकी तरफ अनुराग बढ़ाये और ग्रामीण उद्योग-धन्धों का ज्ञान दे। जब तक इस तरह का पाठ्यक्रम नहीं होगा गाँवों में शिक्षा बढ़ाने या कुछ मंदरसा खोल देने से कुछ नहीं होगा।

नई-नई योजनायें

वार्धा योजना—हर्ष की बात है कि हमारे देश की सभी प्रान्तीय सरकारों ने इस समस्या की तरफ ध्यान दिया है। सबसे पहले सन् १९३७ में जब कि इस देश के आठ प्रान्तों में कांग्रेसी सरकारें काम कर रही थीं, देश भर के शिक्षा के मामले के विद्वानों की एक सभा वार्धा में बुलाई गई। उस सभा के संयोजक हमारे पूज्य बापू थे। इस कमिटी ने जो योजना तैयार की वह वार्धा योजना (Wardha Scheme of Education) के नाम से प्रसिद्ध है। इस योजना के तीन मुख्य सिद्धान्त हैं:—

१. सात वर्ष से १४ वर्ष तक के प्रत्येक बच्चे को अनिवार्य तथा निःशुल्क शिक्षा देना;
२. शिक्षा जबदेस्ती ठोकर-पीठ कर न दी जाय, परन्तु बालकों को क्रिया द्वारा सिखाई जाय; तथा
३. शिक्षा देश की राष्ट्र भाषा में हो।

इस योजना की सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह शारीरिक परिश्रम पर जोर देती है तथा उत्पादन कार्य सिखाने के पक्ष में है। इस योजना द्वारा बनाये गये पाठ्यक्रम में दस्तकारी का महत्वपूर्ण स्थान है। इसी पढ़ाई के अनुरूप बुनियादी शिक्षा (Basic Education) भी है। इसके अनुसार बालकों को बढ़ईगरी, कृषि, वागवानी, कताई-बुनाई आदि की शिक्षा दी जावेगी। इनके अतिरिक्त इतिहास, भूगोल, विज्ञान, स्वास्थ्य-विज्ञान, मनोविज्ञान आदि विषयों का ज्ञान भी कराया जावेगा। गांधीजी ने इस बात पर जोर दिया था कि पढ़ाई की योजना

ऐसी हो कि प्रत्येक मद्रसा अपने खर्चे को स्वयं निकाल ले और उसे वनकी सहायता के लिये किसी दूसरे पर निर्भर न रहना पड़े।

इस योजना का देश तथा विदेश में बड़ा स्वागत हुआ। प्रान्तीय सरकारों ने इसको अपनाता आरम्भ कर दिया। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने इस योजना को सन् १९३८ में ही मान लिया और प्रयाग में एक Basic Training College खोला जहाँ अध्यापकों को बुनियादी शिक्षा के बारे में ज्ञान कराया जाता है। उसी वर्ष प्राइमरी स्कूल के अध्यापकों को इस शिक्षा का ज्ञान कराने के लिये ट्रेनिंग का प्रबन्ध किया गया। सरकार ने उस वर्ष ५,००० प्राइमरी स्कूलों में बुनियादी शिक्षा आरम्भ की। सन् १९३९ के महायुद्ध के आरम्भ हो जाने पर कांग्रेस सरकारों ने अपने ओहदों से त्याग-पत्र दे दिये और प्रान्त में यह योजना भी समाप्त सी हो गई।

सार्जेन्ट योजना—ब्रिटिश सरकार ने युद्ध के समय में श्रीयुत सार्जेन्ट महोदय (जो कि कन्द्रीय सरकार के शिक्षा के सलाहकार थे) की अध्यक्षता में एक कमिटी बनाई जिसका काम भारतवर्ष के लिये शिक्षा सम्बन्धी एक योजना बनाना था जिसको युद्ध के बाद अपनाया जा सके। यह योजना सन् १९४४ के जनवरी माह में प्रकाशित हो गई। इस योजना की मुख्य बातें निम्नलिखित हैं :—

१. छैः वर्ष से १४ वर्ष के समस्त लड़के-लड़कियों को अनिवार्य तथा मुफ्त शिक्षा दी जाय।

२. इन बच्चों को शिक्षा बुनियादी शिक्षा के ढंग पर, जो कि

पहले बताई जा चुकी है, दी जानी चाहिये और इसके लिये बुनियादी स्कूल (Basic Schools) खोले जायँ ।

३. इनमें से कुछ बच्चे जो कि बुद्धिमान तथा होशियार दीख पड़ें उनको ऊँची शिक्षा देने का प्रबन्ध किया जाय ।

४. बुनियादी शिक्षा लगभग ५ करोड़ २० लाख बच्चों को दा जावेगा । कुल योजना पर जिसमें कालेज, युनीवर्सिटी, डाक्टरी, इंजीनियरिंग आदि सभी शिक्षायें आ जाती हैं २०० करोड़ रुपया व्यय होगा ।

इस योजना में सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि यह भी बुनियादी शिक्षा को ठीक मानती है तथा उसे देश के लिये हितकर समझती है । इस योजना के प्रकाशित हो जाने पर जब कांग्रेस सरकारें युद्ध के बाद पुनः प्रान्तों का कार्य-भार संभालने आईं तो उन्होंने बुनियादी शिक्षा को प्रान्तों में और भी अधिक व्यापक बनाना चाहा और इसके लिये प्रयत्न करने लगीं ।

संयुक्त प्रान्त की सरकार के कार्य—आपको बताया जा चुका है कि सन् १९३७-३८ में ही हमारे प्रान्त में ५,००० बुनियादी मदरसे खुल गये थे तथा उनमें बुनियादी शिक्षा दी जाने लगी थी । मास्टर्स को शिक्षा देने के लिये इलाहाबाद में एक ट्रेनिंग-कालेज खोला गया था तथा गाँवों के मास्टर्स की शिक्षा के लिये भी छैः महीने का एक पाठ्यक्रम बनाया गया था ।

इस समय प्रान्त में ६ वर्ष से ११ वर्ष के बच्चों के लिये अनिवार्य तथा मुफ्त बुनियादी शिक्षा देने की योजना को कार्यान्वित किया जा सकता रहा है । इस उम्र के लगभग ७० लाख बच्चों में से इस समय कुल १,३१९,३२७ बच्चे १९,२०५ प्राइमरी मदरसों में शिक्षा पा रहे हैं । इस शिक्षा को

अधिक व्यापक बनाने के लिये सरकार ने प्रान्त के बारह जिलों को चुन लिया है और वहाँ पर यह शिक्षा अनिवार्य तथा मुफ्त बना दी गई है। सरकार का कहना है कि तीन वर्ष के भीतर वह प्रान्त भर में ६ वर्ष से ११ वर्ष के सभी बच्चों के लिये यह शिक्षा अनिवार्य कर देगी। गाँवों की तरफ भी वह ध्यान दे रही है। हमें पूरा आशा है कि सरकार इस महान् कार्य में अवश्य ही सफल होगी।

ग्रामीण शिक्षा की समस्याएँ—हमारे देश में शिक्षा का बड़ा अभाव है। इस समय लगभग १४ से २५ प्रतिशत लड़के पढ़-लिखे हैं और केवल तीन प्रतिशत लड़कियाँ पढ़ी-लिखी हैं। पढ़े-लिखे में वह सब लोग आप जाते हैं जो अपना नाम तक लिख सकते हैं। जब यह तो हमारे देश भर की हालत है तो गाँवों में साक्षरता कितनी होगी यह आप स्वयं ही साच सकते हैं। सयुक्त प्रान्त में कुल १,१३९ मिडिल स्कूल तथा १९,२०५ प्राइमरी स्कूल हैं। इनमें १३-१३ लाख बच्चे पढ़ते हैं। इससे आप शिक्षा के अभाव का अनुमान लगा सकते हैं।

बाल-शिक्षा—बालकों में शिक्षा बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि अधिक प्राइमरी स्कूल खोले जायँ तथा वहाँ पर बालकों को मुफ्त शिक्षा दी जाय। पढ़ाई ऐसी होनी चाहिये कि बच्चों को उसमें आनन्द आये तथा वह शौक के साथ पढ़ने जाय। मास्टर की मार या बेंत से डर कर वह न पढ़ें, उनको स्वयं पढ़ने का चाव हो। इसके लिये यह आवश्यक है कि उन्हें कागज के फूल, पेड़, जानवर, पत्ती, खिलौने आदि बनाना सिखाया जाय। साथ में उनको खेती के बारे में भी बताना

चाहिये। मैजिक लैन्टर्न शो से वह अधिक सीख सकेंगे। उनको सुन्दर-सुन्दर गाने तथा कवितायें भी याद करानी चाहिये जिसमें अच्छी बातें बताई गईं हों। मदरसों में उनके खेल-कूद तथा खाने का भी ठीक प्रयत्न होना आवश्यक है। अध्यापकों को यह देखना चाहिये कि अक्षर ज्ञान के साथ साथ उनका अन्य ज्ञान भी बढ़े। तभी उनको अच्छी शिक्षा मिल सकती है।

मिडिल-स्कूल शिक्षा—मिडिल स्कूल में लड़के प्राइमरी दर्जा पास करके आते हैं। उनकी उम्र १२ वर्ष से १४ वर्ष तक के लगभग रहती है। मनुष्य के जीवन में यह उम्र काफी महत्वपूर्ण है क्योंकि इस समय वह बहुत सी बातें सीख सकता है और वह बातें उसके जीवन पर बहुत भारी असर डालेंगी। इस समय बच्चों को शारीरिक व्यायाम करना सिखाना चाहिये। उनका ध्यान पढ़ाई के साथ-साथ शरीर को स्वस्थ रखने की तरफ भी दिलाना चाहिये। उनको देश-प्रेम सिखाना चाहिये तथा श्रम के महत्व का पाठ पढ़ाना चाहिये। उनको बढ़ईगीरी, कृषि, बागवानी, जिल्दसाजी, कताई बुनाई, मधुमक्खी पालन, अचार बनाना, कपड़े के खिलौने बनाना आदि काम सिखाने चाहिये जिससे वह घर पर खेल-खेल में कुछ पैसा पैदा भी कर सकें। हमारी प्रान्तीय सरकार मिडिल स्कूल तोड़ कर उन्हें बड़े-बुनियादी स्कूलों में (Senior Basic Schools) में परिणित कर रही है। यह योजना अत्यन्त अच्छी है। इन सब बातों के साथ-साथ उन्हें राष्ट्रभाषा का अच्छा ज्ञान, इतिहास, भूगोल, शारीरिक स्वास्थ्य, हिसाब आदि का ज्ञान भी कराना चाहिये। गाँवों में प्राइमरी तथा मिडिल दो ही तरह के मदरसे पाये जाते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि मिडिल स्कूल तक उन्हें सभी बातों का

थोड़ा-थोड़ा ज्ञान करा देना चाहिये जिससे वह स्वतन्त्र भारत के अच्छे नागरिक बन सके। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये उन्हें पंचायत-राज्य-कानून तथा नागरिक शास्त्र की भी शिक्षा देनी चाहिये।

प्रौढ़ शिक्षा—गल-शिक्षा के साथ-साथ हमारे गाँवों में प्रौढ़ शिक्षा का होना भी आवश्यक है। इनको पढ़ाने के लिये रात्रि में स्कूल चलाये जायें। वहाँ पर इन्हें अक्षरों का ज्ञान कराया जाय जिससे यह चिट्ठी पढ़-लिख सके तथा थोड़ा सा मामूली जोड़-बाकी निकाल सके। इतना पढ़ा देने पर यह स्वयं आगे पढ़ जावेंगे। परन्तु साथ में आवश्यकता इस बात की है कि इनको नये-नये बीजों, खेती के नये-नये औजारों का तथा कृषि के नये-नये तरीकों का ज्ञान कराया जाय। मैजिक लैन्टर्न शो से वह अच्छी तरह पढ़ सकेंगे। साथ ही इनको सहकारिता के सिद्धान्त, पंचायती राज्य कानून, नागरिक शास्त्र, स्वास्थ्य-विज्ञान आदि का भी ज्ञान कराया जाय। बड़े-बड़े लोगों की जीवनी इन्हें बतानी चाहिये तथा स्वदेश प्रेम के भजन तथा आल्हा इन्हें याद करानी चाहिये। हर्ष की बात है कि भारत-सरकार ने सन् १९४९-५० के वर्ष में प्रौढ़ शिक्षा के लिये प्रान्तों को १ करोड़ रुपया देना निश्चय किया है। संयुक्त प्रान्त को २० लाख रुपया भारत-सरकार से मिलेगा और इनना ही वह स्वयं भी व्यय करेगी।

स्त्री-शिक्षा—गावों में स्त्री तथा लड़कियों की शिक्षा का भी प्रबन्ध होना आवश्यक है। इनको थोड़ा-सा अक्षर ज्ञान करा देने के पश्चात् खाना बनाने, कपड़ा सीने, सटर बुनने, कुरू-

सिया का काम करने, चरखा चलाने, साग-सब्जी लगाने आदि की शिक्षा देनी चाहिये। घर की सफाई, अपनी सफाई तथा वच्चों की सफाई के बारे में भी इन्हें बनाना चाहिये। इनको शिक्षा देने का उद्देश्य इन्हें अच्छी ग्रहणो बनाना है। साथ-साथ इन्हें अच्छे भजन भी लिखाने चाहिये जिससे यह अश्लील गानों को न गाया करे।

अध्यापकों की समस्या—इस सब काम के लिये सरकार को कान्शी रूपया व्यय करना पड़ेगा। उनको नये-नये स्कूल तो खोलने ही पड़ेगे, साथ में बहुत से अध्यापकों को भी रखना पड़ेगा। परन्तु जो भी अध्यापक रखे जायें यह आवश्यक है कि वह उदार हों, सहनशील हों तथा ग्रामीण जनता से और ग्रामीण जीवन से प्रेम तथा सहायुभूति रखते हों। गाँवों में अधिक विद्वान् अध्यापकों की आवश्यकता नहीं, वहाँ जन-सेवकों की अधिक जरूरत है। इस काम में स्त्रियाँ अधिक सफल हो सकती हैं। हमारे देश की अनाथ तथा विधवाओं को यदि उचित शिक्षा देकर गाँव भेजा जाय तो सचमुच ही वह बहुत अच्छा काम कर दिखलावेंगी। कांग्रेस का भी यही मत है तथा माता कस्तूरबा-निधि और बेगम आजाद-निधि का कुछ भाग वह इसी काम में व्यय करना चाहती है।

पुस्तकालय—मदरसों के साथ ही एक पुस्तकालय तथा वाचनालय होना आवश्यक है। उसमें हिन्दी के दो दैनिक अखबार आया करे तथा कुछ पुस्तकें भी हों। पुस्तकें छोटी-छोटी सरल भाषा में तथा मोटे हल्कों में लिखी गई हों। वह या तो किसी बड़े व्यक्ति के जीवन-चरित्र पर या किसी धार्मिक विषय

पर या कृषि-सुधार-सम्बन्धी विषय पर लिखे गई हों। पुस्तकालय में दी यदि रेडियो हों तो और भी अच्छा है। उनसे ग्रामीण जनता अपने लाभ की बातें भी सुन सकेगी। रात्रि के समय 'ग्रौढ़ पढ़ें', रेडियो सुनें', सब मिलकर भजन गाथें और गाँव की भलाई के बारे में चर्चा करें'। जब ऐसा हो जावेगा, ग्राम्य जीवन स्वर्ग बन जायेगा।

सारांश

हमारे देश में शिक्षा का बड़ा अभाव है। कोई गाँव जाता यदि पढ़-लिख जाता है तो वह फिर गाँव में रहना पसन्द नहीं करता। गाँव के वातावरण से, वहाँ के रहन-सहन से वह घृणा करने लगता है। इसका कारण आज-कल की शिक्षा का गलत पाठ्यक्रम है। पाठ्यक्रम को बदलने की बड़ी आवश्यकता है।

इस उद्देश्य से महात्मा गांधी को संरक्षता में सन् १९३७ में कुछ विद्वानों ने मिलकर वार्धा योजना बनाई थी जिसका उद्देश्य बालकों को बुनियादी शिक्षा देना है। इस योजना की तीन मुख्य बातें हैं : (१) सात वर्ष से १४ वर्ष के प्रत्येक बालक को अनिवार्य रूप से तथा मुफ्त शिक्षा देना, (२) शिक्षा राष्ट्रभाषा में हो तथा (३) उसे क्रिया द्वारा बताया जाय। इसमें उत्पादक-कार्य सिखाने पर जोर दिया जाता है। इसी को बुनियादी शिक्षा (Basic Education) भी कहते हैं।

ब्रिटिश सरकार ने सार्जेन्ट महोदय की अध्यक्षता में एक कमिटी नियुक्त की थी जिसका उद्देश्य भारतवर्ष के लिए एक योजना बनाना था। इसने अपनी रिपोर्ट सन् १९४४ में भारत सरकार को दी। इस योजना में भी बुनियादी शिक्षा देना ठीक समझा गया है और उसी को अपनाने पर जोर दिया गया है।

अब सभी प्रान्तों ने बुनियादी शिक्षा देना आरम्भ कर दिया है। संयुक्त प्रान्त में भी एक वेसिक ट्रेनिंग कालेज प्रयाग में खुल गया है तथा सन् १९३८ तक ५,००० बुनियादी स्कूल खुल गये थे। अब यह शिक्षा १२ जिलों में अनिवार्य हो गई है। सरकार का विचार तीन वर्ष में पूरे प्रान्त में यह शिक्षा अनिवार्य तथा मुफ्त कर देने का है।

गाँवों में बालकों को शिक्षा देने के लिये यह आवश्यक है कि बहुत से प्राइमरी मदरसे खोले जायँ। पढ़ाई में बच्चों को कागज के झूल, पेड़, खिलौने आदि बनाने की शिक्षा देनी चाहिये तथा उनके खेल-कूद का भी प्रबन्ध करना चाहिये। उनको सुन्दर-सुन्दर गाने तथा कविताये भी याद करानी चाहिये।

मिडिल स्कूल में विद्यार्थियों को राष्ट्र भाषा तथा हिसाब का अच्छा ज्ञान कराने के साथ कृषि सुधार, बढईगीरी, कताई, बुनाई, जिल्दसाजी, मधुमक्खी पालन, अचार बनाने आदि की शिक्षा भी देना चाहिये। उनको स्वास्थ्य रक्षा तथा नागरिक शास्त्र का भी ज्ञान कराना चाहिये।

प्रौढ़ शिक्षा भी आवश्यक है। इसके लिये रात्रि-स्कूल खोले जाने चाहिये। वहाँ पर अक्षरों के ज्ञान के साथ-साथ उन्हें नये-नये वीजों, खेती के नए औजार तथा कृषि के नये-नये तरीकों से ज्ञान कराया जाना चाहिये। साथ ही उन्हें सहकारिता के सिद्धान्त, पंचायत राज्य कानून, नागरिक शास्त्र, स्वास्थ्य-विज्ञान आदि की शिक्षा देनी चाहिये।

स्त्रियों तथा लड़कियों को भी पढ़ाना आवश्यक है। उन्हें खाना बनाना, कपड़े सीना, सूटर बनाना, कुरुसिया का काम करना, चर्खा चलाना, आदि सिखाना चाहिये जिससे वह अच्छी गृहणी बन सकें।

अध्यापकों की समस्या काफी जटिल है। सरकार को चाहिये कि वह ऐसे अध्यापक नियुक्त करे जो उदार तथा सहनशील हो। उनको ग्रामीण जनता तथा ग्रामीण जीवन के प्रति सहानुभूति हो। स्त्रियाँ अच्छी अध्यापक हो सकती हैं।

गावों में पुस्तकालय भी होने चाहिये तथा वहीं पर रेडियो भी हों।

प्रश्न

१. हमारे देश के गाँवों में पढ़ाई की क्या दशा है ? उसको किस तरह सुधारा जा सकता है ?
२. 'शिक्षा को अच्छा बनाने के लिए पाठ्यक्रम का बदलना अत्यन्त आवश्यक है'। क्या आप इस विचार से सहमत हैं ? आप क्या नया पाठ्यक्रम चाहते हैं ?
३. वार्धा शिक्षा-योजना क्या है ? उसकी महत्वपूर्ण बातें बताइये।
४. बुनियादी-शिक्षा से आप क्या समझते हैं ? वह किस बात पर जोर डालती है ?
५. गाँव के प्राइमरी स्कूलों में क्या-क्या विषय पढ़ाने चाहिए ? क्या यह शिक्षा अनिवार्य कर दी जाय ?
६. प्रौढ़ों को तथा स्त्रियों को किस तरह शिक्षा दी जा सकती है ? लिखिए।
७. ग्रामीण शिक्षा में पुस्तकालय, वाचनालय, रेडियो तथा मैजिक-लेट्टेन्ट शो का क्या स्थान हो सकता है ? लिखिए।
८. हमको गाँवों में अधिक विद्वान् नहीं ग्राम-सेवक अध्यापक चाहिए। क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? यदि नहीं तो क्यों ?

अध्याय इक्कीस

मनोरंजन के साधन

मनुष्य के जीवन के लिये मनोरंजन उतना ही आवश्यक है जितना कि शरीर को जीवित रखने के लिये भोजन। कोई भी मनुष्य लगातार काम नहीं कर सकता। काम करते-रुकते उसका मस्तिष्क थक जाता है तथा उसका शरीर भी आराम करना चाहता है। उस समय शरीर के लिये लेटना या आराम करना आवश्यक होता है और मस्तिष्क के लिये मनोरंजन करना। मनोरंजन करने से या हँसने-बोलने से उसके मस्तिष्क को आराम मिलता है तथा मस्तिष्क अपनी खोई हुई शक्ति पुनः वापिस पा जाता है। इसके अतिरिक्त मनोरंजन से मनुष्य का नीरस जीवन सुखमय हो जाता है। वह अपनी फिक्र या काम को थोड़े समय के लिये भूल जाता है और जीवन का आनन्द लेने लगता है। खेल-कूद से शारीरिक बल बढ़ता है, कार्य करने की क्षमता बढ़ती है तथा रोग उससे दूर भागते हैं। मनोरंजन मनुष्य के लिये बहुत लाभ-प्रद है। परन्तु इसके यह अर्थ नहीं कि कोई अपना पूरा समय मनोरंजन में ही व्यतीत कर दे। अति की सभी बात बुरी होती है।

पुराने समय में हमारे गाँव के लोग खेल-कूद को स्वास्थ्य की दृष्टि से बड़ा महत्वपूर्ण समझते थे। गाँवों में तरह-तरह के खेल होते थे और सभी लोग उसमें भाग लेते थे। कुश्ती, घुड़दौड़, तलवार चलाना आदि उस समय गाँव-गाँव में प्रसिद्ध थे। परन्तु

गाँवों की अवनति के साथ र खेल-कूद भी समाप्त हो गये। आर्थिक दशा गिरावट जाने के कारण लोग मनोरंजन की तरफ और भी कम ध्यान देने लगे। दिन-रात यद् रोटी के चक्कर में पड़े रहते हैं और किसी दूसरी ओर उनका ध्यान ही नहीं रहता। गरीब किसान निराशावादी हो गये हैं और समझने लगे हैं कि उनका दशा तो संभव है कभी सुधर ही न सके। उनके जीवन को सुगम्य बनाने के लिये यह आवश्यक है कि उनका ध्यान प्रत्सीण मनोरंजनों की तरफ लगाया जाय। मनोरंजन के साधन रास्ते तथा अच्छे होने चाहिये जिससे उनमें कोई बुरी बात न पड़े जाय।

गाँवों के खेल—गाँव वालों को खेल-कूद के लिये प्रोत्साहित करना चाहिये। रस्ता-कसी, कबड्डी, हुंल-हुल डण्डा, गिल्ली डण्डा आदि ऐसे खेल हैं जिनको वह पहले से ही खेलते आये हैं और अब भी सुगमता से आयोजित किये जा सकते हैं। इनके आयोजन में कुछ व्यय भी नहीं पड़ेगा।

इनके अतिरिक्त फुटबाल तथा वालीबाल ऐसे आधुनिक खेल हैं जिनका प्रचार गाँव में अवश्य ही करना चाहिये। इन सब खेलों के लिये एक मैदान की आवश्यकता पड़ेगी जिसे गाँव के बाहर सुगमता से बनाया जा सकता है। जब खेल कट जाते हैं तब तो किसी भी खेल में यह खेल खेले जा सकते हैं। प्रत्येक गाँव की पंचायतों को यह चाहिये कि वह इन खेलों का आयोजन करे। इन पर होने वाला व्यय सरकार को देना चाहिये।

अखाड़ेवाजी—गाँव में अखाड़े भी खुलवाने चाहिये जहाँ पर लोग आकर कुत्नी लड़ें तथा दंड-दौटक लगावे।

कुरती लड़ना गाँव वालों को बहुत पसन्द है तथा इस ही तरफ उनकी रुचि अधिक है। इसलिये यदि गाँव में कोई भी व्यक्ति इस काम में आगे बढ़े तो कुरती लड़ने वालों की कमी न रहेगी। हमारी प्रान्तीय सरकार ने एक योजना बनाई है जिसके अनुसार नगर तथा गाँवों में कुछ व्यायामशालायें खुली हैं। इस योजना के अन्तर्गत प्रान्त भर के पहलवानों के कुरती के दङ्गा भी होते हैं जिनमें जीतने वालों को इनाम बाँटा जाता है। मन् १९४८ में होने वाला पहला दङ्गल इलाहाबाद में हुआ था और वह काफी सफल रहा।

इन्हीं अखाड़ों में कुरती के साथ-साथ गाँव वालों को लाठी चलाना, वनैटी फिराना, तलवार चलाना आदि भी सिखाया जा सकता है। यदि हमारी केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सरकारों की इच्छा हो तो उन्हें बन्दूक तथा राइफल की भी शिक्षा दी जा सकती है। विदेशों में गाँव-गाँव में राइफल चलाने का ज्ञान लोगों को कराया जाता है। और यदि अभी नहीं तो वह दिन दूर नहीं जबकि हमारे गाँव में यह शिक्षा सभी को मिल सकेगी।

स्काउट टूप तथा प्रांतीय-रक्षक दल—गाँवों में बालचर (Scout) आन्दोलन का प्रचार जोरों पर होना चाहिये। यह आन्दोलन गाँव भर के नवयुवकों को इकट्ठा कर उनमें आत्म-भाव पैदा करता है तथा उनमें अनुशासन लाता है। इनको सफाई, दूसरों की भलाई, आग बुझाना, मज्जमपट्टी करना आदि का ज्ञान भी दिया जाता है। गाँवों में जहाँ डाक्टरों की कमी है तथा अन्य सुविधाओं का अभाव है, बालचर अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकेंगे।

हमारी प्रान्तीय सरकार ने प्रान्तीय रक्षक दल की एक योजना निकाली है जिसमें लोगों को थोड़ी सी फौज की शिक्षा दी जाती है जिससे आवश्यकता के समय वह प्रान्त की रक्षा कर सके। शिक्षा लेने वालों को कुछ भत्ता भी मिलता है। गाँव के लोग भी इसमें भर्ती हो सकते हैं। यह योजना काफी अच्छी है। सरकार को चाहिये कि इसे अधिक व्यापक बनाने के लिये गाँवों में केन्द्र खोले और वहाँ पर गाँव वालों को भर्ती करे इससे देश का हित भी होगा और गाँव वालों का भी मनोरंजन होगा।

ग्रामीण भजन मंडलियाँ—गाँवों के लोग भजन तथा आल्हा अधिक पसंद करते हैं। जब कभी गाँव में आल्हा होती है तो दूर-दूर से लोग उसे सुनने आते हैं। आल्हायें बड़ी शिक्षा देने वाली होती हैं तथा लोगों में वीरता का प्रचार करती हैं। इनके अतिरिक्त मल्हारों भी गाई जाते हैं। ग्रामीण स्त्रियाँ सावन के महीने में भूले के गीत गाती हैं तथा प्रत्येक अच्छे अवसरों के लिये भी उनके अलग-अलग गाने तथा भजन होते हैं। सरकार को चाहिये कि गाँवों में गाये जाने वाले गानों में उचित सुधार करावे। अच्छे अच्छे गानों का संग्रह कराकर अश्लील गानों में सुधार करादे। साथ ही भजन मंडलियों का पुनर्संगठन किया जाना आवश्यक है। यह ऐसे गीत गाया करें जिसमें धार्मिक सभ्यता फैले तथा गाँवों के लोग शान्ति पूर्वक जीवन व्यतीत करें।

नोटकी तथा ड्रामा—गाँवों में नोटकी तथा ड्रामा होते हैं परन्तु बहुत ही कम। नोटकी प्रायः अश्लील बातों का ही प्रदर्शन करती है इसलिये उसमें भले आदमी नहीं जाते यथा लड़क भी

डरते-डरते ही जाते हैं। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि इनमें आवश्यक सुधार किया जाय। गाँव के स्कूलों के अध्यापकों को तथा गाँव के पंचों को मिलकर कुछ अच्छे-अच्छे नोटों के खेल बनाने चाहिये जिसमें रामचन्द्र जी, कृष्ण जी, महाराणा प्रताप, शिवाजी, महात्मा गांधी आदि के जीवन के कुछ भाग प्रस्तुत किये जायँ। इनको गाँव के स्कूली बच्चे तथा अन्य होशियार लोगों की सहायता से खेलना चाहिये। गाँवों में यह मनोरंजन तो प्रदान करेंगे ही साथ में उचित शिक्षा भी देंगे।

रेडियो—रेडियो विज्ञान की एक अद्भुत देन है। इसके द्वारा सभार भर के सभी देशों के समाचार सुने जा सकते हैं। हमारे देश में प्रत्येक रेडियो स्टेशन से १५ से ३० मिनट का एक प्रोग्राम प्रति दिन ग्रामीण जनता के लिये सुनाया जाता है। यह प्रोग्राम प्रान्तों की भिन्न २ भाषाओं में होता है। प्रत्येक प्रान्त की सरकार ने कुछ गाँवों में रेडियो बाँट दिये हैं। जहाँ पर भी रेडियो हैं गाँव भर के लोग एरे प्रोग्राम को बड़े चाव से सुनते हैं। प्रोग्राम में गाँव की बातें, किसानों की भलाई की बातें, नवीन समाचार, भजन, फिल्मी गाने, आल्हा, ड्रामा तथा विद्वानों के महत्वपूर्ण समस्याओं पर भाषण होते हैं। प्रोग्राम काफी रोचक होता है तथा उसे और भी रोचक बनाने का प्रयत्न किया जा रहा है। परन्तु सबसे पहले आवश्यकता यह है कि गाँवों के लोगों के पास रेडियो सैट अधिक मात्रा में हों। यह तभी संभव हो सकता जब या तो पंचायतें चन्दे के रुपये से उन्हें खरीदें या सरकार उन्हें मुफ्त बाँटे। हमारे देश में सस्ते रेडियो सैटों की अत्यन्त आवश्यकता

कना है। तभी उनका प्रयोग अधिक व्यापक हो सकेगा। और जब गाँवों में रेडियो बढ़ जावे तो सरकार को यह चाहिये कि ग्रामीण प्रोग्राम का समय बढ़ा दे या किसी एक मीटर पर २-३ घण्टे तक के लिये ग्रामीण जनता के लिये उपयोगी प्रोग्राम होता रहे।

मैजिक लैंटर्न शो—मनोरंजन का एक और उपयोगी साधन मैजिक लैंटर्न शो है। मैजिक लैंटर्न द्वारा ग्रामीण जनता को कपड़े पर चित्र दिखाये जा सकते हैं और उन चित्रों को समझाया जा सकता है। खेती के नये-नये तरीकों को बताने, गाँवों में सफाई रखने, स्वास्थ्य के विषय में जानकारी बढ़ाने आदि कामों में यह अधिक उपयोगी सिद्ध हो सकते हैं। साथ ही नशीली वस्तुओं के रोकने के बारे में भी इनके द्वारा अच्छी तस्वीरें दिखाई जा सकती हैं। पश्चात्य देशों की सरकारों ने अपने नियंत्रण में काफी समझ-बूझ कर अच्छी-अच्छी फिल्में तैयार कराई हैं। वह फिल्में जनता को काफी उपयोगी बातें बताती हैं। शिक्षा-प्रसार, कृषि-सुधार, पशु-पालन, उद्योग-धन्धे, शारीरिक रक्षा तथा व्यायाम आदि सभी विषयों का ज्ञान उनसे हो जाता है। हमारी सरकार को भी इस तरह ध्यान देना चाहिये। ग्रामीण जनता के लिये उपयोगी विषयों पर फिल्म बनवा कर उन्हें गाँव-गाँव में दिखवाना चाहिये। ग्रामीण जनता को सिनेमा देखने को नहीं मिलते। इसलिये वह इसे अत्रय पसन्द करेंगे और इससे उनका ज्ञान भी बढ़ेगा।

वाचनालय तथा पुस्तकालय—गाँवों में लोगों को समा-

चार नहीं मिलते । उनसे जो भी जो कुछ कह देता है उन पर वह विश्वास कर लेते हैं । सरकार को चाहिये कि गाँव-गाँव में वाचनालय तथा पुस्तकालय खोले । प्रत्येक स्कूल के साथ ही एक कमरे में वाचनालय भी हो जहाँ गाँव भर के लोग समाचार-पत्र पढ़ सके । उनमें ऐसी पुस्तकें रखी जायें जो सरल भाषा में उनको लाभ की बातें बता दिया करें । देश के बड़े-बड़े लोगों की जीवनी, धार्मिक महात्माओं के जीवन चरित्र तथा उपदेश, धार्मिक कथायें, अच्छे-अच्छे किस्से तथा कहानियाँ, ग्रामीण जीवन के बारे में नाटक, कृषि-सम्बन्धी बातें बताने वाली पुस्तकों का उनमें संग्रह हो । हमारे देश की प्रान्तीय सरकार ने भी कुछ गाँवों में वाचनालय खुलाये हैं तथा साथ में पुस्तकालय भी हैं । परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं । इस तरफ अधिक ध्यान देने की आवश्यकता है । चलते-फिरते वाचनालय भी खोले जा सकते हैं । यह एक दिन में कई गाँवों का दौरा कर सकते हैं और पुस्तकों को वाँट सकते हैं । इस तरह प्रत्येक गाँव में वाचनालय खोलने की आवश्यकता नहीं रहेगी और साथ ही गाँव वालों को पुस्तकें भी मिल जायेंगी ।

सभायें तथा व्याख्यान - गाँवों में सभाओं तथा व्याख्यानों का भी आयोजन करना चाहिये । समय २ पर लोग आकर गाँव वालों को व्याख्यान दें, उन्हें बतावे कि विदेशों में क्या हो रहा है, उनके देश का क्या हाल है तथा उनको क्या करना चाहिये ? इस दिशा में हमारे देश की काँग्रेस पार्टी ने स्वतन्त्रता के पहले काफी अच्छा काम किया था । महात्मा गांधी, जवाहरलाल नेहरू तथा पटेल आदि

नेताओं की वाणी गाँव २ में इन्हीं सभाओं द्वारा फैलती थी। अब भी इस बात की आवश्यकता है कि सभाओं का होना बंद न किया जाय। जनसेवकों को चाहिये कि ग्रामीण जनता को ठीक रास्ते पर चलाने के लिये उन्हें सभाओं द्वारा यह बताया रहे कि देश के नेता उनसे क्या चाहते हैं तथा उन्हें क्या करना चाहिये।

अन्य काम—इन सबके अतिरिक्त गाँवों में किसानों को बाग तथा फलों के पेड़ लगाने चाहिये। घरों के आँगन में वह तरकारियाँ बोये जिससे वह कुछ समय बच्चों के साथ वहाँ काम कर सकें और अपना मनोविनोद भी करते रहें। मेले तथा उत्सवों का भी आयोजन समय समय पर करना चाहिये। इनसे उनका मनोरंजन अच्छा होता है।

मनोरंजन से लाभ

मनोरंजन से अनेक लाभ हैं। इससे आदमियों का स्वास्थ्य ठीक रहता है तथा उन्हें बीमारियाँ नहीं होने पाती। उनका मानसिक विकास भी ठीक रहना है तथा थका हुआ मस्तिष्क अपनी खोई हुई शक्ति पुनः पा जाता है। इससे आदर्शी पेंकार समय नष्ट नहीं करता और उसका सदुपयोग करता है। इससे मनुष्यों में भाई चारे का भाव फैलता है तथा उनमें अनुशासन आ जाता है। देश सेवा का भी भाव जाग्रत हो जाता है तथा आपस के झगड़े कम हो जाते हैं। इसलिये इनका जीवन में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है।

सारांश

मनुष्य हमेशा काम नहीं कर सकता। उसके लिये मनोरंजन भी

उतना ही आवश्यक है जितना कि खाने के लिये अन्न । पुराने समय में गाँव के लोग मनोरंजन को तरफ काफ़ी ध्यान देते थे । परन्तु उनकी आर्थिक दशा खराब हो जाने से वह अब दिन-रात रोटी के चारे में ही सोचते रहते हैं । यह आवश्यक है कि गाँवों में मनोरंजन के साधन बढ़ये जायें ।

गाँवों में तरह-तरह के खेलों का आयोजन करना चाहिये । कबड्डी, रस्सा-क़सी, हुल-हुल डंडा, गिल्ली डण्डा आदि खेल तो गाँव वाले पहले से ही खेलते आये हैं । उनको केवल सगठित करने की आवश्यकता है । साथ में फ़ुटबाल, वालीबाल आदि खेल भी खेले जा सकते हैं ।

गाँवों में अखाड़े भी खुदवाने चाहिये । कुश्ती लड़ने से शरीर हूट-पुष्ट रहता है । प्रान्तीय सरकार ने एक योजना बनाई है जिसके अनुसार उन्होंने गाँवों में व्यायामशालाएँ खोलने का प्रबन्ध किया है । इस योजना को अधिक व्यापक बनाने की आवश्यकता है । इन्हीं अखाड़ों में कुश्ती के साथ-साथ लाठी चलाना, बनेटी फिराना, तलवार चलाना, राइफल चलाना आदि भी सिखाया जाना चाहिये ।

गाँवों में बालचर (Scout) आन्दोलन का प्रचार जोरों से होना चाहिये । हमारी प्रान्तीय सरकार ने प्रान्तीय-रत्नक-दल की भी एक योजना निकाली है जिसमें नवयुवकों को फौजी शिक्षा दी जाती है । यह योजना गाँवों में अधिक फैलानी चाहिये ।

गाँव के लोग भजन तथा आल्हा अधिक पसन्द करते हैं । यह उचित शिक्षा देने वाली होती है । ग्रामीण स्त्रियाँ भी सावन के महीने में गाने गाती हैं । विभिन्न अवसरों के लिये भी उनके अलग-अलग गाने हैं । बहुधा यह गाने अश्लील होते हैं । सरकार को चाहिये

कि अच्छे-अच्छे गानों का एक संग्रह निकाल कर भजन मंडलियों द्वारा उनका प्रचार करावे।

नोटोंकी तथा ड्रामा भी गाँवों में खेलने चाहिये। इसमें ग्रामीण स्कूल अधिक उपयोगी हो सकते हैं। परन्तु यह ध्यान रखना चाहिये कि इनमें अश्लीलता न आ जाय और यह किसी महात्मा के जीवन-चरित्र का ही चित्रण करें।

रेडियो का भी प्रचार गाँवों में बढ़ाना चाहिये। आज-कल प्रत्येक रेडियो स्टेशन से ग्रामीण जनता के लिये ३० मिनट का एक प्रोग्राम सुनाया जाता है। जब रेडियो बढ़ जाय तो इस प्रोग्राम का समय भी बढ़ा देना चाहिये।

गाँवों में मैजिक लैन्टर्न से तरह-तरह की उपयोगी फिल्में दिखानी चाहिये। इससे ज्ञान का प्रचार बढ़ता है। विदेशों में इसका प्रचार अधिक है। हमारी सरकार को भी इसकी तरफ ध्यान देना चाहिये।

गाँवों में वाचनालय तथा पुस्तकालय भी खोलने चाहिये। जहाँ तक संभव हो प्रत्येक गाँव में एक वाचनालय हो। घूमते-फिरते वाचनालय भी खोलने चाहिये जिससे वह एक दिन में कई गाँवों का दौरा कर सके। उनमें ग्रामीण जीवन के लिये उपयोगी पुस्तकों का संग्रह होना चाहिये।

सभाओं तथा व्याख्यानो का आयोजन भी समय-समय पर करना चाहिये जिससे गाँव वाले देश-विदेश की बातें जान जायँ। घरों में फूल तथा तरकारी बोनो का प्रवन्ध करना चाहिये जिससे घर सुन्दर बन सके। मूले तथा उत्सवों का भी आयोजन करना चाहिये।

मनोरंजन से अनेक लाभ हैं। इससे स्वास्थ्य ठीक रहता है, भाई-चारे का भाव बढ़ता है, जीवन में अनुशासन बढ़ जाता है तथा लड़ाई-फगड़े कम होते हैं।

प्रश्न

१. गाँवों में मनोरंजन की क्या दशा है ? मनोरंजन के साधनों को किस प्रकार बढ़ाया जा सकता है ?
२. अखाड़े खुदवाने से क्या-क्या लाभ होंगे ? क्या इनकी उन्नति के लिये प्रान्तीय-सरकार को कुछ करना चाहिये ?
३. रेडियो, भजन मंडलियाँ तथा नोटंकियों का मनोरंजन में क्या स्थान है ? इनको गाँवों में किस तरह बढ़ाया जा सकता है ? इनमें क्या-क्या सुधार होने आवश्यक हैं ?
४. भजन, आल्हा, मल्हार तथा गीतों में किस तरह के सुधारों की आवश्यकता है ? सुधार से क्या लाभ होगा ?
५. गाँवों में कौन-कौनसे खेलों का आयोजन किया जा सकता है ? क्या कुछ नये खेल भी खेले जा सकते हैं ?
६. मनोरंजन की क्या आवश्यकता है ? इनसे क्या लाभ हैं ?

अध्याय बाईस

व्यक्तिगत स्वास्थ्य तथा उसके सिद्धान्त

यह जीवन मनुष्य की सबसे बड़ी निधि है। इसको कायम रखना उसका परम कर्तव्य है। रोगी या बीमार पुरुष संसार में कुछ नहीं कर सकता। उसका जीवन उसके लिये भार स्वरूप हो जाता है और घर वालों के लिये भी वह एक दुःख का कारण हो जाता है। अपने शरीर को दृष्ट पुष्ट रखना मनुष्य के लिए बड़ा आसान काम है। यदि वह नित्य ही अपने शरीर की ठीक तरह से देखभाल करे तो उसका जीवन सुखमय रहेगा और उसे कभी तकलीफ न होगी।

पौष्टिक भोजन

सबसे पहले मनुष्य के लिए यह आवश्यक है कि वह अच्छे तथा पौष्टिक भोजन करे। भोजन से ही मनुष्य को शक्ति मिलती है और वह अपना काम कर सकता है। जिस तरह इंजिन को चलाने के लिए उसमें कोयला डालना आवश्यक है उसी प्रकार मनुष्य के लिये भोजन भी जरूरी है। भोजन जितना ही अच्छा होगा उतनी ही अधिक शक्ति उसके द्वारा मनुष्य को मिलेगी। परन्तु अच्छे भोजन से यह अर्थ नहीं कि भोजन मसालेदार, चटपटा, या कीमती हो। हम आपको पिछले अध्याय में यह बता चुके हैं कि अच्छे भोजन में क्या-क्या खाना आवश्यक है। शरीर को शक्ति देने के लिए यह आवश्यक नहीं कि मांस या अण्डे का सेवन किया जाय। दूरा साग, ताजी फल,

घी, दूध, गाजर, टमाटर, सलाद, नीबू आदि का सेवन स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त लाभप्रद है। बासी, सड़ा हुआ, कड़ा अधिक मसालेदार तथा चटपटा भोजन स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकारक है।

व्यायाम तथा कसरत

परन्तु अच्छा भोजन खाने से ही मनुष्य का शरीर बलवान नहीं बन जावेगा। भोजन का पचाना भी अत्यन्त आवश्यक है। इसके लिए मनुष्य को व्यायाम तथा कसरत करना चाहिए। बिना व्यायाम किए मनुष्य के शरीर का पूर्ण रूप से विकास नहीं होता और उसके तौंद निकल आती है। व्यायाम के यह अर्थ नहीं कि अखाड़े में दूध बैठक लगाई जाय। खुली हवा में शरीर के विभिन्न हिस्सों को उचित ढंग से चलाने मात्र से ही आवश्यक कसरत हो जाती है। यों तो गाँव वाले खेतों पर काम करके आवश्यक शारीरिक परिश्रम कर लेते हैं। फिर भी उनके लिए यह आवश्यक है कि वह नियमित रूप से थोड़ा बहुत व्यायाम नित्य कर लिया कर।

व्यायाम में पेट का व्यायाम अत्यन्त आवश्यक है। मनुष्य को सब बीमारियाँ पेट से ही होती हैं। यदि मनुष्य को नित्य ही पाखाना साफ हो जाया करे तो उसको कोई बीमारी नहीं हो सकती। पेट की सबसे अच्छी कसरत यह है कि मनुष्य को पीठ के बल लेट जाना चाहिये, पैरों को मिलाकर सीधा रखना चाहिये, और हाथों को बगल के सहारे रखना चाहिये। फिर साँस चढ़ानी चाहिए और फिर पैरों को धीरे-धीरे ऊपर उठाना चाहिये और उठाकर सिर के पीछे जमीन पर लगाना चाहिये।

ऐसा करने से मनुष्य का पेट कभी खराब नहीं रह सकता। आँखों का व्यायाम भी आवश्यक है। आँखों की ज्योति कायम रखने के लिए मनुष्य को चाहिये कि वह प्रति दिन सूर्य निकलते समय उसकी ओर मुँह करके खड़ा हो जाय। फिर अपने दोनों हाथों की हथेलियों से आँखों को ढक ले। फिर आँखें हथेली के अन्दर ही खोल कर सूर्य की तरफ देखा हुआ दो-तीन मिनट तक खड़ा रहे। ऐसा करने से आँखों की ज्योति कम नहीं होती। इसके अतिरिक्त आँखों को नित्य त्रिफला से धोना चाहिए।

शारीरिक सफाई

स्वस्थ रहने के लिए यह आवश्यक है कि व्यायाम के साथ-साथ मनुष्य अपने शरीर की सफाई भी रखे। उसको नियमित रूप से अपने शरीर के सब हिस्सों से गदगी हटा देनी चाहिये। इसके लिये स्नान करना अत्यन्त आवश्यक है। स्नान करते समय शरीर को साबुन से या चने के आटे से रगड़ कर साफ कर देना चाहिये। नहाने के पश्चात् बदन को मोटे कपड़े से या रुएदार तौलिये से रगड़कर साफ कर देना चाहिये। गाँव वालों की यह आदत होती है कि वह नहाने के बाद शरीर को नहीं पोंछते। यह बहुत बुरी आदत है और इससे दाद, खाज और खुजली हो जाने का डर रहता है। नहाने का पानी साफ होना चाहिये और यदि गंदा हो तो उसे गर्म करके कपड़े में छान लेना चाहिये। जहाँ तक संभव हो ठण्डे पानी से ही नहाना चाहिये। नहाते समय दाँत, जीभ तथा नाक अच्छी तरह साफ करनी चाहिये। दाँतों में मज्जन करना या उन्हें नीम या बबूल की दाँतुन से साफ करना बहुत अच्छा है।

नहाने के बाद मनुष्य को साफ कपड़े पहनना चाहिये । चाहे कपड़े कम कीमती या मोटे क्यों न हों परन्तु वह साफ अवश्य होने चाहिये । कपड़ों को साबुन से हर रोज धोना आवश्यक है । साबुन न होने पर उनको रीठे से धोना चाहिये या वैसे ही पीट-पीट कर धो डालना चाहिये ।

मकानों की सफाई

शरीर को स्वस्थ रखने के लिये यह जरूरी है कि मनुष्यों के रहने के मकान साफ सुथरे हों । उनमें कहीं गंदगी न हो और हवा तथा रोशनी का समुचित प्रबन्ध हो । भोजन बनाते समय सब धुँआ बाहर निकल जाया करे जिससे कि वह घर की हवा को दूषित न करे । घर का गंदा पानी भी बाहर निकल जाना चाहिये और उसे घर के बाहर सोकेज पिट में जमा रखना चाहिये जिससे कि वह गाँव की आवहवा को दूषित न करे । घर के कूड़े को यत्र-तत्र न डालकर एक गड्ढे में डालना चाहिये तथा उसके ऊपर मिट्टी डाल देनी चाहिये । बच्चों को शौच तथा पेशाब जाने के लिये अलग स्थान देना चाहिये और उसे फिनाइल डालकर साफ रखना चाहिये ।

विश्राम

विश्राम भी स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यन्त आवश्यक है । यदि कोई दिन रात काम करता रहेगा तो उसका स्वास्थ्य अवश्य खराब हो जायगा । बच्चों के लिये दस घन्टे युवकों के लिये सात-आठ घन्टे तथा बूढ़ों के लिये आठ नौ घन्टे का विश्राम आवश्यक है । विश्राम का कमरा साफ सुथरा तथा हवादार होना चाहिये । ओढ़ने बिछाने के कपड़े भी साफ

होने चाहिये। उनको प्रतिदिन धूप में डालकर सुखा देना चाहिये जिससे उनमें बिमारियों के कीटाणु न रहने पायें।

रोग और उनसे बचने के उपाय

गाँवों में कई प्रकार के रोग प्रतिवर्ष फैलते हैं। वैसे तो रोग किसी भी समय हो सकते हैं फिर भी वह बरसात के महीनों में तथा ऐसे समय जब कि ऋतु परिवर्तन होता है अधिक फैलते हैं। ऋतु परिवर्तन के समय जुकाम, खाँसी, बुखार आदि बीमारियाँ प्रायः हो जाती हैं। इनसे बचने के लिये गाँव वालों को चाहिये कि वह ऐसे समय में अपने शरीर को ठण्ड से बचावें। इन सब रोगों से बचने के लिये डाक्टर लोग इजाजत भी देते हैं जिनको लगवाया जा सकता है। दाढ़ खाज खुजली आदि हो जाने पर मनुष्य को बड़ी सावधानी से काम लेना चाहिये। यह छून की बीमारियाँ हैं और छूने तथा उड़ने से फैलती हैं। इन बीमारियों से प्रसित हो जाने पर रोगी को घर के लोगों से नहीं मिलना चाहिये, अपने कपड़ों को अलग रखना चाहिये तथा उन्हें नित्य गर्म पानी में धोकर धूप में सुखाना चाहिए। गाँव वाले इन बीमारियों को साधारण सम्भ्रम कर इन्हें दूर करने का प्रयत्न नहीं करते। यह उनकी बड़ी भूल है। छूत की बीमारियों का इलाज शीघ्र से शीघ्र करना आवश्यक है।

हैजा

हैजा बहुत भयानक रोग है। यह बड़े जोरों में फैलता है। कभी-कभी डेढ़ दो घण्टों के अन्दर ही रोगी मर जाता है। इस रोग के हो जाने पर रोगी को कै और दस्त आने

लगते हैं। पहले तो कै में भोजन ही बाहर आता है, फिर पानी के समान एक चीज निकलती है। दस्त तो माँड़ की तरह आते हैं। रोगी पर रोग का आक्रमण जितना ही भयानक होगा उतने ही अधिक कै और दस्त आवेंगे। रोगी का पेशाब बिल्कुल बन्द हो जाता है। उसकी पेशियों में ऐंठन होने लगती है और रोगी बड़ा परेशान दिखाई देता है।

हैजा के कीटाणु मक्खियों द्वारा और जल द्वारा एक रोगी से दूसरे रोगी के शरीर में पहुँचते हैं।

रोगी के कै और दस्त पर मक्खियाँ बैठ जाती हैं। रोग के कीटाणु मक्खी की टाँगों में लग जाते हैं। फिर मक्खियाँ उड़कर खाने-पीने की चीजों पर बैठती हैं। जब आदमी इन चीजों को खाता-पीता है तो कीटाणु उसके पेट में पहुँच जाते हैं। वहाँ जाते ही वह बढ़ने लगते हैं। एक से दो; दो से चार; चार से आठ; घन्टे भर में एक से लाख। मनुष्य का शरीर इन कीटाणुओं को कबूल नहीं करता। कै और दस्त के द्वारा बाहर फेकता रहता है, पर इससे ये कम नहीं होते।

रोगी के गंदे कपड़ों को लोग ले जाकर कुओं पर या तालाब में धोते हैं। ऐसा करने से रोग के कीटाणु कुयें या तालाब के जल में पहुँच जाते हैं। जब आदमी इस जल को पीता है तो उसके शरीर में रोग के कीटाणु पहुँच जाते हैं और वह बीमार पड़ जाता है।

हैजा चाहे कितना ही जोर से फैला हो कुछ छोटे-मोटे उपाय हैं जिन्हें काम में लाने से आसानी से हैजा से बचा जा सकता है। हैजा के दिनों में डाक्टर लोग सुइयाँ लगाते फिरते हैं। हैजे का नाम सुनते ही टीका ले लेना चाहिए।

जब हैजा फैला हो तो बाजार की मिठाई या चाट न खाना चाहिये । साग सब्जी और फलों को पोटाश के पानी में धोकर प्रयोग करना चाहिए ।

कुएँ का जल हैजे के दिनों में उवाल कर पीना चाहिए । गरम पानी में हैजे के कीड़े मर जाते हैं ।

हैजे के कीटाणु खट्टी चीजों से मर जाते हैं । हैजे के दिनों में नीबू, अचार, चटनी और प्याज खाना अच्छा है ।

जब घर में मरीज हो तो छुआछूत का डर अधिक होता है । उसके खाने-पीने के बर्तन बिलकुल अलग रखे जाने चाहिये । जब वह कै-दस्त करे तो चट उस पर राख डाल कर अच्छी तरह सफाई कर देनी चाहिये ।

मलेरिया

मलेरिया मच्छरों से फैलता है । मलेरिया के भी कीटाणु होते हैं । जब किसी आदमी को मलेरिया होता है तो उसके खून में मलेरिया के कीटाणु फैले रहते हैं । मच्छर जब उसे काटता है तो उसका खून चूसता है । खून के साथ-साथ कुछ मलेरिया के कीटाणु भी उसके सुईनुमा दंश में आ जाते हैं । मच्छर जब यह दंश दूसरे आदमी के शरीर में चुभाता है तो उसके खून में मलेरिया के कीटाणु छोड़ आता है । कीटाणु बढ़ते हैं और आदमी को मलेरिया हो जाता है ।

मलेरिया के रोगी को डवर आने लगता है । जाड़ा देकर बुखार आता है और आगे चलकर उसका शरीर पीला पड़ जाता है तथा पेट में तिल्ली बढ़ आती है ।

मलेरिया से बचना है तो मच्छरों से बचना चाहिये । मच्छर

गन्दे पानी के गड्ढों में अण्डे देते हैं। ऐसे गड्ढों को भरवा देना चाहिये। अण्डे पानी में लटक रहेते हैं। पानी में मिट्टी का तेल छिड़क देने से उनके अण्डे डूब जाते हैं। सोते समय मच्छर अधिक काटते हैं। मच्छर के दिनों में मच्छरदानी लगा कर सोना चाहिये। शरीर पर तेल लगा लेने से भी मच्छर कम काटते हैं। मलेरिया हो जाने पर कुनैन खाना चाहिये। मलेरिया से चटपट मृत्यु तो नहीं हो जाती लेकिन जब रीग बढ़ जाता है तो बड़ा परेशान करता है। रोग की प्रारम्भिक स्थिति में ही किसी कुशल डाक्टर की सहायता लेनी चाहिये।

प्लेग

ताऊन बड़ा घातक रोग है। ताऊन होने पर रोगी को ज्वर आता है। बुखार इतना अधिक हो जाता है कि रोगी बहुधा बेहोश हो जाता है। उसकी आँखें भीतर को बैठ जाती हैं। चार-पाँच दिन बाद रोगी की गाँठों में गिल्टियाँ निकल आती हैं।

इस रोग का कारण एक कीटाणु है जो एक आदमी से दूसरे के शरीर में छूत द्वारा पहुँचता है। प्लेग असल में चूहों का रोग है। चूहे के शरीर पर बाल होते हैं। बालों में छिपा एक कीड़ा होता है जिसे पिस्सू कहते हैं। पिस्सू चूहे का खून पीकर रहता है। जब चूहे के खून में प्लेग के कीटाणु होते हैं और पिस्सू उसे काटता है तो पिस्सू के मुँह में प्लेग के कीटाणु भर आते हैं। चूहा जब मर जाता है तो पिस्सू किसी दूसरे चूहे की तलाश में चलता है। वह किसी चूहे को पा गया तब उसे काटता है। बस प्लेग के कीटाणु पिस्सू द्वारा चूहे में पहुँच जाते हैं और वह चूहा धीमार हो जाता है। पिस्सू को यदि कोई

आदमी मिल गया तो उसी के शरीर में लिपट जायेगा । आदमी को काटेगा तो प्लेग के कीटाणु उसके शरीर में घुस जायेंगे । कीटाणु बढ़ेंगे और वह आदमी धीमार पड़ जाता है ।

प्लेग से बचने के लिये चूहों को मारना चाहिये । घर के चूहों को चूहेदानी में पकड़कर उन्हें बाहर निकाल फेंकना चाहिए अथवा उन्हें दवा फी गोली से मार डालना चाहिये । स्वास्थ्य विभाग की ओर से एक दवा मिलती है जिसे आटे में मिलाकर गोली बनाते हैं । गोली को घर में जहाँ-तहाँ फेंक देते हैं चूहा खाता है और मर जाता है । स्वास्थ्य विभाग की ओर से प्लेग के दिनों में मकान में एक गैस छोड़ी जाती है जिससे चूहे मर जाते हैं । इस सुविधा से भी लाभ उठाना चाहिये ।

जब प्लेग का रोग फैल रहा हो तो टीका लेना चाहिये । टीका लेनेवाले को एक डेढ़ रोज तक बुखार आता है पर इतना बुखार बर्दाश्त कर लेना अच्छा है प्लेग का सामना करना अच्छा नहीं । पिस्तू अधिक ऊपर तक नहीं कूद सकते । हमें चाहिये कि प्लेग के दिनों चारपाइयों पर सोया करें और जूता और मोजा पहनकर चला करें ।

यक्ष्मा

यक्ष्मा को राजरोग कहा गया है । यह गरीबों की अपेक्षा धनिकों को अधिक होता है । इसका रोगी धीरे-धीरे मर जाता है । हज़ारों रुपये दवा-दारु में खर्च होते हैं । रोगी मर जाता है और रोग को छोड़ जाता है ।

यक्ष्मा का रोग प्रायः ५ वर्ष तकके बच्चों को नहीं होता ।

१० वर्ष से २० वर्ष की अवस्था के लड़कों को अधिक पकड़ता है। फिर बुढ़ाई में भी यह रोग प्रायः नहीं पकड़ता। यक्ष्मा कई प्रकार का होता है जैसे फेफड़ों का, आंतों का, उदर का और हड्डियों का आदि।

खाँसी और दुर्बलता इस रोग के लक्षण हैं। रोगी को प्रायः प्रति दिन ज्वर हो जाया करता है। रोगी उदास पड़ा रहता है और उसमें फुर्ती नहीं रहती।

आँतों की यक्ष्मा होने पर रोगी को कब्ज की शिकायत रहा करती है, पतले दस्त आते हैं, पेट में दर्द होता है, ज्वर आया करता है और शरीर दुर्बल होता जाता है।

यह रोग वास्तव में बड़ा पेचीदा रोग है। बड़े-बड़े डाक्टर इसे नहीं पहचान पाते। भीतर-भीतर रोग जब असाध्य हो जाता है तो दौड़-धूप शुरू होती है।

यह रोग भी कीटाणुओं के कारण होता है। यक्ष्मा के कीटाणु रोगी के मल, मूत्र, थूक या कै से निकलकर धूल के साथ हवा में उड़ते-फिरते हैं। अँधेरी और सीलनवाली जगह में बिना कुछ खाये-पिये साल-छह महीने तक जीवित रहते हैं। यक्ष्मा के कीटाणु थोड़े बहुत हर स्थान पर उड़ते-फिरते हैं

अपने स्वास्थ्य को ठीक रखना इस रोग से बचने का सर्वोत्तम उपाय है। हमें कोई भी छोटा-मोटा रोग हो जाय उसका उचित उपचार शीघ्र कर लें। अँधेरी और गन्दी जगह में रहना, शहरों में रहना' श्वास के द्वारा धूल मिश्रित वायु लेना परदा करना यह सब छोड़ देना चाहिये। शुद्ध वायु में टहलना और व्यायाम करना इस रोग से बचने का अच्छा

उपाय है। जो लड़के मेज पर झुककर पढ़ते लिखते हैं अथवा झुककर चलते हैं वे अच्छी तरह श्वास नहीं ले पाते। उनके फेफड़े को पूरी हवा नहीं मिल पाती, इसलिये उनकी शक्ति क्षीण हो जाती है। झुककर बैठना झुककर चलना अथवा झुककर पढ़ना लिखना यक्ष्मा को निमन्त्रण देना है। भोजन सात्विक और पौष्टिक होना चाहिये।

रोगी की सेवा-सुश्रूषा बड़ी होशियारी से करनी चाहिये। उसके खाने-पीने के बर्तन किसी दूसरे के काम न आवे। उसके कमरे में कोई दूसरा आदमी न रहे और न सोवे। बच्चों को तो रोगी के पास जाने ही न देना चाहिये। रोगी के मल मूत्र तथा थूक को बर्तनों में बन्द करके रखना चाहिये और समय समय पर मिट्टी में गड्ढा खोंद कर गाड़ते रहना चाहिये।

रोग का थोडा-सा सन्देह हो जाने पर भी किसी विशेषज्ञ से जांच करानी चाहिये और डाक्टर के बताये हुये नियमों पर चलना चाहिये। यक्ष्मा का इलाज करने के लिये जहाँ-तहाँ सरकारी अस्पताल खुले हैं। भारत में ठण्डे स्थानों में दो चार सेनिटोरियम बने हैं जहाँ रोगी की विशेष चिकित्सा होती है। रोग बढ़ जाने पर सेनिटोरियम में ही उसकी चिकित्सा हो सकती है।

चेचक

चेचक छूत की बीमारी है। हजारों आदमी हर साल इस बीमारी से हमारे सूबे में मरते हैं। चेचक निकलने के पहले रोगी को ज्वर आता है। ज्वर बढ़ते-बढ़ते १०३ १०४ डिग्री तक हो जाता है। सिर दर्द करता है, कै आती है और पीठ में पीड़ा

होने लगती है। तीन चार दिन के बाद चेचक के दाने निकल आते हैं। दाने पहले मुँह पर निकलते हैं, फिर बीमारी की गम्भीरता के अनुरूप शरीर के अन्य भागों में निकल आते हैं। दाना निकलने के चार-पाँच दिन बाद उनमें एक प्रकार का पानो सा भर जाता है। दाने उठे रहते हैं और सफेद रंग के दिखाई देते हैं। आठ-दस दिन बाद इन दानों में पीव पड़ जाती है। दाने उभरे हुवे दीखते हैं। ज्वर आता रहता है। दो-चार दिन और बाद दाने सूखने लगते हैं और खुरखे गिरने लगती हैं।

इस रोग के कीटाणु एक मनुष्य के शरीर से दूसरे के शरीर तक छूत से और वायु द्वारा जाते हैं। रोगी जब अच्छा होने लगता है, अर्थात् उसके शरीर में खुरखे निकलने लगते हैं, तब तो चेचक के कीटाणु बड़ी संख्या में आक्रमण करते हैं।

चेचक से बचने के लिए एक मात्र उपाय है चेचक का टीका लेना। हर बच्चे को ६ महीने की अवस्था तक एक बार टीका अवश्य लगा देना चाहिए। एक बार टीका लगाने का असर प्रायः ७ वर्ष तक रहता है। हर सातवे-आठवे वर्ष चेचक का टीका लेते रहना चाहिए। टीका लेना हर आदमी के लिए इतना जरूरी समझा गया है कि यह कानूनी तौर पर अनिवार्य कर दिया गया है। जो आदमी अपने बच्चे को चेचक या टीका दिलाने से इन्कार करता है उस पर ५० तक जुर्माना हो सकता है।

रोगी को अलग रखना चाहिए। उसकी सुश्रूषा के लिये जो रहे उसे स्वयं टीका लगवा लेना चाहिए। रोगी के कपड़ों अथवा उसकी दूसरी चीजों को किसी को प्रयोग नहीं करना

चाहिए। बीमारी से अच्छे होने पर रोगी के कपड़े जला देने चाहिए।

रोग हो जाने बाद कोई ऐसी अच्छी औषधि चेचक के रोगी के लिए नहीं तैयार हुई जिससे उसकी रक्षा हो सके। ऐसी स्थिति में रोगी को संयम का ही एक मात्र सहारा रह जाता है।

हुकवर्म

हुकवर्म की बीमारी युक्त प्रान्त, बिहार और बंगाल में बड़े जोरों में है। इस बीमारी के कीटाणु आध इंच लम्बे और धागे की तरह पतले होते हैं। यह कीटाणु रोगी की अँतड़ियों में रहता है और रोगी का खून चूसता है। रोगी का शरीर खून की कमी से पीला पड़ जाता है और वह बिल्कुल कमजोर हो जाता है।

ये कीटाणु भोजन द्वारा रोगी के मुँह में होते हुये उसकी अँतड़ियों में पहुँचते हैं। शरीर के चमड़े को छेदकर भी यह कीटाणु घुस सकते हैं और रक्त नलिकाओं का खून चूस सकते हैं। ये कीटाणु रोगी के शरीर में अण्डे देते हैं और बढ़ते रहते हैं। रोगी के मल द्वारा जो अण्डे या कीटाणु बाहर आते हैं वे ही दूसरों के शरीर में प्रवेश पाकर उन्हें रोगी बनाते हैं।

रोगी को जहाँ-तहाँ मल छोड़ने न देना चाहिये। वह जिस पाखाने में मल गिरावे उसे दूसरे न इस्तेमाल करे। रोग का पता चल जाने पर डाक्टर की सहायता लेनी चाहिए। यदि

रोग बहुत नहीं बढ़ गया है तो डाक्टर के उपचार द्वारा रोगी बच सकता है।

कोढ़

कोढ़ बड़ा गंदा रोग है। रोगी का सारा शरीर भद्दा दिखाई देने लगता है। हाथ-पैरों की अंगुलियाँ गलने लगती हैं। कुछ रोगी ऐसे होते हैं जिनका चेहरा काला हो जाता है और मोटा पड़ जाता है। भौं के बाल गिर पड़ते हैं। जहाँ-तहाँ गाँठें पड़ जाती हैं।

यह रोग भी कीटाणुओं से होता है। कोढ़ के कीटाणु सीधे एक से दूसरे आदमी तक जाते हैं और सभवतः खटमल, जूँ आदि के काटने से भी एकर मनुष्य से दूसरे के शरीर में जाते हैं।

कोढ़ी को अलग रखना चाहिये अन्यथा वीमारी के फैलाने का डर है। सरकार द्वारा जहाँ तहाँ कोढ़ियों के रहने के लिये अलग स्थान बने हैं। वहाँ सैकड़ों कोढ़ी रहते हैं। उन्हें भोजन, वस्त्र और औषधि दी जाती है। यदि रोगी को ऐसे स्थान पर न भेजा जाय तो कम से कम उसे एक कमरे में अलग रखना चाहिये। उसके सपर्क में सुश्रूण करने वाले के अतिरिक्त कोई दूसरा न आवे। बच्चों को तो रोगी से दूर ही रखना चाहिये।

कोढ़ विकट रोग है। पकड़ लेने पर शायद ही कभी छोड़ता है। अभी कोढ़ के लिये कोई अच्छूक दवा नहीं बनी। हाँ, ऐसी दवाये हैं जो रोग को बढ़ने से रोक लेती हैं।

गावों में अस्पताल

गाँव के लोग रोगों के इलाज के लिये प्रायः उन वैद्यों का

सहारा लेते हैं जिनको दवा के मामले में अधिक जानकारी नहीं होती। इसमें गरीब किसानों का कोई दोष नहीं। डाक्टरों की कमी तथा अपनी गरीबी के कारण वह शहर के डाक्टरों के पास नहीं जा सकते। गाँवों में अस्पतालों की बहुत कमी है। इस समय संयुक्तप्रान्त भर में कुल ४०० अस्पतालों गाँवों में हैं। सरकार को चाहिये कि गाँवों में अस्पताल का उचित प्रबन्ध करे। यदि वह चलते-फिरते अस्पताल कायम कर दे जिससे कि एक मोटर के अन्दर डाक्टरी का सब सामान लिये डाक्टर तथा कम्पाउंडर गाँव २ घूम कर बीमारों का इलाज कर सके तो बहुत अच्छा होगा। मोटर द्वारा यह डाक्टर एक दिन में कई गाँवों का निरक्षण कर सकेंगे। इस तरह सरकार का खर्च भी कम होगा तथा प्रत्येक गाँव वाले को डाक्टरी इलाज की सुविधा भी प्राप्त हो जावेगी। साथ में सरकार को यह चाहिये कि वह गाँव के स्कूलों के अध्यापकों को होमोपैथी की शिक्षा दे जिससे कि वह छोटे-मोटे रोगों को दूर करने के लिये दवा दे सकें। ग्रामीण स्त्रियों की स्वास्थ्य रक्षा के लिये, विशेषतः जब कि उन्हें बच्चा होता है उस समय उनकी देख-भाल के लिये, होशियार दाइयों की नियुक्ति करे। तभी उनकी देख-भाल अच्छे ढंग पर हो सकती है। इस काम में प्रान्तीय सरकार जिला बोर्डों से तथा पंचायतों से मिल कर काम कर सकती है।

गाँव के लोग अंग्रेजी दवा का व्यवहार करने से डरते हैं। विशेषतः वह नश्वर लगवाने से तो बहुत ही घबड़ाते हैं। वह गाँव के हकीम-वैद्यों के पास जाना पसन्द करेंगे परन्तु डाक्टरों के पास नहीं। उनको यह आदत छोड़ देनी चाहिये। संक्रामक रोगों के लिये तो उन्हें उचित से उचित दवा करनी चाहिये

और टीका लेने से घबड़ाना नहीं चाहिये। यदि गाँव में कोई बीमारी फैल रही हो तो स्वास्थ्य-रक्षा के लिये यह आवश्यक है कि वह पहले से ही नशतर लगवा ले।

सारांश

मनुष्य को अपना स्वास्थ्य ठीक रखने के लिये यह आवश्यक है कि वह स्वच्छ तथा पौष्टिक भोजन करे। भोजन शक्तिवर्धक हो, ताजा हो तथा अच्छा हो। हरा साग, ताजा फल, दूध, घी, टमाटर, गाजर, सलादि आदि स्वास्थ्यवर्धक हैं।

अच्छे भोजन के साथ २ व्यायाम भी आवश्यक है। नियमित रूप से खुली हवा में उचित तरीके से शरीर के विभिन्न अङ्ग चलाने मात्र से ही आवश्यक व्यायाम हो जाता है। व्यायाम करते समय पेट तथा आँखों को निरोग रखने के लिये उचित ध्यान दे।

स्वस्थ रहने के लिये शरीर की सफाई भी आवश्यक है। इसके लिये उसे नित साफ ठण्डे पानी से मलमल कर नहाना चाहिये जिससे उसके शरीर की गन्दगी हट जाय। नहाने के बाद शरीर को मोटे कपड़े या रुएदार तौलिया से पोंछना आवश्यक है। नहाने के बाद मनुष्य को साफ कपड़े पहनने चाहिये।

घर की सफाई का भी स्वस्थ रहने में महत्वपूर्ण स्थान है। मकान साफ हो तथा उनमें गन्दगी नहीं होनी चाहिये। उनमें हवा तथा रोशनी का उचित प्रबन्ध होना चाहिये और घर का गन्दा पानी सोकेज पिट में घर के बाहर जमा रखना चाहिये। घर के कूड़े को बाहर डाल कर उसे मिट्टी से ढक देना चाहिये।

स्वास्थ्य की दृष्टि से विभ्राम की भी आवश्यकता है। सोने का

कमरा हवादार तथा साफ होना चाहिये तथा कपड़े भी गन्दे न हों ।
उनको धूप में डालकर सुखा लेने चाहिये ।

रोगों से बचने के लिये लोगों को टीका लगवा लेना चाहिये ।
यदि रोग छूत का हो तो घर के लोगों से नहीं मिलना चाहिये और
अपने कपड़ों को नित गर्म पानी में धोकर धूप में सुखा देने चाहिये ।
कुछ बीमारियाँ चूहों से फैलती हैं । इसलिये चूहों को पकड़ कर नष्ट
कर देना चाहिये ।

गाँव में डाक्टरों की कमी है । सरकार को इसके लिये चलते-
फिरते अस्पताल चलाने चाहिये जिससे गाँव वालों का उचित इलाज
हो सके । स्त्रियों की देखभाल के लिये पढ़ी-लिखी दाइयों को गाँवों
में रखना चाहिये ।

प्रश्न

१. अपनी सफाई रखने के लिये मनुष्य को क्या-क्या काम करने
चाहिये ? स्वास्थ्य-रक्षा से क्या लाभ है ?
२. स्वास्थ्य-रक्षा में नहाने का क्या स्थान है ? नहाते समय
किन-किन बातों का ध्यान रखना चाहिये ?
३. भोजन से ही मनुष्य को शक्ति मिलती है । क्या यह कथन
सत्य है ? भोजन किस तरह का होना चाहिये ?
४. स्वास्थ्य की दृष्टि से रहने के मकान किस तरह के होने चाहिये ?
उन्हें किस तरह साफ रखा जा सकता है ?
५. गाँव वालों को कौन-कौन सी बीमारियाँ हो जाती हैं ? उनको
किस तरह दूर किया जा सकता है ? गाँव वालों को क्या करना
चाहिये ?

अध्याय तेईस

गाय-बैलों की समस्या

भारतवर्ष की ग्रामीण जनता के लिये खेती की दृष्टि से पशु अत्यन्त महत्वपूर्ण है। गाय का वह दूध पीते हैं, उनके बच्चों के बैल बनाये जाते हैं जो कि खेत में हल चलाने, गाड़ी खींचने तथा सामान ले जाने के काम में आते हैं। गाय-बैलों का गोबर खाद या जलाने के काम में आता है। गोबर मिट्टी में मिलाकर लीपने के काम में भी आता है। अपनी उपयोगिता के कारण ही गाय का इतना महत्व है कि इसको माँ कह कर पुकारा जाता है।

हमारे देश में संसार भर से अधिक पशु पाये जाते हैं। संसार भर के एरु-चौथाई गाय-बैल तथा दो-तिहाई भैंसे यहीं पायी जाती हैं। हमारे देश भर में १६ करोड़ २० लाख गाय-बैल; ४३ करोड़ भैंस; ४ करोड़ ७० लाख भेंद्रे, ४ करोड़ ८० लाख बकरियाँ, २ करोड़ २० लाख घोड़े तथा २ करोड़ गधे हैं। यह आँकड़े सन् १९४० के हैं। तब से इनकी संख्या अवश्य ही बढ़ गई होगी। अनुमान है कि प्रति १०० एकड़ भूमि पर ७० के लगभग गाय-बैल पाये जाते हैं।

परन्तु इस संख्या से यह न समझना चाहिये कि हमारे किसानों को काफी दूध खाने को मिलता होगा तथा खेतों पर काम करने में भी उनको कठिनाई नहीं होती होगी। यदि पशुओं की दशा अच्छी होती तो वास्तव में हमारे किसानों का जीवन

बड़ा सुखमय होता। परन्तु दुर्भाग्य से हमारे देश के गाय बैलों की दशा बड़ी शोचनीय है। देखने में वह हड्डियों के ढाँचे-मात्र हैं। उनमें न फुर्ती है और न काम करने की शक्ति ही। थोड़ी सी ही देर में वह हाँपने लगते हैं तथा उनकी आखें बाहर को निकल आती हैं। वह काम भी बड़े धीरे-धीरे तथा काहिली से करते हैं। गायों की भी यही दशा है। इस कारण उनके दूध में न पुरानी जैसी ताकत है और न वह घी की मात्रा ही। देखने में भी वह पतली, नाटी तथा कमजोर होती हैं।

गाय-बैलों के कमजोर होने के कारण किसान उन्हें अधिक मात्रा में रखना चाहता है। मात्रा बढ़ने से उनकी देख-रेख ठीक नहीं होती और उनकी नस्ल बिगड़ जाती है। नस्ल बिगड़ जाने से बैल और भी कमजोर होते हैं और गाये और भी कम दूध देती हैं। इस तरह किसान ऐसे बुरे चक्कर में फँस गया है कि वह आसानी से निकल नहीं सकता। हमारे देश में औसतन नौ एकड़ भूमि को जोतने के लिये एक बैलों की जोड़ी रखी जाती है जबकि ईजिप्ट में केवल ३ बैलों से १०० एकड़ भूमि जोती जाती है। वहाँ मशीनों का प्रयोग नहीं किया जाता; फिर भी खेती की दशा भारतवर्ष से कहीं अच्छी है। पंजाब में खोज करके यह पता लगाया गया था कि एक बैलों की जोड़ी साल भर में केवल ११८ दिन काम करती है और बाकी दिन वह बेकार खड़ी रहती है। बैल गाड़ी या रथ खींचने वा भी काम करते हैं। यदि वह सब जोड़ लिया जाय तो यह कहा जा सकता है कि महीने में वह १७ दिन बेकार खड़े रहते हैं। यह तो पंजाब की बात है। जन स्थानों पर केवल एक फसल उगाई जाती है वहाँ तो साल में सात महीने बैल बेकार खड़े रहते हैं। यह

सुगमता से कहा जा सकता है कि हमारे देश में बैलों की संख्या आवश्यकता से दुगनी अधिक है।

खराब तथा दुर्बल गाय-बैलों को रखने के कारण किसानों को आर्थिक लाभ तो यहाँ-तहाँ रहा उल्टा नुकसान ही होता है। उनको खिलाना-पिलाना एक कठिन काम हो जाता है और उनके खिलाने पर किसान का जितना व्यय हो जाता है उतना लाभ उनके द्वारा नहीं होता। इसलिये यह आवश्यक है कि या तो इनकी संख्या कम कर दी जाय और या इनकी दशा में सुधार किया जाय। जब तक हमारे देश में किसानों के पास छोटे-छोटे खेत हैं उनको यह आवश्यक हो जाता है कि सभी किसान अलग-अलग गाय-बैल रखें। इसलिये उनकी संख्या कम कर देना उचित नहीं। परन्तु उनकी दशा में अवश्य ही सुधार करना चाहिये।

गाय-बैलों की दशा सुधारने के लिये तीन तरीकों का उपयोग किया जाना चाहिये (१) उनको अच्छा चारा देना (२) उनकी नस्ल में सुधार तथा (३) उनकी बीमारियाँ को दूर करना। इन्हीं तीनों तरीकों पर नीचे प्रकाश डाला जाता है।

अच्छा चारा

जानवरों को अच्छा चारा देने की समस्या अत्यन्त महत्वपूर्ण है। पहले तो हमारे देश में प्रत्येक गाँव के साथ चारागाह होते थे। चारागारों का रखना राजा का प्रधान कर्तव्य था। हिन्दूराजाओं और मुसलमान राजाओं के समय भी जंगलों के पास चारागाह होते थे जहाँ कोई भी जाकर गायें चरा सकता था। चारागाहों के कारण किसानों को चारे की कठिनाई नहीं होती थी। दिन भर उनके जानवर वहाँ चरा

करते थे। शाम को जब घर पर आते थे तो थोड़ा सा भुस उनको दे दिया जाता था और जानवरों का पेट भर जाता था। परन्तु अब चारागाह कहीं दिखवाई भी नहीं देते। आबादी बढ़ जाने के कारण सब चारागाह अब खेतों में परिणत हो गये हैं। जङ्गलों में भी जानवर चराये नहीं जा सकते क्योंकि सरकार ने इसकी मनाही कर दी है। परिणाम यह होता है कि जानवरों को खाने को पर्याप्त भोजन नहीं मिलता। यद्यपि जानवरों को चराने ले जाने की पुरानी प्रथा अब भी प्रचलित है परन्तु अब जानवरों का पेट नहीं भरने पाता। दिन-भर इधर-उधर घूमने के बाद वह भूखे ही वापिस लौट आते हैं। गर्मी के दिनों में जब घास जल जाती है तब जानवरों के खाने की समस्या और भी विकट हो जाती है। बरसात में जब चारों ओर घास उगती रहती है जानवरों को खाने को काफी रहता है। परन्तु जनवरी का महीना आते ही घास कम होने लगती है और अप्रैल, मई, जून में तो समस्या और भी कठिन हो जाती है। किसानों के पास भुस इतनी मात्रा में नहीं होता कि वह जानवरों के लिए काफी हो। गरीबी के कारण वह दूसरों से खरीद कर भूसा खिला कर जानवरों को रख नहीं सकते। विशेषतः जब कि दूध देने वाले जानवर ठल्ल हो जाते हैं, यानी दूध नहीं देते, तब किसान दूसरों से खरीद कर उन्हें भूसा खिला ही नहीं सकते। ऐसे समय में पशुओं की बड़ी दुर्दशा होती है और वह भूखे रहने के कारण दुर्बल हो जाते हैं।

चारे की कमी दूर करने के उपाय—चारे की कमी दूर करने के दो ही तरीके हैं—(१) या तो चारागाहों को बढ़ाया

जाय या (२) अधिक चारा उत्पन्न किया जाय । इस समय जब कि देश की आवादी बढ़ती चली जा रही है और खाने के लिए पर्याप्त भोजन नहीं मिलता खेतों की संख्या घटाकर चारागाह बढ़ाना तो संभव है नहीं । परन्तु यह किया जा सकता है कि रक्षित जंगलों में (Protected forests) जहाँ पर कोई जा नहीं सकता, गर्मी के दिनों में घास काटने की आज्ञा दे दी जाय । यदि जानवर चरेंगे तो वह पेड़ों को हानि पहुँचावेगे । इसलिए केवल घास काटने की ही आज्ञा दे दी जानी चाहिए ।

दूसरा यह हो सकता है कि गाँवों के आसपास जो ऊबड़-खाबड़ भूमि पड़ी रहती है और जहाँ पर घास, झाड़ी तथा काँटेदार पेड़ उग आते हैं उसको चौरस तथा एकसा कर दिया जाय । इस भूमि पर खेती नहीं हो सकती परन्तु ऐसी घासें अवश्य उग सकती हैं जो चारे के लिये बहुत उपयोगी हैं । संयुक्त प्रान्त के जंगल विभाग का कहना है कि एक बर्ग मील ऐसी भूमि पर प्रति वर्ष ६०० टन हरी घास तथा १,५०० टन जलाने की लकड़ी पैदा की जा सकती है । ऐसी भूमि को चारा उगाने के लिये व्यवहार में लाया जाना चाहिये । परन्तु आरम्भ से ही यह ध्यान रहे कि इस भूमि पर जानवर न चरें । लोगों को आकर घास काटने की पूरी आज्ञा हो । जानवर चरते समय घास को जड़ से उखाड़ लेते हैं । इससे घास कम हो जाती है । दूसरे उनके खुरों से घास दब कर नष्ट हो जाती है । तीसरे, घास लम्बी और बड़ी नहीं होने पाती । इसलिये गाँव वालों को केवल घास काट कर ले जाने की आज्ञा हो । इस स्थान पर जानवर न चरें ।

घास काट कर किसानों को उसका साइलेज (Silage) बना लेना चाहिये । साइलेज बनाना बड़ा सरल है । घास को काट कर एक प्रकार का गड्ढा, जिसे साइलो कहते हैं उसमें रख देनी चाहिये । इस गड्ढे में घास के तत्व नष्ट नहीं होते और घास कई महीने तक सुरक्षित रखी जा सकती है । इस तरह बरसात में रखी हुई घास कई महीनों तक काम में आ सकती है ।

जिन स्थानों पर एक फसल होती है वहाँ पर किसानों को चाहिये कि फसल काटने के बाद वह क्लोवर (Clover) नाम की एक घास खेत में उगाये । यह घास बिना सिचाई के तथा जल्दी ही उग आती है और दूसरी फसल के समय के पहले ही इसे काटा जा सकता है । यह पौधा ऐसा है कि फसल के लिये उपयोगी जीवन-तत्व भी यह भूमि को दे देता है । इस तरह इस घास के उगाने से भूमि अधिक उपजाऊ होगी तथा गाँव वालों की चारे की समस्या भी हल हो जावेगी । इसके अतिरिक्त आस्ट्रेलियन चरी भी हमारे देश में बोई जा सकती है । यह मामूली चारे से अधिक ताजी व मीठी होती है । बरसात में बोकर यह दिसम्बर तक हरी बनी रहती है । एक एकड़ में २४ सेर बीज बोया जाता है और इसकी फसल साल में तीन बार काटी जा सकती है । लुसरीन नामक पौधा भी ऐसा है जो हमारे देश में बोया जा सकता है । यह पौधा अक्टूबर में बोया जाता है और आठ वर्ष तक रहता है । एक एकड़ भूमि में इस पौधे के तीन सेर बीज बोये जाते हैं । फ्रान्सीसी जई तथा स्काटलेण्ड जई दिसम्बर में बोई जाती है और मई के महीने तक ताजी तथा हरी रहती है । इस तरह

उस समय जब कि हमारे देश की घास जल जाती है यह काम देगी। इनके अतिरिक्त बरसीम घास भी हमारे देश में बोई जा सकती है। यह अक्टूबर के महीने में कपास के साथ या कपास की फसल कट जाने पर उसी खेत में बोई जाती है। जनवरी से मई तक इसकी पाँच दफा फसल काटी जा सकती है। यह घास जहाँ पैदा होती है उस खेत में नोषजन गैस भर जाती है जिसके कारण खेत की उपज बढ़ जाती है। यह सब घासों हमारे देश में आसानी से पैदा की जा सकती हैं।

सरकार को यह चाहिये कि वह कृषि-अन्वेषणशाला से यह अनुरोध करे कि वह शीघ्र ही कुछ ऐसी घास तथा पौधों का पत्ता लगावे जिनके खाने से जानवर अधिक दूध दे सकें, जो स्वास्थ्यवर्धक हों तथा जो कम पानी में (मेह के अभाव में भी) उग सकें। साथ में किसानों को भी चाहिये कि वह भूसे का सदुपयोग करें तथा यह ध्यान में रखें कि वह बेकार न जाय। प्रायः जानवर खाते समय भूसा फेंकते भी जाते हैं। इस बर्बादी को रोकना आवश्यक है।

जानवरों के चारे में खली (Oil-cakes) का होना अत्यन्त आवश्यक है। इसको खाने से जानवरों का स्वास्थ्य बढ़ता है, उनकी दूध की मात्रा बढ़ जाती है तथा दूध में भी अधिक निकलता है। खली कीमती होने के कारण किसान इसको खरीद कर जानवरों को खिला नहीं सकते। तेलों की मिलों में तेल निकाल लेने पर सरसों आदि का जो फोक बच जाता है उसे खली कहते हैं। खलीको सस्ता करने के लिये यह आवश्यक है कि हमारे देश में तेल की मिलों को बढ़ाया जाय

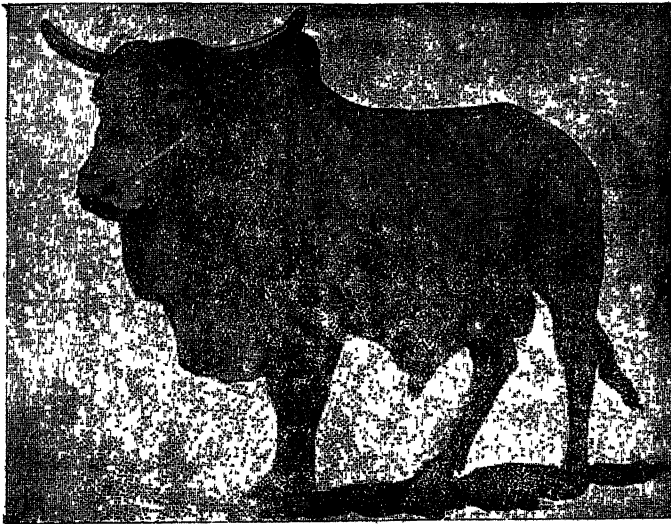
तथा सरसों, अण्डी, तिली आदि तिलहनों का विदेशों को निर्यात रोक दिया जाय।

नस्ल सुधार

देश के जानवरों की दशा सुधारने के लिये यह आवश्यक है कि खराब जानवरों को नष्ट कर उनकी नस्ल सुधारी जाय। जानवरों का अच्छा, फुर्तीला, बड़ा तथा अच्छा दूध देने वाला होना उनकी नस्ल पर निर्भर है। हमारे देश के किसान साँड़ों की किस्म पर ध्यान नहीं देते। जो भी साँड़ उन्हें पहले मिला—चाहे वह रोगी हो, कमजोर हो या बूढ़ा हो—उसी से वह गायों को मेट करा देते हैं। इससे उनके बछड़े भी कमजोर होते हैं। विदेशों में साँड़ों की किस्म सुधारने पर काफी ध्यान दिया जाता है। इसी कारण वहाँ के जानवर अच्छे तथा अधिक दूध देने वाले होते हैं। विदेशों में ऐसी २ गायें हैं जो दिन में ३५-४० सेर तक दूध देती हैं और उन्हें हर चार घण्टे बाद दुहा जाता है। भारतवर्ष में २०-३० सेर से अधिक दूध देने वाली शायद ही कोई गाय हो।

नस्ल सुधारने के लिये यह आवश्यक है कि रोगी, बूढ़े तथा असक्त साँड़ों को नष्ट कर दिया जाय। नष्ट करने से लाभ यह है कि उनके ऊपर जो चारा व्यय होता है वह बच जावेगा। परन्तु यदि उन्हें नष्ट करना ठीक न समझा जाय, क्योंकि हिन्दू किसी भी जानवर को मारना ठीक नहीं समझते, तो उनको इनजैक्सन लगवा कर नपुंसक बनवा देना चाहिये जिससे वह बछड़े पैदा न कर सके। इसमें कोई हानि नहीं। जर्मनी में तो बीमार मनुष्यों को भी नपुंसक कर दिया जाता था फिर बैकार जानवरों को नपुंसक करने में क्या कठिनाई हो सकती है ?

इसके साथ ही यह आवश्यक है कि गाँव २ में अच्छे २ साँड़ों को भिजवाया जाय। भारतीय कृषि कमीशन (१९२६) ने यह अनुमान लगाया था कि हमारे देश में लगभग १० लाख साँड़ों की आवश्यकता है। इसके बाद प्रति वर्ष २ लाख साँड़ों की जरूरत पड़ा करेगी। सन् १९३५-३६ में हमारे देश भर में कुल १०,००० अच्छे साँड़ थे। सरकारी फार्मों से लगभग १००० साँड़ प्रति वर्ष निकलते हैं। यह साँड़ बहुत अच्छे तथा मजबूत होते हैं। नीचे मैसूर सरकारी फार्म के एक सिन्धी साँड़ का चित्र दिया गया है :—



चित्र १४—एक अच्छा साँड़

सरकारी फार्म में अच्छे २ साँड़ पर्याप्त मात्रा में नहीं हैं। इसलिये अच्छे साँड़ों की कमी दूर करने के लिये जिला बोर्ड, जमींदार, कोर्ट आफ-वार्ड्स, गऊशालाये तथा ग्राम की सहकारी समितियों और पंचायतों को मिलकर साँड़ों की संख्या बढ़ानी चाहिये। इन सब सस्थाओं तथा व्यक्तियों को मिल कर एक योजना बनानी चाहिये जिसके अनुसार गाँवों के या जिले भर के अच्छे २ साँड़ों का पता लगा कर उनकी देख भाल ठीक से की जाय। खराब साँड़ों को नष्ट कराने का प्रबन्ध करना चाहिये। साथ ही नये २ अच्छे साँड़ों को बनाने के लिये सामूहिक रूप से चन्दा लेकर काम चलाना चाहिये। यदि आवश्यकता हो तो किसानों से भी कुछ लिया जा सकता है। परन्तु यथासंभव उन पर कुछ भार न डालना ही अच्छा है।

सहकारी समितियाँ—पंजाब तथा अन्य प्रान्तों में गाँव वालों ने मिलकर सहकारी नस्ल-सुधार समितियाँ खोल रखी हैं। इन समितियों का काम गाँव में अच्छे साँड़ों का रखना, बुरे साँड़ों का गाँव से निकाल देना, गायों की संख्या का पता रखना तथा उनके होने वाले बछड़ों का हिसाब रखना है। एक साँड़ से होने वाली नस्ल का हिसाब रख कर यह पता लगाती है कि कौन सी नस्ल सबसे अच्छी है। यह भी पता लगाती हैं कि दूध कितना बढ़ा है। इस तरह की सहकारी समितियाँ पंजाब में ही अधिक प्रसिद्ध हैं क्योंकि वहाँ के किसान अन्य प्रान्तों से अधिक धनवान होने के कारण साँड़ खरीदने पर धन व्यय कर सकते हैं। चाहे इन समितियों की संख्या कम क्यों न हो फिर भी इनका काम सराहनीय है।

रोगों को दूर करना

अधिक चारे की व्यवस्था करने तथा नस्ल सुधारने के साथ २ यह भी आवश्यक है कि पशुओं के रोग दूर करने का भी प्रबन्ध किया जाय। पशुओं को बहुत सी बीमारियाँ हो जाती हैं और उनका ठीक से उपचार नहीं होता। किसान जो पहले से जानते हैं उसी के अनुसार उनका इलाज करते हैं। और इलाज के अभाव के कारण बहुतों की मृत्यु हो जाती है। प्रान्तीय सरकारों ने जानवरों के इलाज करने के लिये अस्पताल खोल रखे हैं परन्तु वह पर्याप्त नहीं। इस बात की बड़ी आवश्यकता है कि पशु चिकित्सकों की संख्या बढ़ाई जावे और वह गाँव २ घूम कर पशुओं का इलाज करें। इसके लिये घूमने वाले पशु-अस्पताल होने चाहिये। सरकार को इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि पशु-चिकित्सालयों को बड़े २ शहरों में खोलने के बजाय उन्हें गाँवों में खोला जाय। तभी उनसे गाँव वाले लाभ उठा सकेंगे। गाँव वालों के लिये यह संभव नहीं कि वह बीमार जानवर को कई मील का रास्ता तय करके शहर इलाज के लिये लावे। न वह डाक्टर को ही गाँव में ले जा सकते हैं क्योंकि डाक्टर को फीस देने के लिये उनके पास रुपया नहीं।

पशुओं को होने वाले रोगों में रिन्डरपैस्ट (Rinderpest) सबसे भयानक तथा व्यापक है। यह छूत का रोग है और जानवरों को छू जाने पर फैल जाता है। गाँव वालों के लिये यह संभव नहीं होता कि वह बीमार पशुओं को स्वस्थ पशुओं से अलग रखें। इस कारण जब यह बीमारी फैलती है तो जोरों से फैलती है तथा हजारों-लाखों पशु मर जाते हैं।

भारतीय-कृषि-कमीशन ने यह राय दी थी कि इस रोग को फैलने से रोकने के लिये रोग के उद्गम-स्थान को ही नष्ट कर दिया जाय। परन्तु यह हमेशा संभव नहीं। इसलिये कृषि-कमीशन की राय में जानवरों को टीका लगा देना चाहिये। सरकार का पशु-चिकित्सक-विभाग (Government Veterinary Department) इस रोग से जानवरों को बचाने के लिये टीका लगाता है। परन्तु यह सरकारी विभाग देश भर के गाँवों के पशुओं को टीका लगाने का काम ठीक से नहीं कर सकता। उनके पास इतने डाक्टर नहीं कि वह जानवरों को मृत्यु के मुँह में जाने से रोक सके। इसलिये यदि गाँवों के अध्यापकों को टीका लगाना सिखा दिया जाय तथा उनको टीके की दवा भी दे दी जाय तो अच्छा काम हो सकेगा। सरकार को इस योजना पर चलने का प्रयत्न करना चाहिये।

सारांश

हमारे देश में गाय-बैल बहुत अधिक मात्रा में पाये जाते हैं। संसार भर के एक-चौथाई गाय-बैल हमारे देश में हैं।

परन्तु इन जानवरों की दशा बहुत खराब है। वह अशक्ति तथा बीमार हैं। वह धीरे-धीरे काम करते हैं तथा थोड़ा सा काम करते ही थक जाते हैं। गायों की भी यही दशा है। उनका दूध कम होता है तथा उसमें घी की मात्रा कम रहती है।

इनकी दशा सुधारने के लिये यह आवश्यक है कि उनको चारा काफी मात्रा में मिला करे। अधिकतर वह भूखे रहते हैं और इस कारण कमजोर हो गये हैं। अब चारागाहों की कमी है। चारे की कमी दूर करने के लिये यह आवश्यक है कि गाँव के आस-पास

ऊबड़-खाबड़ भूमि को ठीक करके उसमें घास उगाई जाय। इन स्थानों पर जानवरों को चराने की मनाही हो परन्तु गाँव वाले आकर घास काट सकें। चरते समय जानवर घास को जड़ के सहित उखाड़ लेते हैं तथा उनके खुरों से दब जाने के कारण घास उगने नहीं पाती। घास का इनको साइलेज बना लेना चाहिये। जिस समय खेत खाली हों उन पर क्लोवर घास उगानी चाहिये। जानवरों की खुराक में खली का होना आवश्यक है। इसके लिये देश की तेल की मिलों का उत्पादन बढ़ाना जरूरी है।

दूसरी आवश्यकता नस्ल सुधारने की है। इसके लिये अच्छे साँड़ चाहिये। अच्छे साँड़ों के लिये कुछ सरकारी फार्म हैं। परन्तु वह प्रति वर्ष केवल १००० साँड़ निकालते हैं जबकि देश को लगभग २ लाख साँड़ों की वार्षिक आवश्यकता है। साँड़ों की संख्या बढ़ाने के लिये सहकारी समितियों, जिला बोर्ड, जमींदार, पंचायत, गौशालायें, कोर्ट आफ वार्ड्स आदि को मिलकर इस तरफ ध्यान देना चाहिये। साथ में बेकार, बीमार तथा दुर्बल साँड़ों को या तो नष्ट कर देना चाहिये या उन्हें नपुंसक बना देना चाहिये।

तीसरे इस बात की भी आवश्यकता है कि जानवरों के रोगों को दूर किया जाय। जानवरों को रिन्डर-पैस्ट ऐसी बीमारी है जो बहुधा हो जाती है और जिमसे लाखों जानवर प्रति वर्ष मर जाते हैं यह बीमारी टीका लगाने से दूर हो जाती है। परन्तु टीका लगाने वालों की कमी है। सरकार ने कुछ पशु-चिकित्सालय खोले हैं परन्तु उनकी संख्या अधिक नहीं। सरकार को चाहिये कि घूमने-फिरने वाले पशु-चिकित्सालय खोले जिससे कि डाक्टर गाँव-गाँव जाकर रोगी जानवरों का इलाज कर सकें।

प्रश्न

१. गाँव में पशुओं की क्या दशा है ? इनकी इस दशा का क्या कारण है ?
२. भारतवर्ष के गाय-बैलों की दशा सुधारने के लिये क्या करना चाहिये ? क्या उस तरफ कुछ हो रहा है ?
३. जानवरों के लिये चारा किन उपायों से बढ़ सकता है ? आप उसमें से कौन सा उपाय ठीक समझते हैं ?
४. हमारे देश में ऐसी कौन सी घासें हैं जो सुगमता से उगाई जा सकती हैं ? विस्तारपूर्वक लिखिये ।
५. जानवरों की नस्ल सुधारने के लिये क्या किया जाय ? प्रान्तों की सरकारों ने इस तरफ क्या प्रयत्न किये हैं ?
६. जानवरों को कौन-कौन सी बीमारियाँ हो जाती हैं ? उनको किस तरह दूर किया जा सकता है ?
७. जानवरों को रोगों से बचाने के लिये क्या-क्या काम करने चाहिये ? संयुक्त प्रान्त की सरकार ने इसके लिये क्या-क्या काम किये हैं ?

अध्याय चौबीस

खेती की उन्नति के उपाय

यह आप जानते ही हैं कि हमारे देश की तीन-चौथाई जन-संख्या खेती पर निर्भर रहती है। अब भी खेती हमारे देश का प्रधान उद्योग है और इतनी मिले तथा कारखाने खुल जाने पर भी खेती का वह उच्च स्थान कम नहीं हुआ है। इन २,००० मील चौड़े तथा १,५०० मील लम्बे भूखण्ड की उबरी भूमि में हजारों वर्षों से भारतीय किसान खेती करते आये हैं और आनन्दमय जीवन बिताते रहे हैं। परन्तु आज कल खेती की इतनी हीन दशा हो गई है कि लोगों को भरण-पेट भोजन मिलना भी दूभर हो गया है। नीचे दी हुई तालिका से, जिसमें विभिन्न देशों की फी एकड़ भूमि से पैदा होने वाले गेहूँ तथा चावल के आकड़े दिये गये हैं, आप हमारे देश की गिरी हुई कृषि की हालत का अनुमान लगा सकते हैं :—

फी एकड़ उपज (पौंड में)

देश	गेहूँ	चावल
भारतवर्ष	८११	९८८
चीन	८४०	२,४३३
अमरीका	६६०	१,६८०
जापान	१,३५०	३,०७०
सम्पूर्ण दुनिया की औसतन उपज ८४०	... १,१४०

ऊपर दी हुई तालिका से यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे देश की पैदावार दुनिया की औसतन पैदावार से भी कम है । खेती की इस बुरी दशा के कारणों में खेतों के छोटा तथा छिटका होना, खाद का अभाव, सिंचाई के साधनों की कमी, प्राकृतिक कारण, धन की कमी, खेती करने के पुराने तरीके, आदि हैं । हम इन पर एक-एक कर विचार करेंगे ।

खेतों का छोटा तथा छिटका होना—आपको बताया जा चुका है कि किसानों के खेत छोटे २ तथा अलग २ हैं । कभी २ तो खेत इतने छोटे होते हैं कि उन पर हल चारों ओर घुमाया ही नहीं जा सकता । खेतों के छोटे तथा छिटके होने के कारण उन पर फसल कम पैदा होती है, खेती का व्यय अधिक पड़ता है, निगरानी ठीक से न होने के कारण नुकसान बहुत होता है तथा नई २ मशीनें या ट्रैक्टर आदि नहीं चलाये जा सकते । वैज्ञानिक ढंग पर खेती करने के लिये यह आवश्यक है कि किसानों के पास बड़े २ खेत हों तथा वह अलग २ न हों । इसके लिये चकबन्दी करना आवश्यक है । या तो सहकारी खेती हो या सरकार कानून पास कर प्रत्येक गाँव में चकबन्दी आवश्यक कर दे । यह समस्या तभी हल हो सकती है । इस समस्या का विस्तारपूर्वक वर्णन हम पिछले अध्याय में कर चुके हैं ।

खाद की समस्या—हमारे किसान वर्षों से एक भूमि पर खेती करते चले आये हैं । उस भूमि पर वह कभी खाद नहीं डालते । खाद न डालने के कारण भूमि का उर्वरापन कम हो जाता है जिसके कारण पैदावार कम हो जाती है । एक फसल

पैदा करने के बाद भूमि की उत्पादन शक्ति कम पड़ जाती है। खाद डालकर वह शक्ति पुनः वापिस मिल जाती है।

हमारे देश के किसान गरीबी के कारण खाद खरीद कर नहीं डाल सकते। जानवरों के गोबर की वह खाद बना सकते हैं। परन्तु उसके उपले पाथ कर किसान उसे जलाने के काम में ले आते हैं। विदेशों में पेशाब तथा मैले से भी खाद बनाई जाती है। परन्तु हमारे देश में पेशाब को या मैले को कोई छूना नहीं चाहता। इस कारण इनकी खाद नहीं बनाई जाती। किसानों को चाहिये कि वह गोबर को जलाना बंद कर दें और उसकी खाद बनाया करें। उनको चाहिये कि खेत में एक किनारे पर एक बड़ा सड़ा गड्ढा खोद लें। उसी गड्ढे में वह गोबर, पेशाब, मैला कूड़ा, करकट सूखी पत्तियाँ आदि डाल दिया करें। कूड़ा-करकट तथा गोबर आदि डालने के पश्चात् यह आवश्यक है कि उनको मिट्टी से ढक दिया जाय जिससे कि सूर्य के प्रकाश से उनके तत्त्व नष्ट न हों। गड्ढा भर जाने के बाद उसको मिट्टी से अच्छी तरह से ढक देना चाहिये। थोड़े महीनों बाद सड़ कर अच्छी खाद तैयार हो जायगी। इसके साथ २ फायदा यह भी है कि गाँव में गंदगी नहीं रहा करेगी।

जानवरों के पेशाब से बहुत अच्छी खाद बन सकती है। परन्तु हमारे देश में इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता। किसानों को चाहिये कि या तो जानवरों को खेतों में बाँधे और यदि यह संभव न हो तो जानवरों के नीचे नित्य ही सूखी मिट्टी बिछा दिया करें जिससे कि उनका पेशाब उसी में मिल जाय। बाद में वह मिट्टी खेत में डाल देनी चाहिये। इससे भूमि में खाद की मात्रा बढ़ जावेगी।

हमारे देश के किसान मैला या पेशाब नहीं छूते । परन्तु मैले की खाद बनाने के लिये उनको चाहिये कि वह खेतों में शौच के लिये जायँ । परन्तु खेत में शौच जाने से ही खाद नहीं बन जाती । उनको चाहिये कि वह शौच जाने के पहले जमीन में करीब एक १ फुट गहरा गड्ढा खोद ले और फिर शौच के बाद उस गड्ढे का मिट्टी से ढक दे । ऐसा करने से ही उस मैले की खाद बन सकती है । सरकार को चाहिये कि वह शहरों में इकट्ठा होने वाले मैले की खाद बनवाये और उसके लिये स्थान २ पर कारखाने खोले । मरे हुये जानवरों की हड्डियों से भी अच्छी खाद तैयार हो सकती है । हमारे देश में जानवरों की संख्या बहुत है और उनकी हड्डियों को एकत्रित करके बहुत काफी खाद बनायी जा सकती है । सरकार को इस तरफ अवश्य ध्यान देना चाहिये ।

उपजाऊपन का बह जाना—हमारे देश में बरसात का पानी काफी मात्रा में गिरता है और खेतों में होकर बहता है । यह पानी अपने साथ २ मिट्टी में होने वाले तत्वों को बहा ले जाता है जिसके कारण भूमि का उपजाऊपन कम हो जाता है । हमारे देश के किसानों की यह आदत है कि वह बरसात के पहले खेतों में स्थान २ पर खाद के ढेर लगा देते हैं । वह यह समझते हैं कि बरसात का पानी इस खाद को खेत भर में फैला देगा । परन्तु उनकी यह धारणा सर्वथा गलत है । मेह का पानी मिट्टी के तत्वों के साथ २ खाद के तत्वों को भी बहा ले जाता है और बरसात के बाद भूमि अधिक उपजाऊ हो जाने के बदले कम उपजाऊ हो जाती है । हमारे देश में यह एक महत्वपूर्ण समस्या है जिसके ऊपर अभी अच्छी तरह से विचार नहीं

किया गया। विदेशों में सरकारों ने इस बुराई को दूर करने के लिये एक अलग से विभाग ही खोल रखा है।

किसानों को चाहिये कि वह इस बात का ध्यान रखें कि उनके खेतों पर से पानी बहुत जोर से न बहे। क्योंकि जितने जोर से पानी बहेगा उतना ही भूमि का उपजाऊपन कम हो जावेगा। इसके लिए उन्हें चाहिये कि बरसात के आरम्भ में ही खेतों की मेड़ काफी ऊँची कर दें। खेत के अन्दर भी उन्हें स्थान २ पर पानी का बहाव रोकने के लिये बाँध लगा देने चाहिये। खेतों को भी उन्हें कई क्यारियों में बाँट देना चाहिये। इस तरह वह मिट्टी का उपजाऊपन कम होने से रोक सकेंगे।

सिंचाई के साधनों की कमी—सिंचाई के बिना खेती का होना संभव नहीं। बरसात का पानी अनिश्चित होता है और वह मात्रा में भी पर्याप्त नहीं होता। इसलिये यह आवश्यक है कि देश में सिंचाई के साधन पर्याप्त मात्र में हों। हमारे देश में सिंचाई के तीन साधन हैं : (१) नहर (२) तालाब तथा (३) कुए

नहर द्वारा हमारे देश में सबसे अधिक सिंचाई होती है। यह पंजाब, तथा सयुक्त प्रान्त में अधिक पाई जाती हैं। परन्तु नहरों इतनी नहीं कि उनसे काम चल सके। नहरों का पानी किसान पैसा देकर ले सकते हैं। नहरों में स्थान २ पर कुलावे लगे रहते हैं और वहीं से पानी काट कर किसानों को दिया जाता है। यदि किसान अपने खेत में पानी चाहता है तो उसे एक अर्जी नहर के अफसर के यहाँ देनी पड़ती है। अर्जी मन्जूर होने पर उसको माँगे हुए दिन को पानी मिल जाता है। इसका नतीजा यह होता है कि चाहे उसे आवश्यकता हो या न हो

यह पूरा पानी खेत में दे देता है। इससे कभी २ खेतों को लुकसान हो जाता है। फिर नहर से खेत तक लाने में काफी पानी बर्बाद हो जाता है क्योंकि जमीन उसे सोख लेती है। कभी २ पानी कट जाता है तो इधर-उधर फैलता रहता है। इन कारण जितना पानी नहर से निकलता है उसका आधा ही खेतों में लगने पाता है। सिंचाई की दर फी बीघा खेत के हिसाब से निश्चित की जाती है।

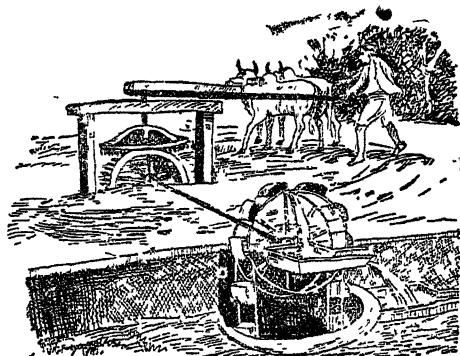
तालाब सिंचाई का दूसरा साधन है। यह दक्षिण राज-पूताना, मध्य भारत, मालवा, दक्षिणी भारत, विशेषतः मद्रास आदि में अधिक प्रसिद्ध हैं। दक्षिणी भारत की भूमि कंकरीली तथा पथरीली है। इस कारण वहाँ नहरें नहीं खुद सकती। दक्षिणी राजपूताना, मालवा आदि रेगिस्तानी जगहें हैं इसलिये वहाँ भी नहरें नहीं खुद सकती। वहाँ कुआ खुदना भी आसान नहीं। इस कारण तालाबों से ही काम लिया जाता है।

तालाबों में मेह का पानी जमा कर लिया जाता है और फिर उस पानी को सिंचाई के काम में लाया जाता है। कभी २ गाँव के सभी किसान मिल कर तालाब खोद लेते हैं और सिंचाई के काम में लाते हैं। नहर तथा कुए खोदने में काफी व्यय होता है। तालाब खोदना आसान काम है। इस कारण आजकल सरकार तालाबों के ऊपर अधिक ध्यान दे रही है। जो तालाब झिंटी से पटते जा रहे हैं उनको पुनः खुदवाया जा रहा है। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने सन् १९४८ में कई लाख रुपये तालाब खुदवाने पर व्यय किये थे।

कुए भी सिंचाई के काम में आते हैं। यह सिंध-गंगा के समतल मैदान में अधिक पाये जाते हैं क्योंकि यहाँ जमीन का खुदना आसान है तथा पानी भी ३०-४० हाथ खोदने पर निकल

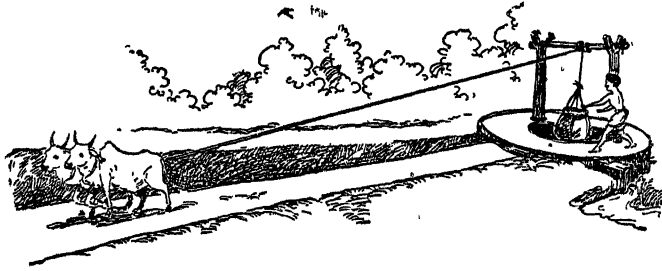
आता है। इनसे लाभ यह है कि किसान जब चाहें पानी निकाल सकत हैं और उसको किसी दूसरे पर निर्भर नहीं रहना पड़ता।

कुए से पानी निकालने के कई तरीके हैं परन्तु उनमें दो महत्वपूर्ण हैं। पहला रहट तथा दूसरा चरसा। रहट से ३०, ४० फुट गहरा पानी सुगमता से निकल आता है। इसमें एक बड़ी लोहे की पहिया कुये के मुँह पर लगी होती है। इस पहिये में चारों ओर डंडे लगे होते हैं। इन डंडों पर से एक बड़ी-बड़ी कड़ियों वाली जंजीर माला की तरह लटकती रहती है। इसी जंजीर पर बाल्टियाँ लगी होती हैं। कुये के मुँह वाले धुरे से एक बड़ा लोहे का धुरा निकला रहता है जो दूसरे सिरे पर एक दाँतदार पहिये में जुड़ा होता है। इस दाँतदार पहिये के दाँत एक तीसरे पहिये के दाँत में फँसे होते हैं। यह तीसरा पहिया बैलों से चलाया जाता है। बाल्टियों की माला घूमती है। बाल्टियाँ भर-भर कर पानी लाती हैं और उसे ऊपर छोड़ देती हैं। इसका चित्र नीचे दिया जाता है :—



चित्र १५—रहट

चरसा या पुर का प्रयोग बहुत व्यापक है। इसमें चमड़े का एक बड़ा सा डोल जिसे पुर कहते हैं होता है जिसे बैल हाँकते हैं। इसका चित्र नीचे दिया जाता है :—

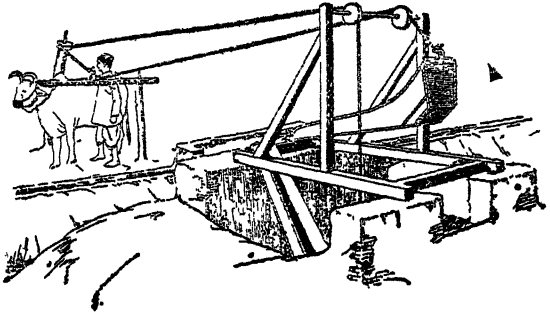


चित्र १६—चरसा से सिंचाई

जब पानी बहुत गहराई पर नहीं होता तो बल्देव बाल्टी से पानी निकालते हैं। इस यंत्र को कानपुर कृषि कालेज के बल्देव नामक मिस्त्री ने बनाया था। इससे ६ फुट गहराई तक का पानी छठा सकते हैं। नदी, नाले या तालाब में इस यंत्र को सुविधापूर्वक लगा सकते हैं।

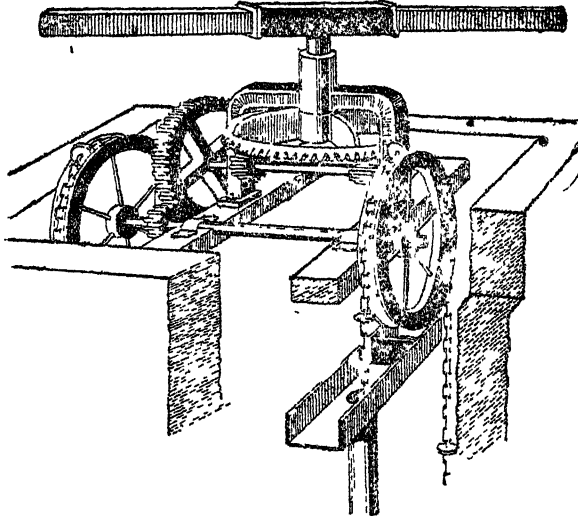
बल्देव बाल्टी में दो लंबी टिन की बाल्टियाँ होती हैं जो मुँह पर जहाँ ये पानी गिराती हैं एक दूसरे से जुड़ी होती हैं। बाल्टियों के दूसरे सिरे से रस्से बँधे होते हैं जो अलग-अलग दो गरारियों के ऊपर से गुजरते हैं। जब एक बाल्टी पानी में डूबती है तब दूसरी पानी भरकर ऊपर लाती है। इसमें एक बैल खींचने के लिए चाहिये और

एक आदमी बैल को हाँकने के लिये। बैल के घूमने के क्रम पर बाल्टी का नीचे-ऊपर उठना निर्भर है। इसका चित्र नीचे दिया जाता है :—



चित्र १५—बलदेव बाल्टी

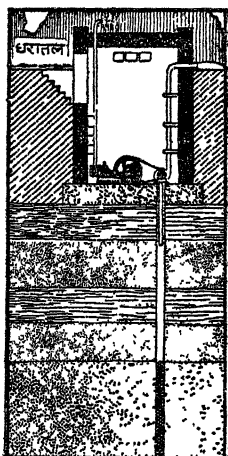
पानी चेन पंप द्वारा भी निकाला जाता है। चेन पंप में एक लोहे का पहिया होता है जिसमें दोनों ओर एक-एक हेंडिल चलाने के लिये होते हैं। पहिये पर से एक लोहे की जंजीर माला की तरह जाती है। जंजीर दूसरी ओर पानी में डूबी रहती है। जंजीर में जगह-जगह लोहे की गोल चकतियाँ लगी होती हैं। जंजीर की चकतियाँ चढ़ते समय पानी को एक नल में चढ़ाती हैं। नल ऊपर की ओर इतना ऊँचा रहता है जितना ऊँचा पानी को चढ़ाना होता है। इसका चित्र अगले पृष्ठ पर दिया गया है:—



चित्र १८—चेन पंप

आजकल ट्यूब वेल (Tube Well) का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। इसमें कुआ खोदने की आवश्यकता नहीं होती और न बेल चलाने की ही। इसमें एक लोहे की नली जमीन के अन्दर डाली जाती है। इसी नली द्वारा पानी धरातल पर आता है। ट्यूब-बेल बिजली से चलते हैं। परन्तु जहाँ बिजली नहीं है यह इंजिनों से चलाये जाते हैं। एक ढन्डे को ऊपर-नीचे करने से ही पानी बाहर निकल आता है। हमारी संयुक्त प्रान्त की सरकार ने बदायूँ, मुजफ्फरनगर, बिजनौर, मेरठ, अलीगढ़, मुरादाबाद, बुलन्द शहर आदि पश्चिमी जिलों में लगभग २,००० ट्यूब-वेल खुदवाये हैं। यह ट्यूब बेल बिजली से चलते हैं और एक ट्यूब वेल लगभग एक हजार एकड़ भूमि सींच

सकता है। इनसे लाभ यह है कि किसान जितना चाहे पानी निकाल सकता है और जिस समय चाहे निकाल सकता है।



इस तरह पानी बेकार नहीं जाता। इन्हीं के कारण पश्चिम जिलों में ईख तथा गेहूँ की खेती अच्छी होने लगी है, यद्यपि वहाँ वर्षा कम होती है। इनके अतिरिक्त पूर्वी संयुक्त प्रान्त में इस समय १०० ट्यूब वेल बन रहे हैं। इन पर ३० लाख रुपया व्यय होगा तथा यह ४४,४०० ए.डि. भूमि की सिंचाई करेंगे प्रत्येक ट्यूब वेल से ३०,००० गैलन पानी फी घन्टा के सिहाब से निकलेगा।

चित्र १९ - ट्यूब वेल

फसलों का हेर-फेर—फसलों को हेर-फेर कर बोना अत्यन्त आवश्यक है। जिस तरह मेहनत करने के बाद आदमी के लिये विश्राम करना जरूरी है उसी तरह फसल उग जाने के पश्चात् यह आवश्यक है कि भूमि को भी विश्राम दिया जाय। फसल उगने के बाद भूमि के तत्व कम हो जाते हैं। उसको परती छोड़ने से वह तत्व पुनः भूमि को वापिस मिल जाते हैं। फसलें भूमि से कुछ तत्व लेकर दूसरे तत्व उसे दे देती हैं। कोई फसल कुछ तत्व लेती है तो कोई कुछ अन्य। इसी सिद्धान्त पर फसलों को हेरा-फेरा जाता है।

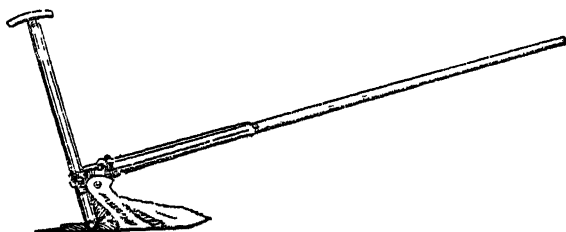
विदेशों में किसान खेत को तीन भागों में बाँटता है। एक पर वह मुख्य फसल बोता है, दूसरे पर चरी और तीसरे को परती छोड़ देता है। इसी नियम का वह बारी-बारी से पालन करता है। हमारे देश के किसान भी पुराने समय में खेतों को तीन वर्ष में एक वर्ष परती छोड़ते थे। उनका फसलों का हेर-फेर निम्न प्रकार होता था: —

पहला वर्ष	दूसरा वर्ष	तीसरा वर्ष
गेहूँ	×	
चना	गेहूँ	×
×	चना	गेहूँ

परन्तु आजकल किसान खेतों से अधिक से अधिक अनाज उगाने की फिक्र में रहते हैं। इस कारण वह खेत को किसी भी वर्ष परती छोड़ना नहीं चाहते। इसका परिणाम यह हुआ है कि खेतों से फसल कम होती जा रही है। किसानों को चाहिये कि फसलों की हेरा फेरी ठीक से करें और खेत को परती छोड़ने के नियम को नहीं त्यागें।

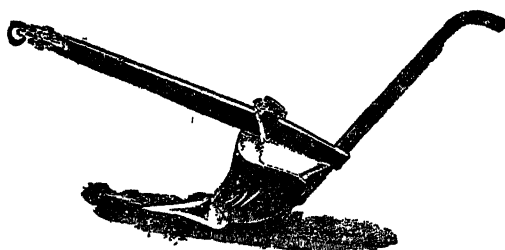
खेती के औजार—किसान अभी तक पुराने तरह के औजारों को व्यवहार में लाते हैं। वह शीघ्र खराब हो जाते हैं, हलके होते हैं और भूमि को अधिक नहीं खोदते। देशी हल ८-१० इंच से अधिक गहरी भूमि नहीं खोदता। इसके कारण फसल की पैदावार कम होती जा रही है।

होता है। यह ६ इंच गहरा और २ इंच चौड़ा कूँड़ बनाता है। इसकी हरीस अक्सर छोटी होती है। हरीस के आगे



चित्र २१—मेस्टन हल

किसान ज़जोर लगा लेते हैं और ज़जोर को ही जुए में बांध देते हैं। इससे बैलों के घूमने में आसानी रहती है और हलवाहे पर भी कम मेहनत पड़ती है।



चित्र २२—वाट्स हल

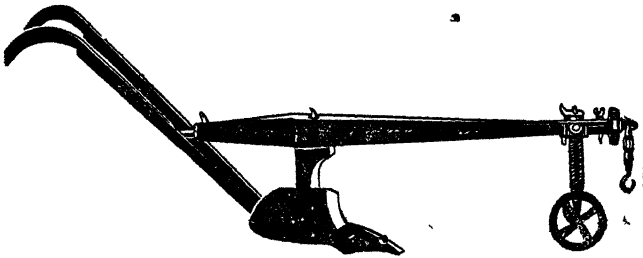
मानसून हल वाट्स हल से भी बड़ा होता है और वाट्स हल की अपेक्षा अधिक गहरी और चौड़ी कूँड़ बनाता है।



चित्र २३—मानसून हल

इस हल के खींचने में अपेक्षाकृत अधिक मेहनत पड़ती है। केवल बड़े और मजबूत बैल ही इसे खींच सकते हैं। इस हल की नोक में यह विशेषता है कि यदि एक ओर से इसकी धार घिस जाय तो उसे दूसरी ओर पलट देते हैं और फिर काम में लेने रहते हैं।

पंजाब हल से ८ इंच चौड़ी और ३ इंच गहरी कूँड़ बनती है। इस हल का पुर्जा थोड़ा इधर-उधर कर देने से

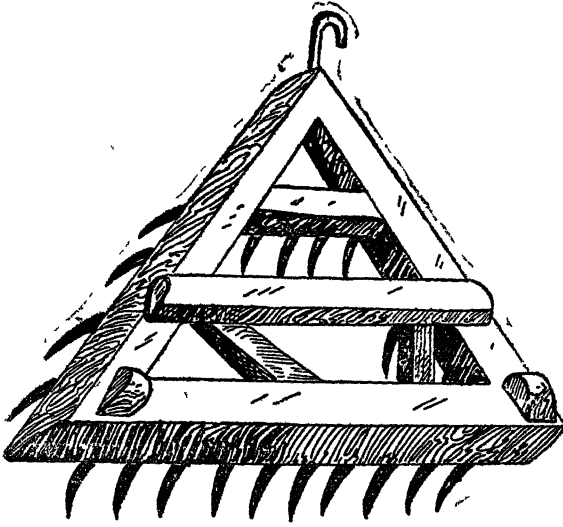


चित्र २४—पंजाब हल

कूँड की गहराई कम या अधिक कर सकते हैं। इस हल में मेहनत बहुत है। बहुत ही मजबूत बैल इसे खींच सकते हैं।

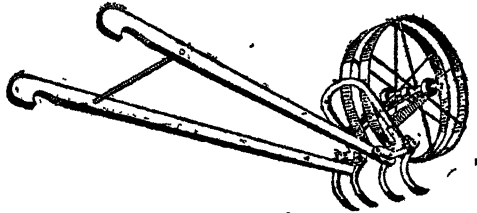
टनरेस्ट हल का बनावट ऐसी होती है कि कूँड के आखिर में मिट्टी उलटने वाला पुर्जा फौरन दूसरी ओर को बदला जा सकता है ताकि कूँड की मिट्टी पहली कूँड पर ही गिरे। हल चलानेवाला जैसा चाहे दायें या बायें मिट्टी गिरती जाती है जिसकी वजह से खेत की सतह बराबर रहती है। यह हल हर काम में आ सकता है। इस हल की कई किस्में हैं। कोई हल्की भूमि पर चलने योग्य है, कोई मटियार भूमि पर चलने योग्य है, और कोई दूमट पर चलने योग्य है। यह हल थोड़े समय में अधिक काम करते हैं। पथरटोर हल सूखी मटियार भूमि के लिए बना है। इसमें स्पात की एक लम्बी नोक लगी होती है। यह कड़ी से कड़ी भूमि में अच्छी तरह काम देता है। मिट्टी उलटनेवाला पुर्जा छोटा होता है और कूँडे कम चौड़ी होती हैं। सैबूल हल पथरटोल हल से थोड़ा बड़ा और उससे अधिक चौड़ी कूँड बनाने वाला हल सैबूल हल है। यह भी सख्त भूमि में चलने के लिये बना है। इसमें मेहनत अधिक लगती है और दो जोड़े बैलों की आवश्यकता है।

हमारे देश में निराई का काम औरतें तथा बच्चे करते हैं। इसमें काफी समय लगता है और मेहनत भी अधिक पड़ती है। आठ औरतें मिलकर एक बीघा भूमि एक दिन में निरा पाती हैं। पंजाब सरकार ने बार हारो (Bar Harrow) नामक एक यंत्र तैयार किया है। यह बड़ा साधारण है और गाँव का बड़ई भी इसे बना सकता है। इसी तरह एक लायलपुग हो भी बनाया गया है। इसके द्वारा एक दिन में बैलों के जरिये एक



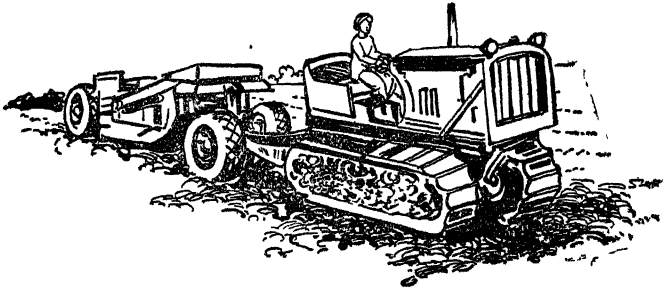
चित्र २५—थार हैरो

व्यक्ति ४-५'बीघे खेत गोड़ सकता है। इसी काम के लिये हैंड हो-नामक एक यंत्र बना है जिसे एक आदमी खींचकर चला सकता है। अकेले आदमी जितनी निराई कर सकता है उससे ढाई गुनी निराई वही आदमी हैंड हो से कर सकता है।



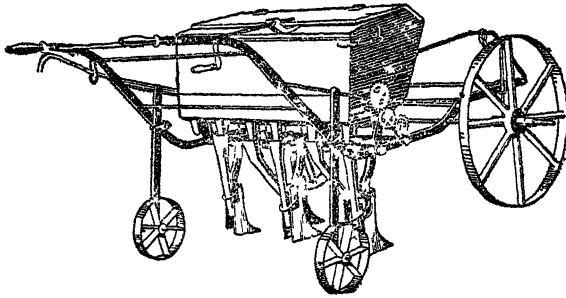
चित्र २६—हैंड हो

पाश्चात्य देशों में तो खेत हल के बजाय ट्रैक्टर द्वारा जोले जाते हैं। परन्तु यह तब संभव हो सकता है जबकि खेत बड़े हों। जब हमारे देश में सहकारी ढंग पर कृषि होगी तब इनका प्रयोग काफी लाभप्रद होगा। आज-कल प्रान्तीय सरकारें इनका उपयोग उन स्थानों पर कर रही हैं जहाँ पर वह ऊसर भूमि को खेती के लायक बना रही हैं। मेरठ के पास कई हजार एकड़ ऊसर भूमि पर संयुक्त प्रान्त की सरकार खेती करा रही है। वहाँ पर ट्रैक्टर व्यवहार में लाये जा रहे हैं।



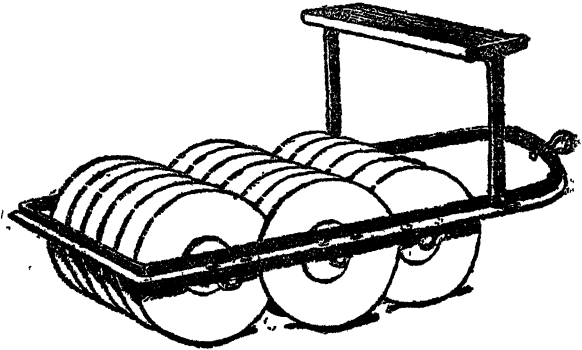
चित्र २७—ट्रैक्टर

अभी हाल में बीज बोने की एक मशीन का भी आविष्कार हुआ है जिससे एक साथ ही पाँच पंक्तियों में बीज बोया जा सकता है। यह मशीन बैल चलाते हैं। बीजों को मशीन में एक स्थान पर भर दिया जाता है और वह एकसी दूरी पर मशीन चलाने पर, जमीन में गिरते रहते हैं। मशीन में ऐसे पुर्जे लगे रहते हैं जिससे बीजों के फासले को घटाया-बढ़ाया जा सकता है। इस मशीन से दो आदमी पाँच पंक्तियों में एक साथ बीज बो सकते हैं।



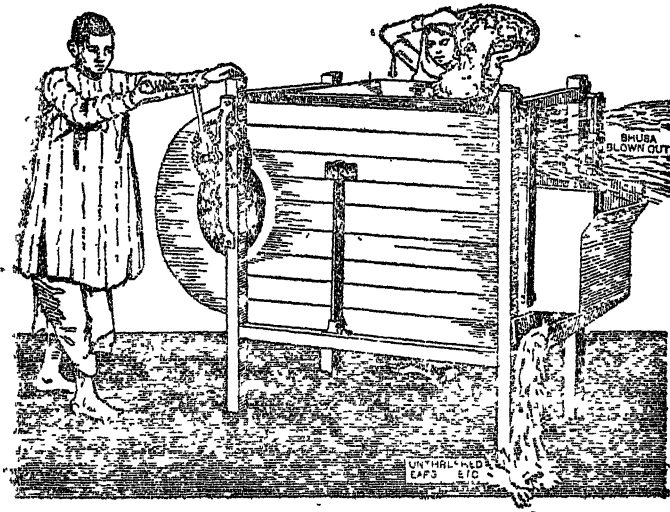
चित्र २८—बीज बोने की मशीन

इसी तरह गल्ला माड़ने के लिये भी एक मशीन बन गई है जिसे बैल चलाते हैं। इस मशीन के ढाँचे में कुछ तवे लगे रहते हैं। जब बैल इस मशीन को खींचते हैं तो तवों से डंठल कटते जाते हैं और उनका भूसा बन जाता है। इस मशीन के द्वारा एक जोड़ी बैल तीन जोड़ी के बराबर काम कर सकते हैं।



चित्र २९—माड़ने की मशीन

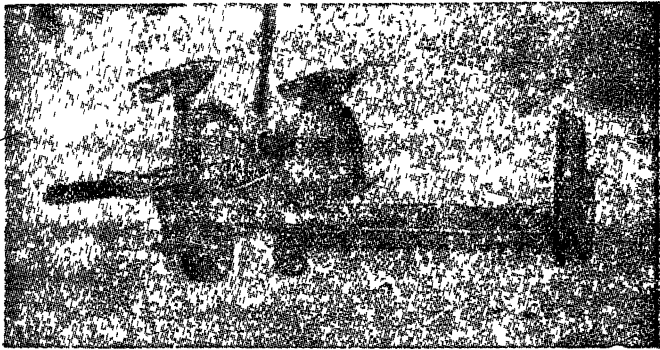
भूमे से दाना अलग करने के लिये भी एक पंखा बना है जिसे एक आदमी चलाता है। इसमें ऊपर एक छेद होता है जिसमें भूसे में मिला हुआ दाना डाला जाता है। आदमी पंखा चलाता है और उसके चलते ही एक तरफ से दाना निकलता रहता है और दूसरी तरफ से भूसा। इस मशीन के प्रयोग से अनाज में कोई गंदगी नहीं रहने पाती।



चित्र ३०—भूसा-दाना अलग करने की मशीन

हँसिया से फसल काटने में बहुत आदमी लगते हैं और बहुत समय भी लगता है। इस काम को भी मशीन से कर सकते हैं। इस मशीन की म्हायता से एक दिन में ५-६ एकड़ खेत काट सकते हैं। इस मशीन में दो बैल जोते जाते हैं। ध्वदल-ध्वदल कर चार बैल दिन भर चलते रहते हैं। मशीन

आगे-आगे काटती जाती है। पीछे से १२ मर्द या औरतों की जरूरत पड़ती है जो ढंठल को बटोर सकें। एक मशीन लगभग ३, ४ सौ रुपये में मिलती है और ८, १० साल तक आसानी से चलती रहती है। दो प्रकार की मशीनें मिलती हैं— एक का नाम है नरमदा रीपर जो छोटे बैल खींच सकते हैं, दूसरे का नाम है राजा रीपर जिसे बड़े बैल खींच सकते हैं। ये मशीनें जौ, गेहूँ, जई आदि की फसलों को अच्छा काटती हैं। चने या मटर की फसल पर अच्छी नहीं चलती। जरूरत पड़ने पर इनसे घास भी काटते हैं।



चित्र ३१—रीपर मशीन

अच्छे बीज—हमारे किसानों के बीज भी अच्छे नहीं होते। खेत बोते समय वह बाजार में जाकर सस्ते से सस्ते बीज खरीद लाते हैं। यदि उन्हें उधार लेना होता है तो वह महाजन द्वारा दिये गये बीजों पर ही निर्भर रहते हैं। यह बीज बहुत मामूली होते हैं और इस कारण फसल भी अच्छी नहीं होती।

प्रान्तीय सरकारों के कृषि-विभाग अपने खेतों पर पैदा किये हुए अच्छे बीज बीज-भंडारों में बेचते हैं। यह बीज अच्छे होते हैं तथा किसानों को यहीं से बीज खरीदने चाहिये। यदि संभव हो तो उन्हें सहकारी बीज समितियाँ खोल कर अच्छे बीज इकट्ठा कर उन्हीं को खेतों में बोना चाहिये।

फसल के कीड़े—हमारे देश में बहुत सी फसल कीड़ों के कारण नष्ट हो जाती हैं। कीड़े लगने का कारण यह है कि जब अनाज खत्तियों में या बोरो में भरा जाता है उस समय यह नहीं देखा जाता कि खत्ती या बोरे साफ हैं या नहीं। इस कारण बीज को कीड़ा लग जाता है और जब वह बोया जाता है तब फसल को भी कीड़ा खा जाता है। यह आवश्यक है कि खत्ती या कोठरी में अनाज भरते समय उसे अच्छी तरह साफ कर लिया जाय। गंधक का धुआँ या नीम की मत्ती का धुँआ देने से भी कीड़े मर जाते हैं। जब फसल को कीड़े लगने लगे तो उन्हें राख डाल कर दूर किया जाता है। विदेशों में तो इसके लिये अनेक उपाय किये जाते हैं और सरकार हवाई जहाज से कुछ कैमिकल पदार्थ खेतों पर डलवा कर कीड़े मरवा देती है। परन्तु हमारे देश में यह अभी नहीं होता। सरकार के कृषि-विभाग ने हर तरह के कीड़ों को मारने के लिये कुछ उपाय निकाल रखे हैं। आवश्यकता इस बात की है कि इनका व्यवहार अधिक व्यापक बनाया जाय तथा आवश्यकता के समय इन कैमिकलों को गाँवों में मुफ्त बाँटा जाय।

कीड़ों के अतिरिक्त टिट्ठी, चूहे, गिलहरी आदि भी अनाज खा-खा कर नष्ट कर देते हैं। चिड़ियाँ, तोते आदि भी फलों को नष्ट करते हैं। चूहों तथा गिलहरियों को रोकना आवश्यक है।

किसान इन्हें पकड़ते हैं, मारते हैं परन्तु इनकी संख्या कम नहीं होती। इनको कम करने के लिये सरकार को कुछ उपाय किसानों को बताने चाहिये।

बीमारियाँ—कृषि को गिरी हुई दशा का एक कारण गाँव वालों की शारीरिक कमजोरी है जो कि उन्हें बीमारियों में ग्रस्त हो जान के कारण हो जाती है। किसानों को मलेरिया, प्लेग, हैजा, दमा आदि बीमारियाँ हो जाती हैं जिसके कारण उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है तथा वह अशक्ति हो जाते हैं। इस कारण वह खेतों पर ठीक से काम नहीं कर सकते। यह आवश्यक है कि किसान स्वास्थ्यवर्धक भोजन करें, तथा बीमारी के समय उचित दवा-दारू करें।

धन की कमी—किसान गरीब हैं। उनके पास खेती करने के लिये पर्याप्त पूँजी नहीं है। इस कारण उन्हें रुपया उधार लेना पड़ता है। रुपया उधार लेने के लिये उन्हें महाजनों के पास जाना पड़ता है। साहूकार तथा महाजन उनसे काफी अधिक सूद वसूल कर लेते हैं और उनको इम बात के लिये बाध्य करते हैं कि वह फसल साहूकार के हाथ ही बेचे। फसल को वह फिर सस्ते दाम पर खरीद लेते हैं। इस कारण किसान अपनी गाड़ी कमाई का उचित मूल्य भी वसूल नहीं करने पाते। देश में सहकारी ऋण समितियाँ खुली हैं परन्तु वह अधिक धन उधार नहीं दे सकती। किसानों को अब भी साहूकारों के पास जाना पड़ता है। सरकार को चाहिये कि वह साहूकारों द्वारा ली जाने वाली ब्याज की अधिकतम सीमा निर्धारित कर दे जिससे वह किसानों से अधिक सूद वसूल न कर सके।

लगान की प्रथा—हमारे देश में लगान की प्रथा बहुत बुरी है। जमींदार किसानों से काफी लगान वसूल करते हैं जिसके कारण किसानों के पास कुछ भी नहीं बचने पाता और वह रुपया उधार लेकर लगान चुकाते हैं। इसका विस्तारपूर्वक वर्णन हम पहले अध्यायों में कर चुके हैं। सरकार जमींदारी प्रथा का अंत कर रही है। यह बात बहुत अच्छी है। इससे लाभ यह होगा कि किसान तथा सरकार के बीच नफा लेने वाले नहीं रहेंगे और लगान की दर कम हो जावेगी।

संगठन तथा प्रबंध—किसान खेती का प्रबन्ध ठीक से नहीं करते। न तो वह यह देखते हैं कि उन्हें क्या फसल बोनी चाहिये और उसे किस स्थान पर बेचना चाहिये। गाँव में फसल बेचने की व्यवस्था बहुत ही बुरी है। सबकों तथा यातायात की कमी के कारण यह कठिनाई और भी अधिक बढ़ गई है। किसानों को चाहिये कि वह सहकारी-क्रय-विक्रय समिति के सदस्य बन जायें जिससे उनकी फसल की बिक्री की समस्या सहल हो जाय। खेती का प्रबन्ध भी उन्हें ठीक ढंग से करना चाहिये।

सारांश

हमारे देश में कृषि की दशा बड़ी खराब है। दूसरे देशों के मुकाबले हमारे यहाँ खेती से पैदावार बहुत कम होती है। यह आवश्यक है कि खेती की दशा सुधारी जाय। कृषि की दशा सुधारने के लिये अनेक उपाय करने की जरूरत पड़ेगी।

सबसे पहले खेजों का छोटापन तथा छिटका होना दूर करना आवश्यक है। इसके लिए या तो चकबन्दी की जाय या सहकारी ढङ्ग पर मिलाकर खेती की जाय।

दूसरी समस्या खाद की है। किसान गोबर की खाद बना सकते हैं। परन्तु उसकी उपली बना कर वह जला डालते हैं। किसानों को चाहिए कि वह उपली न जलाकर उसकी खाद बनावें। खाद बनाने के लिए उनको चाहिए कि खेत में एक बड़ा सा गड्ढा खोद लें। उसमें वह गोबर, कूड़ा-करकट, मैला आदि डाल दिया करें। बाद में उसका मुँह मिट्टी से बन्द कर दें। थोड़े दिन बाद खाद तैयार हो जावेगी। जानवरों के पेशाब की भी खाद तैयार हो सकती है। किसानों को चाहिए कि वह जानवरों के नीचे सूखी मिट्टी बिछा दिया करें जिससे उनका पेशाब इसी मिट्टी में मिल जाया करे। इस मिट्टी को खेत में डालकर वह खेत की पैदावार बढ़ा सकते हैं। सरकार को चाहिए कि वह मैले की खाद बनवा कर किसानों के हाथ बेचे।

मेह के साथ खेतों की भूमि के उपजाऊ तत्व भी बह जाते हैं और खेत कम उपजाऊ रह जाता है। किसानों को चाहिये कि खेत के चारों ओर ऊँची २ मेंड बना दें जिससे पानी जोरों से न बहे। खेत में भी उन्हे बाँध बना देने चाहिए। खेत को क्यारियों में बाँट कर बोना चाहिये।

सिंचाई के साधनों की देश में कमी है। नहरों से सबसे ज्यादा सिंचाई होती है परन्तु उनकी संख्या काफी नहीं। तालाब दक्षिण भारत में अधिक पाये जाते हैं। संयुक्त प्रान्त में नहरों तथा कुओरों से ही अधिक सिंचाई होती है। आज-कल प्रान्तीय सरकार ट्यूब वेल लगवा रही है। इनको प्रान्त के पश्चिमी जिलों में लगवाया है तथा इनकी संख्या लगभग २,००० है। यह अच्छा काम दे रहे हैं और एक ट्यूब वेल से लगभग १,००० एकड़ भूमि सींची जा सकती है।

खेती की दशा अच्छी करने के लिए फसलों की हेरा-फेरी भी आवश्यक है। आजकल किसान अधिक फसल पैदा करने के लालच

से खेतों को परती नहीं छोड़ते। उनकी यह नीति गलत है। उनको खेत अवश्य परती छोड़ देने चाहिए। साथ ही फसल की हेरा-फेरी भी करनी चाहिए।

किसानों के खेत के औजार पुराने ढङ्ग के हैं और उन्हीं को वह अब भी व्यवहार में लाते हैं। प्रान्तीय सरकारों ने अच्छे ढङ्ग के हल तैयार कराये हैं। उनमें मेस्टन हल तथा राजा हल प्रसिद्ध हैं। इसी तरह निराई के लिए बार हैरो तथा लायलपुर हौ बनाये गए हैं। सरकार आजकल ट्रैक्टरों को भी प्रयोग में ला रही है। यह ऊसर भूमि पर, जो कि अब खेती के लिये उपयोगी बनाई जा रही है, काम में लाये जा रहे हैं।

किसानों को अच्छे बीज बोना चाहिए। अच्छे बीज उनको सहकारी बीज-भंडार से खरीदने चाहिये। यदि वह चाहें तो सहकारी बीज समितियाँ खोलकर वहाँ से बीज खरीदें।

फसलों को बहुत से कीड़े लग जाते हैं और फसलें नष्ट हो जाती हैं। किसान पेड़ों पर राख डाल कर कीड़ों को भगाते हैं परन्तु यह पर्याप्त नहीं। सरकार को इस ओर अधिक ध्यान देना चाहिए।

किसानों को अनेक बीमारियाँ हो जाती हैं। इस कारण उनका स्वास्थ्य खराब हो जाता है और वह मेहनत से काम नहीं कर सकते। उनको निरोग रहना आवश्यक है।

धन की कमी, लगान की बुरी प्रथा तथा प्रबन्ध की कमी के कारण खेती उन्नतिशील नहीं है। सहकारी ऋण समितियाँ खोलकर, जमींदारी प्रथा का अंत कर तथा खेती का प्रबन्ध सुधार कर खेती की उन्नति की जा सकती है।

प्रश्न

१. हमारे देश में कृषि की क्या दशा है ? विदेशों के मुकाबले क्या हमारे देश की कृषि उन्नतिशील नहीं ?
२. अपने देश की कृषि की गिरी दशा सुधारने के लिये आप क्या करेंगे ? विस्तारपूर्वक लिखिये ।
३. हमारे देश में कृषि की क्या २ समस्याये हैं ? उनको किस तरह सुलझाया जा रहा है ?
४. खेतों की चक्रवन्दी किस तरह की जा सकती है ? प्रान्तीय सरकारें इस दिशा में क्या कर रही हैं ?
५. खाद बनाने के क्या नये २ तरीके आप किसानों को बतावेंगे ? क्या उन उपायों पर चला जा सकता है ?
६. मेह के पानी से खेत का उपजाऊन किस तरह बह जाता है ? इस बुराई को किस तरह रोका जा सकता है ?
७. हमारे देश में सिंचाई के क्या २ साधन हैं ? क्या वह पर्याप्त हैं ? उनको किस तरह बढ़ाया जा सकता है ?
८. ट्यूब-वैलों से सिंचाई किस तरह बढ़ सकती है ? आपकी प्रान्त की सरकार ने इस दिशा में क्या कुछ किया है ?
९. फसलों की हेरा-फेरी से आप क्या समझते हैं ? फसलों को क्यों फेरा जाना चाहिये ?
१०. खेत को परती छोड़ने के क्या लाभ हैं ? किस फसल के बाद कौन सी फसल बोनी चाहिये ?
११. प्रान्तीय सरकारों ने खेती के क्या नये २ औजार बनाये हैं ? उनसे क्या खेती की उपज बढ़ सकती है ?

१२. फसलों को क्या र कीड़े लग जाते हैं ? इन कीड़ों को किस तरह हटाया जा सकता है ?
१३. धन की कमी से खेती के उत्पादन पर क्या प्रभाव पड़ता है ? सहकारी-श्रम समितियों ने इस दिशा में कैसा काम किया है ?

अध्याय पच्चीस

मुकद्दमेबाजी

जबसे हमारे गाँवों से पंचायत की प्रथा उठी, किसानों के बुरे दिन आ गये। पंचायत न होने के कारण उनको छोटे से भी झगड़े को निवटाने के लिए कचहरी जाना पड़ता था। आपस में किसानों में अब वह प्रेम नहीं रह गया है जो पहले था। अब तो ग्रामों में दलबंदियाँ होती हैं और छोटी सी भी बात पर मार-पीट और लाठियाँ चल जाती हैं। आपस की लड़ाई के अतिरिक्त उनके मुकद्दमे जमींदार तथा महाजनों से भी चलते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि किसानों को आये दिन कचहरी में मुकद्दमे के लिये जाना पड़ता है।

जहाँ झगड़ा आरम्भ हुआ कि किसानों के लुटने के दिन आ गये। यदि फौजदारी या चोरी का मामला है तो उन्हें थाने में जाकर रिपोर्ट लिखानी पड़ती है। थानेदार बिना रुपया लिये रिपोर्ट ही नहीं लिखता। इसके बाद गाँव में तहकीकात करने सिपाही तथा छोटे द्रोगा आते हैं। इनका गाँव में मुँह भरना पड़ता है जिससे यह सही रिपोर्ट लिखे। यदि इनको रुपया न मिला तो यह दूसरी तरफ के आदमियों से रुपया लेकर उनके माफिक रिपोर्ट लिख ले जाते हैं। इसके बाद मुकद्दमा आरम्भ होता है। किसानों को वकील करना पड़ता है। वकील पहले नजराना लेता है, फिर मेहनताना

लेता है। उसके ऊपर अपने मुहर्रिर के लिए भी रुपया लेता है। कागज, टाइप, नकल आदि के लिए अलग से रुपया लेता है। इतना सब कुछ करने पर कहीं वकील मुकद्दमा करने को तैयार होता है। इस पर भी रुपये खर्च करने का अंत नहीं। जिस अदालत में मुकद्दमा होता है उसके पेशकार को इन्हें रिश्वत देनी पड़ती है। गवाहों को गाँव से अदालत तक ले जाना पड़ता है। उनका खर्च देना पड़ता है। यह सब करने के बाद मुकद्दमा जीते तो जीते नहीं तो उन्हें फिर बड़ी अदालत (हाईकोर्ट) में अपील करनी पड़ती है और फिर वकील, गवाहों आदि पर खर्चा पहले से भी अधिक करना पड़ता है। हारने वाला किसान तो हारता ही है परन्तु जीतने वाला किसान भी इस तरह मिट जाता है कि सिवाय इतने गर्व के कि वह मुकद्दमा जीत गया है उसके हाथ कुछ भी नहीं लगता और रुपया चले जाने से कंगाल वह ऊपर से हो जाता है।

मुकद्दमों के कारण—मुकद्दमेबाजी के कई कारण हैं। जुर्म करने की भावना सामाजिक खराबियों के कारण ही उत्पन्न होती है। यदि मनुष्य सब प्रकार से संतुष्ट है तथा उसका मन शांत और हृदय सुखी है तो वह कभी भी कोई भी जुर्म नहीं करेगा। शांत तथा सुख की कमी के कारण ही सब खराबियाँ समाज में उत्पन्न होती हैं। हमारे किसानों की आर्थिक दशा बड़ी दयनीय है। उनको भर पेट भोजन भी नहीं मिलता। उनकी गाड़ी कमाई महाजन तथा जमींदार लूट ले जाते हैं। इससे उनके हृदय को दुःख होता है और बहुत से जुर्मों का यही कारण है। जहाँ भी किसी किसान ने उनका एक पैसा भर नुकसान किया बस वह लड़ बैठते हैं। जमींदारों से

तो डर के मारे वह कुछ कह नहीं पाते। इसलिये उनके हृदय में भरी हुई अग्नि छोटी सी ही बात पर भभक उठती है और आपस के लोगों पर निकलती है।

दूसरा महत्वपूर्ण कारण विद्या का अभाव है। वह एक दूसरे की बात समझने का प्रयत्न ही नहीं करते और जब वह गुस्ते में होते हैं उस समय उनकी समझने की रही-सही बुद्धि भी खो जाती है। हिंसा तथा बदले की भावना से प्रेरित होकर वह सब कुछ भूल जाते हैं। अपने काम का परिणाम भी नहीं सोचते और बस लड़ जाते हैं। यदि भगड़े के समय कोई व्यक्ति नीची जाति का हुआ और दूसरा ऊँची का तो फिर गाँव के ऊँची जाति के लोग उस नीची जाति वाले के ऊपर दूट पड़ते हैं। यदि नीची जाति वाले भी सब मिल गये तब तो फिर भगड़ा और भी अधिक बढ़ जाता है।

तीसरे गाँव वालों को स्वयं तो समझने की बुद्धि कम होती है। उन्हें अदालत का पहले-पहल ज्ञान भी कम होता है। जिन लोगों से वह सलाह लेने जाते हैं वह उन्हें और भी भड़काते हैं। फौरन उनको सलाह देते हैं कि वह थाने में रिपोर्ट लिखवा दे। बकीलों से यदि पूछा गया तब तो वह भी यही सलाह देते हैं कि फौरन मुकद्दमा दायर कर दिया जाय। सलाहकारों की गलत सलाह भी मुकद्दमे का एक कारण है।

चौथे, गाँवों में अब बीच-बचाव करने वाले नहीं रहे। जब गाँवों में पंचायतें थी तब तो वह सभी मुकद्दमों को सुलझा देती थीं। सरपंच का सभी कहना मानने थे। वह गाँव भर में सबसे नेक व्यक्ति होता था। परन्तु पंचायत की प्रथा उठ जाने से अब

उनको लाचार होकर कचहरी जाना पड़ता है। मार-पीट या चोरी-डकैती के समय यह आवश्यक है कि इसकी खबर थाने में क्रौरन ही की जाय।

पाँचवे, आजकल गाँव वालों में वह प्रेम नहीं रहा जो पहले था। व्यक्तिवाद के सिद्धान्त ने उनके प्रेम को नष्ट कर दिया है। गरीबी के कारण वह सहृदय भी नहीं रहने पाते। जब लोग उन्हें धोका देते हैं तो वह किसी का विश्वास करने से डरते हैं। प्रेम के अभाव के कारण बहुत से भगड़े उठ खड़े होते हैं।

छठे, कभी २ मुकद्दमे किसानों के करने या कराने से न होकर उनके ऊपर लाद दिये जाते हैं। महाजन तथा जमींदार रूपयों की वसूली या बेदखली के लिये उन पर मुकद्दमा लाद देते हैं और बेचारों को अदालत जाना पड़ता है।

मुकद्दमे से हानियाँ—मुकद्दमे से अनेक हानियाँ हैं। एक तो गरीब किसानों की आमदनी समाप्त हो जाती है और निर्धन से वह कंगाल हो जाते हैं। उनको किस तरह लूटा जाता है यह आपको मालूम है। दूसरे मुकद्दमा केवल गवाही के ऊपर निर्भर रहता है। मुकद्दमे का जीतना तथा हारना अधिकतर बकीलों के ऊपर निर्भर है। भूटे गवाहों को इकट्ठा कर वह भूठा मुकद्दमा जीत जाते हैं। इसलिये मुकद्दमा कर देने से ही यह जरूरी नहीं कि हमेशा सच्चा व्यक्ति ही मुकद्दमा जीतेगा। अदालत तो केवल कानूनी वहस देखती है। वह घटनास्थल पर तो होती नहीं और न वह उस मामले के बारे में कुछ जानती ही है। अतएव वह तो कानून पर चलती है वास्तविक घटना से

उनको कोई मतलब नहीं। तीसरे, मुकद्दमे में किसानों का बहुत सा समय नष्ट होता है। उनको मुकद्दमे की तैयारी करनी पड़ती है। बकीलों के घर दौड़ना पड़ता है। गवाहों की खुशामद करनी पड़ती है तथा उन्हें इकट्ठा करके ले जाना पड़ता है। कभी एक गवाह नहीं आ सकता तो कभी दूसरा। गाँव में आपस में अदावत हो जावेगी इस कारण वह गवाही देने से भी डरते हैं। फिर कचहरी में खड़े रहिये। कभी २ तो समय के अभाव के कारण उस दिन मुकद्दमा पेश भी नहीं होने पाता और गाँव वालों का बहुत सा समय नष्ट हो जाता है। मुकद्दमे लड़ने से, सभी की हानि है।

मुकद्दमे कम करने के उपाय—मुकद्दमे कम करने के लिये सबसे पहले गाँव वालों में शिक्षा का प्रचार होना चाहिये। उनको मुकद्दमा लड़ने के परिणाम को बताना चाहिये और यह समझाना चाहिये कि इससे हानियाँ ही अधिक हैं और लाभ कम। दूसरे गाँवों में पुनः ग्राम पंचायतें खोल देनी चाहिये जिससे वह कुछ भगड़े वहीं निपटा सकें। हर्ष की बात है कि संयुक्त प्रान्त की सरकार ने ग्राम पंचायत कानून पास करके इस तरफ अच्छा काम किया है। हमारे प्रान्त भर के गाँवों में पंचायती अदालतें खुल गई हैं जो कि १०० रु० तक के सब मुकद्दमे करती हैं। तीसरे, यदि जमींदारी प्रथा का अंत कर दिया जाय और महाजनों की बेईमान तथा ब्याज की दरों को कम कर दिया जाय तो उनके द्वारा किये जाने वाले मुकद्दमे कम हो जावेगे। बड़े हर्ष की बात है कि हमारी प्रान्तीय सरकार ने जमींदारी प्रथा को अंत करने का निश्चय कर लिया है और इस संबध में एक बिल शीघ्र ही पास हो जावेगा। महाजनों के

ऊपर भी सरकार ने काफी कानूनन रोक लगा दी है तथा अब वह मूल से अधिक सूद वसूल नहीं कर सकते और किसानों के बैल या बीज भी कुर्क नहीं करा सकते। चौथे, गाँवों में खेत-कूद के साधनों को बढ़ाना चाहिये जिससे गाँव वालों का मन उस तरफ लगा रहे। जब आदमियों को कुञ्ज नहीं करना रहता तभी वह लड़ते हैं। यह आवश्यक है कि उनके मन को हमेशा किसी न किसी काम में लगाये रखा जाय। हमारी प्रान्तीय सरकार इस तरफ भी ध्यान दे रही है। उन्होंने गाँवों में अखाड़े खोल कर व्यायाम कराने की योजना निकाली है। गाँवों में वाचनालय भी स्थापित किये हैं। कहीं २ रेडियो भी लगवा दिये हैं जिनसे गाँव वाले गाने, भजन आदि सुनते हैं। पाँचवे, किसानों की आर्थिक दशा सुधारने के लिये खेतों की उपज बढ़ाने का प्रयत्न करना चाहिये। किसानों को अच्छे बीज बोन के लिये देने चाहिये तथा खेती के नये २ औजारों का प्रयोग बताना चाहिये। गाँव में नये २ उद्योग-धन्धे भी खोलना चाहिये। हमारी प्रान्तीय सरकार ने इन सबके लिये भी काम किया है परन्तु वह काफी नहीं है और इसतरफ अधिक मदद की आवश्यकता है। अंत में किसानों के घर को अच्छा तथा सुन्दर बनाने का प्रयत्न करना चाहिये। उनको शिक्षा देनी चाहिये कि उनके घर साफ रहें, गाँव भी साफ रहें, गंदा पानी एक तरफ जाय तथा वह स्थान २ पर गंदगी न फैलावे। जब घर और गाँव साफ रहेंगे तो उनका मन भी प्रसन्न रहेगा और वह लड़ेंगे भी नहीं। मुकद्दमे तथा झगड़े इन्हीं तरीकों से कम हो सकते हैं।

सारांश

हमारे गाँवों के किसान लड़ते तथा मुकद्दमा करते रहते हैं।

इस कारण उनका काफी आर्थिक नुकसान होता है। निर्धन से वह कंगाल हो जाते हैं। उनका बहुत सा समय भी नष्ट हो जाता है और हमेशा के लिये दुश्मनी बन जाती है।

मुकद्दमेबाजी के कई कारण हैं। उनकी आर्थिक दीन दशा, सामाजिक विषमता, पढ़ाई की कमी, पंचायत का न होना, गलत सलाह देने वालों का भड़काना तथा प्रेम के अभाव के कारण मुकद्दमे होते हैं।

इनको रोकने के लिये गाँव वालों में शिक्षा का प्रचार करना चाहिये, जमींदारी प्रथा का अंत तथा महाजनों की बेईमानियों को रोकना चाहिये, पंचायतें स्थापित करनी चाहिये, गाँवों में खेल-कूद के साधनों को बढ़ाना चाहिये, उनकी आर्थिक दशा सुधारनी चाहिये और गाँव तथा घरों को साफ रखने की शिक्षा देनी चाहिये। मुकद्दमे तभी कम होंगे।

प्रश्न

१. गाँवों में मुकद्दमे होने के क्या कारण हैं ? समझाकर लिखिये।
२. मुकद्दमों से क्या हानियाँ हैं ? लिखिये।
३. मुकद्दमों को किस तरह रोका जा सकता है ? समझाइये।
४. पंचायती अदालतें मुकद्दमों को रोकने में क्या सहायता दे सकती हैं ? पंचायत राज्य कानून पास हो जाने से क्या हमारे प्रान्त में मुकद्दमेबाजी कम हो जावेगी ?

अध्याय छब्बीस

ग्रामीण-ऋण

हमारे देश के किसानों के पास आमदनी के साधनों की कमी है। खेती से उनकी इतनी आमदनी नहीं होती कि वह अपना खर्चा चला सके। घरेलू उद्योग धन्धे भी उनको आवश्यक आमदनी नहीं देते। न तो उनका पेट ही भरता है और न वह अपना अन्य खर्चा ही चलाने पाते हैं। लाचार होकर उन्हें रुपया उधार लेना पड़ता है। रुपया उधार लेने के लिये उन्हें महाजनों के पास जाना पड़ता है क्योंकि सहकारी बैंक या अन्य बैंक उन्हें केवल उत्पादन-कार्य के लिये ही रुपया उधार देती हैं उपभोग के लिये नहीं। महाजन उनसे काफी अधिक सूद वसूल करता है जो कि १०० या २०० प्रतिशत तक होती है। एक पैसा रुपया फी महीना साधारण तरीके पर ब्याज की दर है। एक तो यों ही किसानों की आमदनी कम होती है। ब्याज का रुपया तथा असल देना उनके लिये कठिन हो जाता है। ब्याज पर ब्याज बढ़ती जाती है। थोड़ा-बहुत जो कुछ वह देने पाते हैं उससे काम नहीं चलता। ब्याज जुड़ते २ मूल से भी अधिक हो जाती है और असल तथा सूद मिलाकर पहले से दूना हो जाता है। ऐसा होने पर माहवारी ब्याज और भी अधिक हो जाती है क्योंकि पहले यदि उसे १०० रु० पर ब्याज देनी पड़ती थी तो अब २०० रु० पर देनी पड़ती है। कहने का मतलब है कि किसान के लिये ब्याज तथा असल देना असंभव

सा हो जाता है। यद्यपि धीरे-धीरे करके वह असल से कहीं अधिक रुपया महाजन या साहूकार को दे चुका होता है फिर भी उसके ऊपर पहले से अधिक ऋण का बोझ होता है। अपने जीवन भर वह उस बोझ को नहीं चुकाने पाता और वह बढ़ता ही रहता है। उसके बाद वह बोझ उसके लड़कों पर पड़ता है और फिर वह पुस्तैनी हो जाता है। हमारे देश में किसानों के ऋण की यही दशा है।

ऋण का अन्दाजा—हमारे देश में सरकार ने सन् १९२९ में एक केन्द्रीय-बैंकिंग जाँच कमिटी की नियुक्ति की थी जिसका काम देश भर में गाँव वालों के ऊपर होने वाले ऋण का अनुमान लगाना भी था। इस केन्द्रीय जाँच कमिटी की प्रान्तीय-जाँच कमिटियाँ भी थीं। उन सबने मिलकर यह पता लगाया कि तमाम भारतवर्ष में किसानों के ऊपर लगभग ९०० करोड़ रुपये का कर्जा होगा। सबसे अधिक कर्जा बिहार प्रांत में था जो कि १५५ करोड़ रुपया था। दूसरा नम्बर मद्रास प्रान्त का था जहाँ पर १५० करोड़ रुपया कर्जा था। तीसरे नम्बर पर पंजाब था जहाँ कर्जा १३५ करोड़ था तथा चौथा नम्बर संयुक्त प्रान्त का था। यहाँ कर्जा १२४ करोड़ रुपया था। इसी कमिटी ने यह अनुमान लगाया था कि संयुक्त प्रान्त में ३३ प्रतिशत से ६० प्रतिशत किसानों पर कर्जा नहीं है। संयुक्त प्रान्त के १२४ करोड़ के कर्जे में से ७० प्रतिशत अनुत्पादक कार्यों के लिये लिया गया था।

सन् १९३१ के बाद हमारे देश में मन्दी फैल गई जिसके कारण खेती की फसलों के मूल्य काफी गिर गये और किसानों

की दशा और भी अधिक बिगड़ गई। उस समय अनुमान है कि ऋण और भी अधिक बढ़ गया होगा। कुछ विद्वानों का अनुमान है कि मन्दी के बाद कुल ऋण ९०० करोड़ से बढ़ कर अवश्य ही १,२०० करोड़ हो गया होगा।

सन् १९३९ के द्वितीय महासमर के आरम्भ हो जाने से फसलों के मूल्य बढ़े। पहले जहाँ एक रुपये का १२-१४ सेर गेहूँ बिकता था वह अब घट कर दो या ढाई सेर ही रह गया है। निस्संदेह इस कारण किसानों के पास रुपया बढ़ गया और उन्होंने उससे अपने कर्जे का बोझ भी हलका किया। मद्रास प्रान्तीय सरकार ने इस सम्बन्ध में एक जाँच कराई है और उस जाँच कमिटी का कहना है कि इस युद्ध के समय २० प्रतिशत ऋण कम हो गया है। किसानों ने रुपयों से सोना-चाँदी काफी खरीद लिया है। यदि वह चाहते और सरकार इस ओर ध्यान देती तो अवश्य ही उनके कर्जे का अधिकांश भाग कम हो जाता।

कर्जदार होने के कारण—किसानों के ऊपर कर्जा होने के निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) **किसानों की गरीबी—**ऋण होने तथा बढ़ने का सबसे महत्वपूर्ण कारण किसानों की गरीबी है। यदि किसानों की आमदनी ठीक होती और यदि उनके पास व्यय करने के लिये काफी रुपया होता तो वह कभी भी रुपया उधार न लेते।

इस गरीबी के अनेक कारण हैं—(१) किसानों के खेत छोटे तथा छिटके हैं जिसके कारण उन पर अच्छी फसल उग

नहां सकती, (२) भूमि के ऊपर आबादी का दबाव बहुत अधिक है। जरा सी भूमि पर उनको काफ़ी आदमियों के लिये भोजन पैदा करना पड़ता है जो कि संभव नहीं, (३) किसानों के पास सिंचाई के साधनों की कमी है, इस कारण उनको मेह के ऊपर अधिक निर्भर रहना पड़ता है, तथा (४) उनके खेती करने के तरीके पुराने हैं तथा खेती के औजार पुराने ढंग के हैं।

(२) अन्य उद्योगों की कमी—किसानों के पास खेती के अतिरिक्त कोई भी ऐसा काम नहीं जिसे वह कर सके। ग्रामीण उद्योग-धन्धों से उनको अधिक आमदनी नहीं होती तथा उनकी दशा भी अच्छी नहीं। देश में बड़े २ उद्योगों की कमी है इस कारण उनको कहीं दूसरी जगह अच्छी नौकरी भी नहीं मिल सकती। इसी कारण घर के सभी लोग अपनी जीविका के लिये खेती पर निर्भर रहते हैं।

(३) प्राकृतिक कठिनाइयाँ—खेती ऐसा काम है जिसमें लोगों को प्रकृति पर निर्भर रहना पड़ता है। मेह, बाढ़, धूप, लू, पाला, ओले, ठण्ड, कीड़े, टिड्डी आदि पर मनुष्य का कोई बस नहीं। वह जब चाहे तब आरम्भ हो सकते हैं और किसान की मेहनत तथा फसल चौपट कर सकते हैं। हमारे देश में बरसात में बाढ़ के पानी से खेती प्रायः नष्ट हो जाती है तथा गाँव बह जाते हैं। खेती पकी खड़ी है और ओले पड़ जाते हैं और फसल सड़ जाती है। कभी ऐसा होता है कि पानी ही नहीं पड़ता और खेत गर्मी के मारे सूख जाते हैं। अनुमान है कि पाँच वर्ष में दो वर्ष सूखा पड़ता है तो दो साल बाढ़ आती है। केवल एक साल खेती अच्छी होती है। खेती

का काम ही ऐसा है कि किसान को भगवान या प्रकृति के ऊपर आश्रित रहना पड़ता है।

(४) फिजूल खर्ची—बैंकिंग जाँच कमिटी ने यह कहा था कि किसानों के कर्जदार होने का एक कारण यह भी है कि वह सामाजिक कार्यों पर काफी बेकार का खर्चा कर देते हैं। गाँव वालों की सामाजिक प्रथाएँ ऐसी चल गई हैं कि अपनी इज्जत रखने के लिये उन्हें काफी रुपया खर्च करना ही पड़ता है। चाहे कोई किसान भूखे दिन काट रहा है परन्तु व्याह, शादी, मुएडन और मौत के समय तो उसे काफी खर्च करना ही पड़ता है। लाचार होकर वह रुपया उधार लेता है।

(५) मुकद्दमेबाजी—मुकद्दमेबाजी में भी गरीब किसान का काफी रुपया व्यय हो जाता है। किसान जब अदालत में जाता है तो सभी उसको अच्छी तरह लूटते हैं। श्रीयुत् कलवर्ट ने सन् १९२२ में पंजाब में जाँच करने के बाद यह पता लगाया था कि लगभग २५ लाख किसान जो अदालत में जाते हैं, तीन-चार करोड़ रुपया प्रतिवर्ष मुकद्दमेबाजी में खर्च कर देते हैं। इसीसे आप मुकद्दमेबाजी के ऊपर होने वाले खर्च का अनुमान लगा सकते हैं।

(६) लगान और मालगुजारी—आपको पहले ही बताया जा चुका है कि जमींदार यद्यपि सरकार को कम मालगुजारी देते हैं फिर भी वह किसानों से काफी लगान वसूल कर लेते हैं। लगान इस कड़ाई से वसूल किया जाता है कि किसान का बिना रुपया उधार लिये काम चल ही नहीं सकता।

(७) साहूकार तथा कर्ज देबे का तरीका—हमारे देश में महाजन या साहूकार बड़ी आसानी से रुपया उधार दे देते हैं। उधार रुपया देते समय न तो वह कुछ जमानत ही लेते हैं और न वह यह देखते हैं कि किसान किस लिये रुपया उधार ले रहे हैं। बस वह रुक्का लिखाकर तथा ब्याज की दर बढ़ा कर किसानों को रुपया उधार दे देते हैं। जब से भूमि की कीमत बढ़ी है तब से वह और भी अधिक मात्रा में रुपया उधार देने लगे हैं।

(८) पैतृक ऋण—हमारे देश में बहुत सा ऋण ऐसा है जो कि किसानों के बाप-दादों ने लिया था और अब उनको देना पड़ रहा है। किसान अपने पूर्वजों का ऋण चुकाने का भरसक प्रयत्न करते हैं। वह यह कानून नहीं जानते कि वह केवल उतना ही कर्जा चुकाने के जिम्मेदार हैं जितनी कि उन्हें सम्पत्ति मिली है। यदि वह कानून जानते भी हैं तो भी वह अपने पूर्वजों का कर्जा चुकाना अपना धर्म समझते हैं।

कर्जे से हानियाँ—कर्जा लेने के कारण किसानों को अनेक हानियाँ होती हैं। उनको ब्याज के रूप में काफी रुपया तो देना ही पड़ता है परन्तु इससे भी अधिक हानि यह होती है कि उनकी भूमि महाजनों के पास चली जाती है। यह महाजन स्वयं तो खेती करते नहीं परन्तु खेत के मालिक हो जाने पर वह बटाई प्रथा के अनुसार या लगान पर काश्तकारों को खेत जोतने के लिये उठा देते हैं। इन काश्तकारों को खेत पर मौरूसी या अन्य किसी प्रकार के अधिकार प्राप्त नहीं होते। वह केवल साहूकार की मर्जी तक एक निश्चित लगान देकर तखे

जोतते हैं और नफा साहूकार को होता है। खेती न करने वाले भूमि के मालिक किसानों पर और भी अधिक जुल्म ढाते हैं। यही नहीं दबाव के कारण किसानों को फसल सस्ते दाम पर साहूकार के यहाँ बेचनी पड़ती है। इस तरह कर्जा लेने वाला किसान किसी भी तरह नहीं पनपने पाता।

सरकार द्वारा ऋण की समस्या सुलझाने के प्रयत्न—
सरकार ने ऋण की समस्या सुलझाने के लिये अनेक काम किये हैं। जब उन्नीसवीं सदी के आखिरी काल में दक्षिणी भारत तथा अजमेर आदि स्थानों पर महाजनों के जुल्मों से तंग आकर किसानों ने उपद्रव करके बहुत से साहूकारों को मार डाला तथा उनके घर जला दिये तब सरकार ने एक बलवा-कमीशन सन् १८७५ में बैठाया था। उसको यह कार्य सौपा गया था कि वह बलवों के कारणों का पता लगावे। कमीशन की राय में बलवों का कारण सूद की अधिक दर थी। इस पर सरकार ने किसानों को अधिक सूद से बचाने के लिये कई कानून पास किये। उन्होंने अदालतों को यह अधिकार दे दिया कि वह कर्जों के किसी भी मुकद्दमे में ब्याज की दर घटा कर उचित दर स्वयं ही निर्धारित कर सकती हैं। इस तरह महाजनों की सूद दरों पर एक नियन्त्रण सा लग गया। यही नहीं यदि कोई किसान खेती में सुधार करना चाहता था तो सरकार उसे लम्बे समय के लिये भूमि में स्थायी सुधार करने के लिये कर्जा देने लगी। सरकार थोड़े समय के लिये भी सस्ते सूद पर कर्जा देने लगी। इन कर्जों को तकावी ऋण कहा जाता था तथा इन्हें Land Improvement Loans Act और Agricultural Loans Act के अनुसार दिया जाता था। परन्तु क्योंकि

सरकार तकाबो में थोड़ा सा ही रुपया उधार देती थी तथा रुपया समय पर न चुकाने पर बहुत कड़ाई से काम लेती थी इसलिये यह सरकारी ऋण लाभप्रद न हो सके और किसानों की दशा न सुधरी ।

महाजन भूमि को रहन रख कर रुपया उधार देते थे और रुपया न मिलने पर भूमि के वह मालिक बन जाते थे । इस तरह किसानों के हाथ से भूमि निकल जाने लगी । और साहूकार उसके मालिक बनने लगे । किसानों की इस कारण हालत काफी बिगड़ने लगी । अत में पंजाब सरकार ने अपने प्रान्त में एक कानून पास किया जो कि पंजाब लैंड एलीनीयेशन (Punjab Land Alienation Act) कहलाता है । इसके अनुसार खेती न करने वाले साहूकार कर्जे के बदले में किसानों के खेत नहीं ले सकते थे । इसी तरह का कानून संयुक्त प्रान्त की सरकार ने भी पास किया । अन्य प्रान्तों ने भी इसी तरह के कानून पास किये । परन्तु फिर भी ऋण की समस्या हल न हुई । इसी समय देश के कुछ विद्वानों ने सरकार से यह अनुरोध किया कि वह ऋण की समस्या हल करने के लिए देश में सहकारी समितियों को खोलने की आज्ञा दे दे । भारत सरकार ने सन् १९०४ में एक सहकारी समिति कानून पास कर दिया जिसके अनुसार देश में सहकारी ऋण समितियाँ खुलना कानूनन माननीय हो गया । परिणाम स्वरूप हमारे देश में बहुत सी सहकारी ऋण समितियाँ खुलीं । परन्तु वह ऋण की समस्या हल न कर सकीं । इन समितियों ने ऋण की दर कुछ तो अवश्य कम कर दी है परन्तु धन के अभाव के कारण यह किसानों को उनकी आवश्यक-

कता के अनुसार ऋण नहीं दे सकती। किसानों को अब भी आवश्यकता के समय, विशेषतः जब वह उपभोग के लिए कर्जा चाहते हैं, साहूकारों के पास जाना पड़ता है।

जब ऋण की समस्या आसानी से हल होते हुए न दीखी तो कुछ विद्वानों ने प्रान्तीय सरकारों से यह कहा कि वह ऋण परिशोध (Debt conciliation) के लिए आवश्यक कानून पास कर दें। केन्द्रीय बैंकिंग जाँच कमेटी ने भी सरकार को ऋण परिशोध की नीति अपनाने की राय दी थी। प्रान्तों ने यह बात मान ली और धीरे-धीरे करके मध्य प्रान्त, बंगाल, आसाम, पंजाब आदि प्रान्तों में ऋण समझौता बोर्ड स्थापित किए गए जिनका कार्य महाजनों से मिल कर किसानों के ऋणों को कम कराना था। इन बोर्डों ने थोड़े से समय में ही अच्छा काम कर दिखाया है तथा २० से ३० प्रतिशत कर्जों के मामलों में इन्होंने समझौता करा दिया है। प्रान्तों में कांग्रेसी सरकार बन जाने पर और भी बहुत से कानून पास हुये हैं जिसके अनुसार किसानों को साहूकारों के चंगुल से बचाने के प्रयत्न किये गये हैं।

संयुक्त प्रान्त में कर्ज सम्बन्धी कानून—इन पन्द्रह-बीस सालों के अन्दर हमारे संयुक्त प्रान्त की सरकार ने किसानों को ऋण से मुक्त करने के लिये बहुत से कानून पास किये हैं। सन् १९३४ में सरकार ने इस सबन्ध में पाँच कानून पास किये जिसमें सबसे महत्वपूर्ण संयुक्त प्रान्तीय-किसान-भलाई कानून है जो कि ३० अप्रैल सन् १९३५ में लागू हुआ। इसके अनुसार वह सब किसान जो १००० रु० वार्षिक से कम मालगुजारी देते थे अपने कर्जों को किरतों में चुकता

कर सकते हैं तथा उनको केवल ३३ प्रतिशत ब्याज देनी पड़ेगी। दूसरे कानून के अनुसार जो कि U. P. Usurious Loans Act कहलाता है, ब्याज की दर रहन रख कर लिए हुये कर्जे पर या सुरक्षित ऋण पर १२ प्रतिशत तथा बिना जमानत वालों पर २४ प्रतिशत नियत कर दी गई। संयुक्त प्रान्तीय बिक्री-नियन्त्रण कानून (U. P. Regulation of Sales Act, 1934) के अनुसार यदि महाजन ऋण के बदले में किसानों के खेत कुड़क कराते थे तो खेतों का मूल्य बाजार भाव पर निश्चित नहीं किया जाता था परन्तु उनके वह दाम लगाये जाते थे जो कि मन्दी के पहले कलक्टर द्वारा तय किए गए थे।

सन् १९४० में सरकार ने कर्जा चुकाने के लिए एक नया कानून पास किया जो कि U. P. Debt Redemption Act कहलाता है। यह जनवरी १९४० में लागू हुआ। सरकार ने यह कहा कि सन् १९३४-३५ में पास किए हुए कानूनों से किसानों की दशा नहीं सुधरी है और कर्जा जितनी आशा थी उतना कम नहीं हुआ है। इस कारण १९४० के कानून के अनुसार उन्होंने ब्याज की दर निश्चित कर दी। साहूकार बिना जमानत पर दिए हुए कर्जे पर ६ प्रतिशत तथा जमानत पर दिए हुए कर्जे पर साढ़े चार प्रतिशत साधारण ब्याज वसूल कर सकते हैं। सरकार ने यह भी पास कर दिया कि एक किसान की उतनी भूमि जिस पर वह स्थायी बन्दोवस्त में साढ़े बारह रुपया लगान देता है या अस्थायी बन्दोवस्त में २५ रु० लगान देता है कुड़क नहीं कराई जा सकती। सरकार ने यह भी पास कर दिया है कि एक काश्तकार की एक तिहाई से अधिक फसल कुड़क नहीं की जा सकती। यह कानून अनिवार्य रूप

से लागू होते हैं और इस तरह किसानों का ऋण कम हो गया है।

सारांश

हमारे देश के किसानों पर सन् १९२६ में ६०० करोड़ रुपये का कर्जा था। मन्दी के समय में अनुमान था कि यह कर्जा बढ़कर १,२०० करोड़ हो गया होगा। दूसरे महासमर के समय से यह ऋण कम हो गया होगा।

ऋण के बढ़ जाने के कई कारण हैं। किसानों की गरीबी, अन्य उद्योगों का अभाव, प्राकृतिक कठिनाइयाँ, फिजूलखर्ची, मुकद्दमेवाजी, लगान तथा मालगुजारी की बुरी प्रथा, साहूकार का कर्ज देने का तरीका तथा पैतृक ऋण के कारण कर्जा बढ़ गया है।

कर्ज से अनेक हानियाँ हैं। किसान का काफी रुपया ब्याज के रूप में निकल जाता है। भूमि महाजनों के पास चली जाती है तथा उसे फसल भी सस्ते दामों पर बेचनी पड़ती है।

सरकार ने कर्ज से किसान को बचाने के अनेक उपाय किये हैं। उन्होंने अदालतों को यह अधिकार दे दिया है कि वह स्वयं सूर की दर निर्धारित कर दें। सरकार तकावी रुपया उधार भी देती है। सहकारी ऋण समितियाँ खोलने की आज्ञा दे दी है। प्रान्तीय सरकारों ने ऋण-परिशोध के लिये कानून पास कर दिये हैं।

संयुक्त-प्रान्त की सरकार ने भी इत सम्बन्ध में कई कानून पस किये हैं। इनमें U. P. Usurious Loans Act, U. P. Regulation of Sales Act; U. P. Debt Redemption Act प्रसिद्ध हैं। सरकार ने ऋण-परिशोध बोर्ड भी खोले हैं जो अच्छा काम कर रहे हैं।

प्रश्न

१. गाँववाले ऋण क्यों लेते हैं ? इसके बढ़ जाने के क्या कारण हैं ?
२. गाँववालों पर कितना ऋण होगा ? क्या आप अनुमान लगा सकते हैं ? आपके प्रान्त के किसानों पर कितना ऋण है ?
३. ऋण लेने से क्या हानियाँ हैं ? विस्तार से लिखिये ।
४. भारत-सरकार ने ऋण के बोझ को हलका करने के लिये क्या २ कदम उठाये हैं ? विस्तारपूर्वक लिखिये ।
५. संयुक्त प्रान्त की सरकार ने गाँववालों को महाजनों के चंगुल से बचाने के लिये क्या २ किया है । लिखिये ।
६. ऋण-परिशोध से आप क्या समझते हैं ? क्या इस सम्बन्ध में कुछ कानून बने हैं ? ऋण-परिशोध बोर्डों ने क्या काम किया है ?
७. संयुक्त प्रान्त की सरकार द्वारा पास किये हुए ऋण-परिशोध कानून, १९४० (Debt Redemption Act, 1940) की मुख्य २ धराराओं को बताइये । इस कानून से क्या लाभ हुआ है ?
८. ऋण कम करने में सहकारी-ऋण-समितियाँ कहाँ तक सफल हो सकी हैं ? इनको अधिक सफल किस तरह बनाया जा सकता है ?

अध्याय सत्ताईस

गाँव तथा जिले का शासन

भारतवर्ष एक बहुत बड़ा प्रदेश है। क्षेत्रफल के हिसाब से इसे महाद्वीप कहा जाता है। इस महाद्वीप का शासन दहली से बैठ कर नहीं किया जा सकता। अतएव देश को शासन की सुविधा के कारण कई प्रान्तों में बाँट दिया गया है। इस तरह के हमारे देश में नौ प्रान्त हैं। प्रान्तों को कमिश्नरियों में बाँट दिया जाता है और एक कमिश्नरी का अफसर कमिश्नर होता है। एक कमिश्नरी के भीतर कई जिले होते हैं और प्रत्येक जिले का अध्यक्ष या सबसे बड़ा अफसर जिलाधीश (District Magistrate) होता है। परन्तु वह लगान भी वसूल करता है इसलिए वह कलेक्टर (Collector) भी कहलाता है। यह दोनों औहदे एक ही व्यक्ति संभालता है इसलिये उसे जिलाधीश तथा कलेक्टर (District Magistrate and Collector) कहते हैं। एक जिले के अन्दर कई तहसीलें होती हैं जिनका बड़ा अफसर तहसीलदार कहलाता है। तहसीले कई गाँवों को मिलाकर बनती हैं। परन्तु शहरों में तहसीलदार नहीं होते। उन्हें शहर कोतवाल (City Magistrate) कहा जाता है। एक शहर की देखभाल के यही जिम्मेदार हैं। तहसीलदारों के नीचे प्रत्येक गाँव में पटवारी तथा चौकीदार होते हैं। इस तरह एक गाँव का चौकीदार देश की शासन-सत्ता का एक अंग है जिसका सबसे बड़ा अफसर गवर्नर-जनरल होता है।

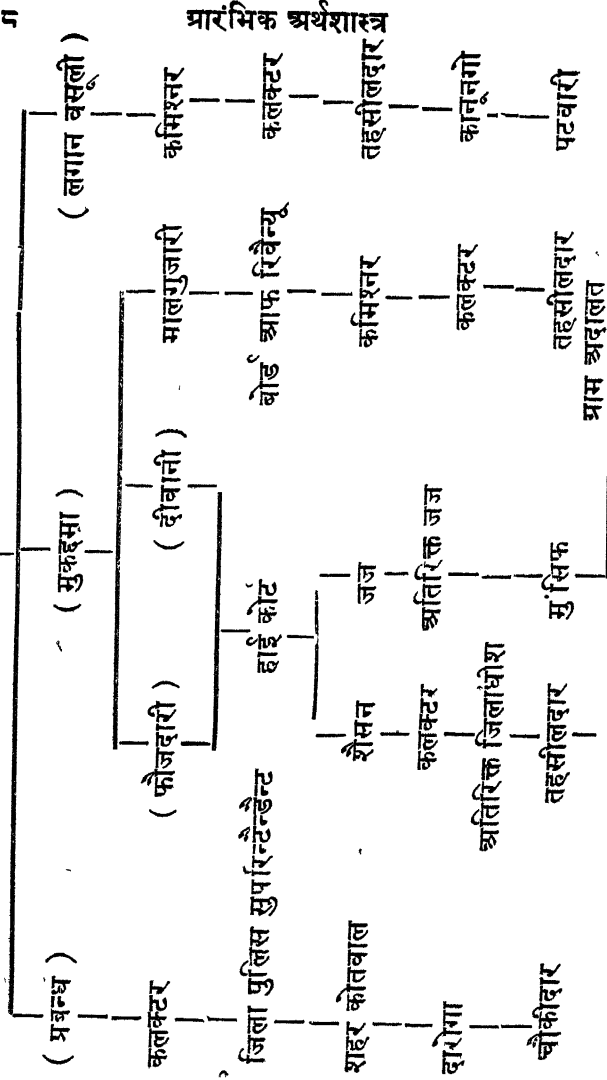
शासन में कई बातें आती हैं—(१) प्रांत में शान्ति रखना, जो काम पुलिस करती है (२) गाँव वालों से लगान वसूल करना जिसके लिये कमिश्नर सबसे बड़ा अफसर है, (३) मुकद्दमों का फैसला करना जिससे किसी के साथ अन्याय न हो तथा (४) प्रान्त की सफाई रखना जिससे लोगों का स्वास्थ्य खराब न हो। शासन में यह सभी बातें आती हैं। यह सब कार्य अलग २ होते हुए भी एक दूसरे से काफी सम्बन्धित हैं और यह आवश्यक है ऊपर दिये हुये विभिन्न काम करने वाले अफसरों में आपस में एकता हो। एकता स्थापित करने में कलक्टर का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। वह जिले भर के शासन के विभिन्न अंगों का निरीक्षण करता है। अगले पृष्ठ पर दी गई तालिका से आप समझ जावेंगे कि शासन के विभिन्न अङ्ग किस प्रकार से एक दूसरे से मिलकर काम करते हैं। तालिका को अच्छी तरह समझ लेने के पश्चात् यह आवश्यक हो जाता है कि विभिन्न कर्मचारियों के कार्यों का वर्णन किया जाय। विभिन्न कर्मचारियों के निम्नलिखित कार्य हैं :—

कमिश्नर—केवल मद्रास प्रान्त को छोड़कर अन्य सब प्रान्तों को कमिश्नरियों में बाँट दिया गया है। एक कमिश्नरी के काम की देख-भाल कमिश्नर करता है। कमिश्नर के नीचे छोटे कमिश्नर तथा अतिरिक्त कमिश्नर भी होते हैं।

कमिश्नरों का काम मालगुजारी के सभी कामों की देखभाल करना है। इनको कमिश्नरी या जिले के प्रबन्ध से कोई विशेष मतलब नहीं। इनको मालगुजारी के मामलों में महत्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हैं। मालगुजारी के मुकद्दमों की अपील भी यह

जिले का शासन

३३



सुनते हैं। लगान वसूल करने के सबसे बड़े अफसर यही हैं और अपने आधीन कलक्टरों के कार्यों का यह निरीक्षण करते हैं। इनके ऊपर मालगुजारी के मामलों को तय करने वाली अदालत केवल बोर्ड-आफ-रिवैन्यू ही है।

बोर्ड आफ रिवैन्यू—मालगुजारी के मामलों में सबसे बड़ा अधिकार बोर्ड-आफ-रिवैन्यू को प्राप्त है। यह कोर्ट-आफ-वार्ड के कामों की देख-रेख करता है तथा जो भी स्टेट इसके आधीन आ जाती है उनका प्रबन्ध भी करता है। मालगुजारी के मामलों में यह अपील की आखिरी अदालत है।

कलक्टर—हमारे देश की शासन-प्रणाली में कलक्टर का स्थान बहुत महत्वपूर्ण है। यह शासन-प्रणाली के विभिन्न अंगों को एक सूत्र में बाँधने का काम करते हैं। यह जिले भर की मालगुजारी वसूल करने के जिम्मेदार होते हैं। इसी कारण इनको कलक्टर कहा जाता है। मालगुजारी वसूल करने के साथ-साथ यह जिले में उठने वाले भूमि सम्बन्धी मामलों पर विचार करते हैं, खेतों की अदला-बदली, जमींदार तथा किसानों के झगड़ों का निपटारा; दुर्भिक्ष तथा बाढ़ से फसल के नष्ट हो जाने पर या किसी अन्य आवश्यकता के समय किसानों को सरकार द्वारा रुपया उधार दिलाने आदि का काम भी यही करते हैं। मालगुजारी को मुकदमों का फैसला भी यह सुनाते हैं।

ज़िला मजिस्ट्रेट—कलक्टर ही जिला मजिस्ट्रेट भी होते हैं। जिला मजिस्ट्रेट की हैसियत से यह जिले भर में शान्ति स्थापित रखने के जिम्मेदार होते हैं। इसलिए यह स्थानीय पुलिस के कार्यों का निरीक्षण भी करते हैं। जिला सुप-

रिन्टैन्डैन्ट भी इन्हीं की सलाह से काम करते हैं। फौजी मुकद्दमों का भी यह फैसला सुनाते हैं और यह दो साल की कैद तथा १००० रु० तक जुमाना कर सकते हैं। इनके नीचे अतिरिक्त ज़िलाधीश भी होते हैं जो इनके बताये हुए कामों को करते हैं।

इसके अतिरिक्त यह ज़िला बोर्ड तथा म्युनिसिपैल्टी के कामों की निगरानी रखते हैं। जेल, शिक्षा, सड़क, सफ़ाई, सहकारिता, अस्पताल आदि का प्रबन्ध भी इन्हीं को देख-भाल में होता है। सूदम में ज़िले का ऐसा कोई भी महत्वपूर्ण कार्य नहीं जो इनकी सलाह से न हो।

छोटे ज़िला अफसर—प्रबन्ध की सहूलियत के लिए एक ज़िले को कई भागों में बाँट दिया जाता है जो डिवीजन कहलाते हैं। प्रत्येक डिवीजन में एक डिप्टी कलक्टर होता है। वह अफसर अपने डिवीजन के उन सब कार्यों के लिये जो एक कलक्टर को करने पड़ते हैं, जिम्मेदार होता है।

तहसीलदार—एक डिवीजन में कई तहसीलें होती हैं। तहसील का अफसर तहसीलदार कहलाता है। उसके काम मुख्य दो हैं:—(१) तहसील की मालगुजारी वसूल करना तथा (२) फौजदारी मुकद्दमों को सुनना। तहसीलदार को दूसरे या तीसरे दर्जे के मजिस्ट्रेट के अधिकार प्राप्त होते हैं और यह एक महीने से ६ महीने तक की सज़ा दे सकते हैं तथा ५० रु० से २०० रु० तक जुमाना कर सकते हैं।

कानूनगो—तहसीलदार को सहायक कर्मचारी भी मिले रहते हैं जो नायब-तहसीलदार या कानूनगो कहलाते हैं। प्रत्येक

कानूनगो को एक परगना दे दिया जाता है। यह उस परगने के पटवारियों के कार्यों का निरीक्षण करते हैं तथा लगान वसूल कराने में सहायता देते हैं।

पटवारी—पटवारी गाँव का अफसर होता है। कभी-कभी दो या दो से अधिक छोटे-छोटे गाँवों को मिला कर एक पटवारी नियुक्त कर दिया जाता है। गाँव वालों के लिये यह अत्यन्त महत्वपूर्ण अफसर है क्योंकि यह गाँव के किसान तथा जमींदारों के भूमि सम्बन्धी कागजात स्वयं तैयार करता है तथा उनको अपने पास रखता है। यदि खेत की सीमा में या क्षेत्रफल में या उसके अधिकारी में कोई भी परिवर्तन हो तो सबसे पहले पटवारी अपने कागजों में यह बात लिखता है और इसकी रिपोर्ट तहसील में करता है। वह खेतों के नक्शे भी बनाता है जिसमें खेतों के हद्द की नापतौल रहती है। पटवारी के कागज भूगड़े के समग्र सच माने जाते हैं और उन्हीं को अदालत में मंगाया जाता है।

खेतों की नापतौल के अतिरिक्त यह खेतों की पैदावार, उन पर पैदा की हुई फसल का अलग-अलग हिसाब, गाँव की आबादी तथा जानवरों की संख्या का हिसाब भी रखते हैं।

चौकीदार—एक तहसील में अनेक गाँव होते हैं। गाँव की देख-रेख तथा चौकसी के लिए एक चौकीदार होता है। वह मारपीट, खून-खचर, चोरी-डकैती आदि जुर्मों की खबर पुलिस थाने में एक सप्ताह में दे देता है। और आवश्यकता पड़ने पर पुलिस की सहायता भी करता है। उसे जन्म-मरण की खबर भी देनी पड़ती है।

पचायतों का गाँवों की शासन-प्रणाली में बड़ा महत्वपूर्ण स्थान हो जावेगा।

पुलिस अफसर—हम आपको जिला सुपरिन्टैन्डेंट के बारे में बता चुके हैं। यह पुलिस का जिले भर का सबसे बड़ा अफसर है जो कि जिलाधीश की आज्ञा से काम करता है। जिला सुपरिन्टैन्डेंट के नीचे छोटा सुपरिन्टैन्डेंट-पुलिस होते हैं जो कि एक डिवीजन में शांति स्थापित रखने के लिये जिम्मेदार होते हैं। प्रत्येक तहसील में एक दरोगा होता है। थाने में दरोगा के नीचे छोटे दरोगा भी होते हैं। छोटे दरोगाओं के नीचे दीवान होते हैं और दीवानों के नीचे सिपाही। यह सब एक ही थाने में पाये जाते हैं। इनकी संख्या एक तहसील के काम पर निर्भर रहती है।

सारांश

हमारे देश में शासन का ढंग बड़ा अच्छा है। पूरे देश को प्रान्तों में, प्रान्तों को कमिश्नरियों में, कमिश्नरी को जिलों में, जिलों को डिवीजनों में, डिवीजनों को तहसील में तथा तहसीलों को गाँवों में बाँट दिया गया है तथा प्रत्येक इकाई का एक अफसर होता है जो कि ऊपर वाले अफसर के अधीन होता है।

कमिश्नर एक कमिश्नरी का मालिक होता है तथा इनका काम मालगुजारी वसूल करना तथा मालगुजारी संबंधी मामलों की जाँच-पड़ताल तथा मुकद्दमें करना है। इनकी अपील केवल बोर्ड-आफ-रिव्यू में होती है जो कि मालगुजारी के मुकद्दमों को सुनता है तथा कोर्ट-आफ वार्ड्स में आई हुए जमींदारियों की देख-भाल करता है।

कलक्टर के कई काम हैं। यह कमिश्नर के नीचे मालगुजारी वसूल करने के जिले भर के सबसे बड़े अफसर हैं। साथ ही जिले-

भर में शांति स्थापित रखने के भी जिम्मेदार हैं। इसलिये पुलिस के सब अफसर इन्हीं की सलाह से काम करते हैं। जिले की सफाई भी इन्हीं के अधीन है। अतएव म्युनिस्पैल्टी तथा डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड भी इन्हीं की सलाह से काम करते हैं।

कलक्टर के नीचे डिप्टी कलक्टर भी होते हैं जो एक डिवीजन के मालिक होते हैं तथा वही कार्य करते हैं जो कि कलक्टर करते हैं। उनके नीचे तहसीलदार होते हैं जो कि एक तहसील की मालगुजारी वसूल करने के जिम्मेदार होते हैं तथा वह मालगुजारी के मुकद्दमें भी करते हैं। फौजदारी मुकद्दमें भी यह करते हैं।

तहसीलदारों के नीचे कानूनगो होते हैं जो कई एक गाँवों में लगान वसूल करते हैं। इनके नीचे पटवारी होते हैं जो कि गाँवों में किसान तथा ज़मींदारों के भूमि-संबन्धी अधिकारों का हिसाब रखते हैं। खेतों की हद तथा उनके मालिकों का नाम यही दर्ज करते हैं तथा इसकी खबर तहसील में देते हैं।

गाँवों का अन्य अफसर चौकीदार है जो कि गाँव में अमन-चैन का जिम्मेदार है तथा हर एक जुर्म की खबर पुलिस थाने में देता है। इनके अतिरिक्त गाँव में लम्बरदार, पटेल तथा मुखिया भी होते हैं जिनका काम मालगुजारी वसूल करना तथा गाँव में शान्ति रखना है। हमारे प्रान्त में ग्राम पंचायत कानून पास हो गया है। अब पंचायत गाँव की शासन-प्रणाली में अत्यन्त महत्वपूर्ण काम करेगी।

पुलिस अफसरों में जिला सुपरिन्टैन्डेंट पुलिस के नीचे, छोटे पुलिस सुपरिन्टैन्डेंट होते हैं। उनके नीचे दरोगा होते हैं। दरोगा के नीचे दीवान, जिनके नीचे सिपाही होते हैं। गाँवों में चौकीदार होते हैं।

प्रश्न

१. हमारे देश में शासन-प्रणाली की क्या व्यवस्था है ? विस्तार पूर्वक लिखिये ।
२. हमारे देश में मुकद्दमों का फैसला करने के लिये कितनी तरह की अदालतें हैं ? मुकद्दमों को कौन करते हैं ?
३. गाँव की शासन-प्रणाली में जिला-मजिस्ट्रेट का क्या स्थान है ? इनके क्या २ काम हैं ?
४. 'कलक्टर शासन के विभिन्न अंगों को जोड़ते हैं' । इस कथन का स्पष्टीकरण कीजिये ।
५. हमारे देश के शासन में विभिन्न अफसरों के क्या २ काम हैं ? विस्तारपूर्वक लिखिये ।

हाई-स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. अपने जिले के प्रबन्ध के बारे में बताइये । पटवारी या मुखिया का प्रबन्ध में क्या काम है ? (१९४३)
२. अपने जिले के प्रबन्ध को विस्तार-पूर्वक बताइये । चौकीदार, पटवारी तथा तहसीलदार के कामों को और ग्रामीण जनता के लिये उनके महत्व को बताइये । (१९४५)

अध्याय अट्ठाईस

ग्राम-स्वराज्य

पिछले अध्याय में हम आपको मालगुजारी, शान्त तथा मुकदमों से सम्बन्ध रखने वाले अफसरों के बारे में बता चुके हैं। जिले की सफाई रखना भी शासन का एक अङ्ग है। इस अध्याय में हम सफाई से सम्बन्ध रखने वाली संस्थाओं के बारे में आपको बतावेंगे।

प्रान्त भर की सफाई तथा स्वास्थ्य का कार्य प्रान्तीय सरकार का है। उन्होंने यह कार्य जनता द्वारा चुने हुए व्यक्तियों को दे दिया है और स्वयं उनके कामों का निरीक्षण मात्र ही करती है। स्वास्थ्य तथा सफाई से सम्बन्ध रखने वाली संस्थाएँ दो प्रकार की हैं—एक तो वह जो शहर में काम करती हैं तथा उनको म्युनिस्पैलिटी कहा जाता है तथा दूसरी वह जो गाँवों में काम करती हैं। जो संस्था जिले भर के गाँवों की सफाई का ध्यान रखती है उसे जिला बोर्ड (District Board) कहा जाता है। सब प्रान्तों में (केवल संयुक्त प्रान्त तथा पंजाब को छोड़कर) उनके नीचे लोकल बोर्ड या तालुका बोर्ड होते हैं जो एक तालुका की सफाई तथा स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखते हैं। इनके नीचे प्रत्येक गाँव में एक पंचायत कमिटी होती है। इन कमिटियों ने संयुक्त प्रान्त तथा पंजाब में ही अधिक उन्नति की है।

जिला बोर्ड

(District Boards)

जिला बोर्ड जिले भर के ग्रामीण भाग में उन्नतिजनक कार्य करते हैं। उनके कार्य निम्नलिखित हैं :—

(१) शिक्षा का प्रसार—इस कार्य की पूर्ति के लिये यह प्राइमरी तथा मिडिल स्कूल खोलते हैं। अध्यापकों की नियुक्ति करते हैं, स्कूलों की इमारत बनवाते हैं तथा उनको चलाने का खर्चा देते हैं। साथ ही यह गाँवों में पुस्तकालय तथा वाचनालय भी खोलते हैं। कृषि-संबन्धी शिक्षा देने का भी यह आयोजन करते हैं।

(२) स्वास्थ्य की रक्षा—गाँव वालों के स्वास्थ्य की रक्षा का भार भी इन्हीं के ऊपर है। इसलिये यह गाँवों में अस्पताल तथा औषधालय खुलवाते हैं, वहाँ दवा का प्रबन्ध करते हैं तथा उचित डाक्टर या वैद्यों की नियुक्ति करते हैं। उनमें जञ्चाओं के लिये भी इन्तजाम होता है। इसके अलावा यह होशियार दाइयों की भी नियुक्ति करते हैं। किसी भी समय यदि किसी गाँव में कोई बीमारी या रोग फैल जाय तो यह डाक्टरों को भेज कर वहाँ लोगों को टीका लगवाते हैं, दवा बटवाते हैं तथा बीमारी रोकने के अन्य काम भी करते हैं। गाँवों की सफाई करते हैं, गंदे पानी को ठीक से निकल जाने का प्रबन्ध करते हैं तथा ग्रामीण जनता को सफाई रखने की शिक्षा भी देते हैं। पीने के अच्छे पानी के प्रबन्ध के लिये यह कुएँ खुदवाते हैं तथा पुराने कुओं की मरम्मत भी कराते हैं।

(३) आवागमन की सुगमता—आवागमन की सुगमता के लिये यह गाँवों की सड़कें बनवाते हैं तथा पुरानी सड़कें

मरम्मत कराते हैं। आवश्यकता के स्थान पर यह पुल बनवाते हैं तथा गाँव की पगडण्डियों को भी बनवाते हैं। सड़कों पर छायादार वृक्ष भी लगवाते हैं तथा यह देखते हैं कि उन्हें कोई काट न डाले। यह समय-समय पर मेले तथा पेंट लगवाते हैं।

(४) अन्य कार्य—इनके अतिरिक्त यह पार्क तथा बाग लगवाते हैं। पशुशाला तथा धर्मशालाओं को भी खोलते हैं। कृषि से संबन्ध रखने वाली नुमायश करते हैं। गाँवों की मर्दन-शुमारी करते हैं। मृत्यु तथा पैदावार का हिसाब रखते हैं तथा विभिन्न रोगों से मरने वालों की संख्या का पता लगाते हैं। गाँवों में खेल-कूद का भी प्रबन्ध करते हैं। बाँजी हाऊस, ऋ नाव, घाट आदि का भी प्रबन्ध करते हैं।

वोट देने का अधिकार—इस समय वोट देने का अधिकार निम्नलिखित योग्यता रखने वाले व्यक्तियों को प्राप्त है :—

- (१) उसकी उम्र २१ वर्ष से अधिक हो।
- (२) कम से कम ५) वार्षिक से अधिक मालगुजारी देता हो। पहाड़ी क्षेत्रों में चाहे कुछ भी मालगुजारी देता हो।
- (३) १०) कम से कम वार्षिक से अधिक काश्तकारी का लगान देता हो। अथवा केवल ५) वार्षिक लगान देता हो।
- (४) इनकम टैक्स देता हो।
- (५) कम से कम २) ६० मासिक मकान का किराया देता हो। परिगणित जाति के लिये १) मासिक किराया देना काफी है।

ॐ वह स्थान जहाँ पर छुटे हुए मवेशियों को पकड़ कर बाँध लिया जाता है तथा कुछ जुर्माना लेने पर ही छोड़ा जाता है।

(६) हिन्दुस्तानी अथवा अंग्रेजी स्कूल का कम से कम चौथा दर्जा पास किया हो ।

(७) फौज का पेंशनयाप्तता हो अथवा फौज से छुटा हुआ हो ।

(८) पहाड़ी क्षेत्रों का शिल्पकार हो ।

महिलाओं के लिये विशेष रियायतें :—

१. कोई भी बालिग पढ़ी-लिखी महिला वोट दे सकती है ।
२. इनकमटैक्स देनेवाले पुरुष की स्त्री वोट दे सकती है ।
३. ऐसे पुरुष की स्त्री जो कम से कम २५) वार्षिक माल-गुजारी देता हो, वोट दे सकती है ।
४. सैनिक की विधवा स्त्री जो पेंशन पाती हो वोट दे सकती है ।

जो पागल हो, जो दिवालिया हो और जो किसी अभियोग में सजा भुगत चुका हो उसे वोट देने का अधिकार नहीं है ।

इस तरह आजकल ३३ प्रतिशत लोगों को वोट देने का अधिकार प्राप्त है । सरकार शीघ्र ही एक कानून पास करने वाली है जिसमें सभी २१ वर्ष से अधिक उम्र वालों को वोट देने का अधिकार मिल जावेगा ।

इनका चुनाव—बोर्ड के सदस्य १५ से लेकर ४० तक होते हैं । यह बोर्ड में रहने वाले व्यक्तियों की संख्या पर निर्भर है । इनमें कुछ सरकार द्वारा नामजद भी किये जाते हैं परन्तु अधिकांश में जनता द्वारा चुने जाते हैं । पहले प्रत्येक जाति के लोग अलग-अलग आदमी चुनते थे परन्तु इस वर्ष (सन् १९४८) के चुनाव में संयुक्त प्रान्त में प्रत्येक जाति के लोगों ने मिलकर मेम्बरों को चुना है ।

बोर्ड के पदाधिकारी—बोर्ड का सबसे बड़ा पदाधिकारी चेयरमैन कहलाता है। पहले यह बोर्ड के चुने हुये तथा निर्वाचित मेम्बरों द्वारा चुना जाता था। परन्तु सन् १९४८ के चुनावों में संयुक्त प्रांत में चेयरमैन भी जनता द्वारा चुने जाने लगे हैं। चेयरमैन के नीचे छोटे-चेयरमैन (Vice-Chairman) होते हैं जो कि अब भी मेम्बरों द्वारा चुने जाते हैं। चेयरमैन के न होने पर यह बोर्ड के काम की देख-भाल करते हैं। कहीं २ दो छोटे चेयरमैन होते हैं। यह जनता द्वारा चुने हुये बोर्ड के मेम्बरों से ही होते हैं। मेम्बर तीन वर्ष तक के लिये ही चुने जाते हैं और इसके बाद फिर चुनाव होता है।

बोर्ड अपने काम चलाने के लिए अन्य अफसरों को नियुक्त करता है। इनमें एक्जीक्यूटिव आफिसर (Executive Officer) या सेक्रेटरी सबसे प्रसिद्ध है। सेक्रेटरी बोर्ड के सब कामों को देखभाल करता है और वेतन पाने वाले अफसरों में उसका स्थान सबसे ऊँचा है। उसके नीचे इन्जीनियर, सफाई के इन्स्पेक्टर, डाक्टर, नर्स, टीका लगाने वाले, बड़े क्लर्क, थोड़े क्लर्क, कर वसूल करने वाले आदि होते हैं। सबके काम की जाँच-पड़ताल सिक्रेटर रखता है तथा वह बोर्ड की मीटिंग में बैठता है परन्तु वह वोट नहीं दे सकता। उसे केवल सलाह तथा जानकारी के लिये ही बिठाया जाता है।

बोर्ड के काम करने का तरीका—बोर्ड का सब काम सेक्रेटरी ही चलाता है। वह अपने नीचे अफसरों को विभिन्न काम करने की आज्ञा देता है तथा सब अफसर उसी को आकर बताते हैं कि उन्होंने क्या किया। परन्तु काम की देख-रेख तथा

सलाह के लिये बोर्ड अपने मेम्बरों में से कुछ को सम्मिलित कर कई कमिटियाँ बना लेते हैं। एक कमिटी एक तरह के काम की जाँच-पड़ताल करती है। अधिकतर शिक्षा कमिटी, आर्थिक-कमिटी, सार्वजनिक स्वास्थ्य कमिटी, निर्माणकार्य कमिटी आदि पाई जाती हैं। यह कमिटी सलाह के लिये कुछ ऐसे व्यक्तियों को भी, जो बोर्ड के सदस्य नहीं हैं परन्तु जैसे होशियार हैं, रख लेती हैं।

बोर्ड की आमदनी—काम चलाने के लिये बोर्ड जनता पर टैक्स या कर लगाते हैं। प्रान्तीय सरकार भी उनकी मदद करती है। उनकी आय के निम्नलिखित मद्दतपूर्ण साधन हैं :—

(१) भूमि कर—यह लगान के ऊपर जगाया जाता है तथा मालगुजारी के साथ ही वसूल किया जाता है। यह प्रायः एक आना रुपया के हिसाब से जगाया जाता है। बोर्ड को सबसे अधिक आमदनी इसीसे होती है।

(२) हैसियत कर—यह कर आदमियों की हैसियत देख कर लगाया जाता है। इसमें व्यक्ति की आय, उसकी मिलकियत, उसकी समाज में इज्जत आदि देखकर जाँची जाती है और उस पर कर लगाया जाता है। कर की दर चार-पाई फी रुपया से अधिक नहीं हो सकती।

(३) फैक्टरी कर—यदि किसी डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अन्दर कोई मिल है तो वह केवल बोर्ड की आज्ञा से ही काम कर सकती है तथा उसे कुछ कर देना पड़ता है। डिस्ट्रिक्ट बोर्ड के अन्दर आटे की चक्की, तेल की मिलें, चावलों की मिलें आदि प्रायः होती हैं।

(४) मेला-कर—मेला या पेंठ के समय जब दूकानदार अपनी दूकान लेकर बैठते हैं तो उनसे कर लिया जाता है। यह भूमि पर बैठने का किराया होता है।

(५) जानवरों की रिजस्ट्री पर कर।

(६) नाव या पुल को इस्तेमाल करने पर कर।

(७) कांजी हाऊस, धर्मशाला, दूकानों, जमीन, आदि से आय।

(८) प्रान्तीय सरकार द्वारा मिली हुई मदद।

जिला बोर्डों तथा लोकल बोर्डों की हमारे देश में आय लगभग १५ करोड़ रुपया होती है। उसमें से एक-तिहाई भूमि-कर से वसूल होती है। अन्य साधनों से आय बहुत कम होती है तथा अधिकतर वह प्रान्तीय सरकारों द्वारा मिली हुई मदद पर ही निर्भर रहते हैं।

सरकारी नियंत्रण—यद्यपि जिला बोर्डों को सरकार ने काम करने की पूरी स्वतन्त्रता दे रखी है फिर भी उनके कामों पर नियंत्रण आवश्यक है। जिले के जिलाधीश जिला बोर्डों के कामों की देख-भाल करते हैं। प्रत्येक जिला बोर्ड अपने वार्षिक आय-व्यय का चिट्ठा जिलाधीश के पास भेजता है। हर एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव भी उनके पास भेजना पड़ता है। यदि वह रुपया उधार लेना चाहें तो उन्हें जिलाधीश की आज्ञा लेनी पड़ती है। यदि कोई जिला बोर्ड ठीक से काम नहीं करता तो जिलाधीश अपनी जाँच के बाद उसको तोड़ सकता है और मेम्बरों का दुबारा चुनाव करा सकता है। परन्तु यह सब अधिकार तभी काम में लाये जाते हैं जब कि बोर्ड की स्थिति काफी खराब हो जाती है।

लोकल बोर्ड या तालुका बोर्ड—लोकल या तालुका बोर्ड जिला बोर्ड के अधीन होते हैं। यह संयुक्त प्रान्त तथा पंजाब में नहीं पाये जाते। बाकी सब प्रान्तों में यह पाये जाते हैं। इनके भी वही काम हैं जो जिला बोर्ड के हैं तथा इनके सदस्य भी जनता द्वारा चुने जाते हैं। जिला बोर्ड इनके कामों का निरीक्षण करते हैं तथा धन से इनकी सहायता करते हैं।

ग्राम-पंचायत—संयुक्त प्रान्त में प्रत्येक गाँव में एक पंचायत होती है जो अन्य कामों के अतिरिक्त गाँव की सफाई, गाँव वालों के स्वास्थ्य तथा उनकी पढ़ाई के लिये जिम्मेदार हैं। अभी तक पंचायतों ने हमारे प्रान्त में अधिक उन्नति नहीं की है। परन्तु सन् १९५७ का पंचायत एक्ट पास हो जाने से यह काफी महत्वपूर्ण काम कर सकेंगी। ❀

पंचायत के काम—यह निम्नलिखित काम करेंगी :—

- (१) सड़के बनवाना, उनकी मरम्मत करना तथा उनकी सफाई का ध्यान रखना ।
- (२) गाँव में रोगों को फैलने से रोकना तथा चिकित्सा का प्रबंध करना ।
- (३) गाँव की सफाई रखना तथा इसके लिये सब आवश्यक कार्य करना ।
- (४) जन्म, मृत्यु तथा विवाहों का हिसाब रखना ।
- (५) मेले तथा पेटों का प्रबन्ध करना ।

❀ पंचायतों के बारे में विस्तारपूर्वक हाल अगले अध्याय में दिया गया है ।

- (६) गाँवों में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रबंध करना ।
- (७) कुओं तथा तालाबों को बनवाना तथा पुरानों की मरम्मत कराना ।
- (८) आग लग जाने पर लोगों के जीवन तथा माल की रक्षा करना ।
- (९) बच्चे वाली माता तथा बच्चों के स्वास्थ्य के लिये उचित प्रबंध करना ।
- (१०) खाद इकट्ठा करने के लिये उचित स्थान नियत करना ।
- (११) मार्गों तथा सड़कों को बनवाना तथा उनकी मरम्मत करवाना ।
- (१२) गाँव के जानवरों की नस्ल सुधारना आदि ।

आमदनी—यह सब काम करने के लिये पंचायतों को धन की आवश्यकता पड़ेगी। वह निम्नलिखित कर लगा सकती हैं :—

- (१) मालगुजारी पर एक आना फी रुपया के हिसाब से किसानों पर कर ।
- (२) जमींदार पर अधिक से अधिक ६ पाई फी रुपया के हिसाब से कर ।
- (३) व्यापार, कारोबार या पेशे पर कर ।
- (४) इमारतों पर कर ।

इनके करों के अतिरिक्त इनको सरकार से भी मदद मिलेगी। यह आशा है कि पंचायते इस कानून के पास होने से अधिक महत्वपूर्ण काम कर सकेंगी।

स्थानीय स्वराज्य की सफलता—बड़े दुर्भाग्य की बात है कि हमारे गाँवों में स्थानीय स्वराज्य अभी तक सफल नहीं हो सका है। इसके कई कारण हैं। धन की कमी के कारण बोर्ड तथा पचायत अपना काम ठीक से नहीं कर सकते। गाँव के लोग वैसे ही गरीब हैं। उन पर अधिक कर लगाया भी नहीं जा सकता। जब धन ही नहीं तो वह गाँव की दशा में क्या सुधार करेंगी? दूसरे पढ़े-लिखे व्यक्ति तथा सच्चे सेवक इनमें नहीं जाते क्योंकि उनको चुनाव लड़ना पड़ता है और चुनाव लड़ना आसान काम नहीं। फिर चुनाव में रुपया भी बहुत व्यय होता है। तीसरे, इन स्थानों पर काफी घूस और बेईमानी चलती है। इस कारण गलत काम करने वाले पकड़े नहीं जाते और न उन्हें दण्ड ही मिलता है। स्थानीय स्वराज्य को सफल बनाने के लिये यह आवश्यक है कि वास्तव में देश-सेवकों को तथा जनता के हितैषियों को यहाँ मेम्बर चुन कर भेजा जाय। वही गाँव की दशा सुधार सकेंगे।

सारांश

ग्राम स्वराज्य की संस्थाओं में जिला बोर्डों का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान है। यह जिले भर के गाँवों की सफाई, स्वास्थ्य तथा पढ़ाई का ध्यान रखते हैं। इनका काम शिक्षा का प्रसार, गाँव वालों के स्वास्थ्य की रक्षा, आवागमन की सुगमता तथा कृषि के लिये आवश्यक नुमायश, मेला आदि का प्रबन्ध करना है। इनके सदस्य जनता द्वारा चुने हुए होते हैं तथा वह तीन वर्ष तक मेम्बर रहते हैं। इनके पदाधिकारियों में चेयरमैन, तथा छोटे चेयरमैन प्रसिद्ध हैं। कर्मचारियों में सिकत्तर का स्थान बड़ा महत्वपूर्ण है। *

बोर्ड की आमदनी भूमि कर, हैसियत कर, मेला कर, नाव या पुल पर वसूल किया हुआ कर, बोर्ड की भूमि तथा हमारतों से होती है। इनको प्रान्तीय सरकार भी काफी मदद देती हैं।

इनके कार्यों पर जिज्ञाधोश नियंत्रण रखना है और यदि इनका काम ठीक नहीं होता तो इन्हें तोड़ कर दुबारा चुनाव कराता है।

जिला बोर्ड के नीचे लोकल बोर्ड तथा तालुका बोर्ड भी होते हैं। यह संयुक्त प्रान्त तथा पंजाब में नहीं पाये जाते।

हमारे प्रान्त में प्रत्येक गाँव में एक पंचायत होती है जो अन्य कार्यों के अतिरिक्त गाँव की सफाई, पढ़ाई तथा स्वास्थ्य का ध्यान रखती हैं। गाँव में शिक्षा का प्रचार, गाँव की सफाई, स्वास्थ्य के लिये दवाखाने, डाक्टरों, नर्स आदि को नियुक्ति, सड़क, कुएँ आदि बनवाना, जानवरों को नस्ल सुधारना आदि इसके अन्य कार्य हैं।

यह मालगुजारी पर तथा पेशे या रोजगार पर कर लगा कर अपना खर्चा चलाती हैं। सरकार भी इनको मदद देती है।

दुर्भाग्य से हमारे देश में स्थानीय स्वराज्य अधिक सफल नहीं हो सका है। इसके कारण कई हैं। धन की कमी, अच्छे व्यक्तियों का अभाव तथा रिश्त आदि का चलन बोर्ड के अच्छे काम में बाधक हैं। इनकी दशा सुधारने के लिये यह आवश्यक है कि जनता के हितैषी ही इनके मेम्बर बनाये जायें।

प्रश्न

१. गाँव में सफाई रखने के लिये कौन २ सी संस्थायें हैं? वह क्या क्या काम करती हैं?
२. हमारे देश में स्थानीय स्वराज्य कहाँ तक सफल हो सका है? सफल न होने के क्या २ कारण हैं?

३. जिला बोर्डों के क्या २ काम हैं ? आपके प्रान्त के जिला बोर्ड कहाँ तक वह काम करते हैं ?
४. जिला बोर्ड के सदस्यों का चुनाव किस तरह होता है ? क्या इनका चुनाव वालिग मताधिकार वोट द्वारा होता है ?
५. जिला बोर्ड अपना खर्चा किस तरह चलाते हैं ? यह जो कर लगाते हैं उनके बारे में बताइये ।
६. जिला बोर्ड के कौन २ से अफसर होते हैं ? एक्जीक्यूटिव आफिसर के कार्यों को बताइये ।
७. स्थानीय बोर्ड कहाँ पाये जाते हैं ? उनके कार्यों को बताइये ।
'चायतों के सफाई-सम्बन्धी क्या २ काम हैं ? संयुक्त प्रान्त में वह कैसा काम कर रही हैं ?



अध्याय उन्तीस

पंचायत राज्य-कानून

पंचायतें हमारे देश की बड़ी पुरानी संस्थाएँ हैं जो कि गाँवों में अनादि काल से पाई जाती हैं। हिन्दू राजाओं को शासन-प्रणाली में इनका महत्वपूर्ण स्थान था और विदेशी आक्रमणों के समय देश की शासन की बागडोर ढीली न होने देने में इनका कार्य महत्वपूर्ण होता था। यह स्थानीय शासन स्वयं करती थीं। अपनी रक्षा के लिये पुलिस रखना, गाँव की सफाई का ध्यान रखना, लगान वसूल कर शाही खजाने में जमा करना, अपने क्षेत्र के धार्मिक स्थानों को बनवाना, सड़कों को बनवाना, पाठशालाओं तथा विद्या का प्रबन्ध करना, कुएँ बनवाना, पेड़ लगवाना, छोटे र फाँजदारी तथा दीवानी के झगड़ों को निपटाना भी इन्हीं का काम था। मुसलमान राजाओं ने हिन्दू राजाओं के समय से चली आने वाली शहरों की शासन व्यवस्था को तो बदल दिया परन्तु उन्होंने ग्राम पंचायतों को नहीं छुआ। वह पहले की तरह ही काम करती रहीं। उस समय जो भी परदेशी भारतवर्ष में भ्रमण करने आये सभी ने यहाँ के गाँवों की समृद्धि तथा सफाई की सराहना की और इसका श्रेय पंचायतों को प्राप्त था। अंग्रेजों ने पंचायतों का रखना हितकर नहीं समझा। उन्होंने देश में केन्द्रीय शासन स्थापित करना चाहा और वह जनता के प्रतिनिधियों को कोई भी स्वतन्त्रता नहीं देना चाहते थे। अतएव उन्होंने पञ्चायतों से

भगड़ा निबटाने का काम लेकर अदालतों को सौंप दिया। लगान वसूल करके खजाने में जमा करने का काम जमींदारों को सौंपा और पुलिस का काम जिलाधीशों को सौंप दिया। सफाई का काम भी आरम्भ में जिलाधीशों के हाथ में रहा और बीसवीं सदी में उसे जिला बोर्ड तथा यूनिजन बोर्डों के हाथ में दिया गया। इस तरह पंचायत प्रथा को अंग्रेजों ने नष्ट कर दिया।

परन्तु धीरे-धीरे करके उनको पंचायतों की आवश्यकता प्रतीत होने लगी। सन् १९१९ के भारतीय विधान के वाद प्रान्तों को यह अधिकार दे दिया गया कि वह स्थानीय स्वराज्य के लिये जिला बोर्डों के नीचे पंचायतें भी खोल सकते हैं। यह आज्ञा मिल जाने पर बहुत से प्रान्तों ने ग्राम-पंचायत एकट पास कर दिये। संयुक्त प्रान्त में भी सन् १९२० में ग्राम-पंचायत एकट पास हो गया।

संयुक्त प्रान्त का १९२० का पंचायत कानून—इस कानून के अनुसार कलक्टर किसी एक गाँव में या कई गाँवों को मिलाकर एक पंचायत खोल सकते थे। पंचायत में कम से कम पाँच तथा अधिक से अधिक सात पंच होना आवश्यक था। इन्हीं में से एक सरपंच होता था जो कि कलक्टर द्वारा नियुक्ति किया जाता था।

पंचायतों का काम शिक्षा बढ़ाना, गाँवों की सफाई रखना, गाँव वालों की स्वास्थ्य रक्षा के लिये प्रयत्नशील होना, पीने के पानी का प्रबन्ध करना, गाँवों की सड़क या पगडण्डियों की मरम्मत कराना और बनवाना, तथा गाँव की भलाई के अन्य काम करना था।

इनको कुछ फौजदारी तथा दीवानी भगड़े सुलभाने के

अधिकार भी मिले हुए थे। यह दीवानी के २५ रु० तक के भग्गड़े, यदि वह जमीन या जायदाद के संबन्ध नहीं रखते थे, तय कर सकती थीं। मामूली चोट या भग्गड़े या दस रुपये तक की चोरी के फौजदारी भग्गड़े निबटाने का भी इन्हें अधिकार प्राप्त था। कलक्टर यदि चाहे तो इनके अधिकार ५० रु० तक दीवानी के मामलों में तथा २० रु० तक फौजदारी के मामलों में बढ़ा सकता था। यह फौजदारी के मामलों में १० रु० तक, जानवरों से सबन्धित मामलों में पाँच रुपये तक तथा सफाई के मामलों में एक रुपया तक जुर्माना कर सकती थीं पंचायत के मामलों की अपील नहीं हो सकती थी तथा वकील इनके सामने मामले की पैरवी नहीं कर सकते थे।

सन् १९४७ का नया कानून—परन्तु यह पंचायत राज्य कानून पंचायतों को ठीक तरह से काम करने में सहायक नहीं होता था। जब कान्ग्रेस सरकार ने संयुक्त प्रान्त में शासन की बागडोर सभाली तो उन्होंने ग्राम पंचायत-हकूमत-बिल धारासभा में पेश किया। प्रांतीय धारासभा ने उस कानून को ५ जून, सन् १९४७ में पास कर दिया। इसके बाद वह लेजिस्लेटिव कौंसिल में गया। वहाँ पर वह कानून १६ सितम्बर सन् १९४७ को पास हो गया। भारतवर्ष के गवर्नर-जनरल द्वारा सात दिसम्बर सन् १९४७ में वह स्वीकृति कर लिया गया और कानून बन गया। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने इस कानून को अमल में लाने का निश्चय कर प्रान्त भर में पंचायत सभा तथा पंचायत अदालत के लिये फरवरी सन् १९४९ में चुनाव कराये। चुनाव पूरे हो जाने पर गाँव २ में पंचायतों ने काम करना आरम्भ कर दिया है। हमारा प्रान्त भारतवर्ष

में पहला प्रान्त है जहाँ जनता के हाथ में इतने अधिकार सौंपे गये हैं।

नये पंचायत राज्य कानून की मुख्य २ बातें—इस कानून के अनुसार प्रान्तीय सरकार एक गाँव में या कुछ गाँवों को मिलाकर एक गाँव सभा स्थापित करेगी। गाँव-सभा स्थापित होते ही वह ३०-५१ व्यक्तियों की एक प्रबन्धक कमिटी नियुक्त कर लेगी जो ग्राम पंचायत कहलावेगी। कई गाँवों को, जिनमें पंचायतें हैं, मिला कर एक सर्किल बना लिया जावेगा। प्रत्येक सर्किल में एक पंचायती अदालत होगी। इस तरह इस नये कानून के अनुसार पंचायत सम्बन्धी तीन सथायें होंगी—(१) ग्राम सभा, (२) ग्राम पंचायत तथा (३) पंचायती अदालत। इन तीनों के अलग २ काम हैं। इन सबका हाल नीचे दिया जाता है।

ग्राम सभा

प्रान्तीय सरकार या तो एक गाँव में या कई गाँवों को मिलाकर एक ग्राम-सभा स्थापित करेगी। प्रत्येक ग्राम-सभा का नाम, क्षेत्रफल, आबादी आदि का खुलासा वह गजट में कर देगी।

सभा के सदस्य—ग्राम-सभा के क्षेत्र में रहने वाले सभी बालिग उस सभा के सदस्य होंगे। इसमें चुनाव की कोई आवश्यकता नहीं। परन्तु जो व्यक्ति पागल हैं, या जिनको कोढ़ की बीमारी है, या जो दिवालिया हैं, या जो स्थानीय सरकार के या प्रान्तीय सरकार के नौकर हैं या जो गाँव में स्थायी तौर पर नहीं रहते वह ग्राम सभा के सदस्य नहीं हो सकते।

सभा के सदस्य जीवन भर उसके सदस्य रह सकेंगे यदि ऊपर दी हुई कोई खराबी उनमें नहीं हो जाती या वह गाँव छोड़ कर कहीं चले न जायँ ।

सभा की मीटिंग—सभा के लिये यह आवश्यक है कि वर्ष में दो आम मीटिंग करे । एक तो उन्हें खरीफ की फसल के बाद करनी पड़ेगी जो कि खरोफ की मीटिंग कहलावेगी । दूसरी उनको रबी की फसल के बाद करनी होगी और वह रबी मीटिंग कहलावेगी । इसके अतिरिक्त यदि सभा के वीस प्रतिशत सदस्य सभा के प्रधान के मीटिंग के लिये अनुरोध करें तो ऐसी अर्जा के ३० दिन के भीतर उसे मीटिंग बुलानी होगी ।

सभा के अधिकारी—सभा अपनी पहली मीटिंग में आपस में से एक व्यांक्त को बहुमति से प्रधान चुन लेगी तथा दूसरे को उप-प्रधान । वही मीटिंग के समय सभापति हुआ करेंगे । यह तीन वर्ष तक के लिये होंगे ।

इसके अतिरिक्त ग्राम-सभा अपने में से ३० से ५१ व्यक्तियों की एक प्रबंधकारिणी सभा नियुक्त करेंगी जो कि ग्राम पंचायत कहलावेगी ।

सभा के कार्य—सभा चल या अचल संपत्ति को खरीद सकती है या दान में ले सकती है । उस संपत्ति का प्रबन्ध करने का पूर्ण अधिकार इन्हें होगा । यह लोगों को काम का ठेका भी दे सकती है तथा सभा के नाम में मुकद्दमा कर सकती हैं । सभा के ऊपर भी मुकद्दमा किया जा सकता है ।

ग्राम पंचायत

ग्राम-पञ्चायते' ग्राम-सभा द्वारा चुनी जावेगी । ग्राम सभा के प्रधान तथा उप-प्रधान पंचायत के प्रधान तथा उप-प्रधान

भी होंगे। वह तीन वर्ष तक अपना पद रख सकते हैं तथा किसी भी समय सभा के दो-तिहाई व्यक्ति मिलकर उनको हटा सकते हैं। पंचों की संख्या ३० से ५१ तक होगी।

ग्राम पंचायत के कार्य—ग्राम पंचायत के अनेक काम हैं। वह नीचे दिये जाते हैं :—

- (१) गाँव की सड़कों को बनवाना, मरम्मत कराना तथा उस पर रोशनी का प्रबन्ध करना।
- (२) डाकटरी का प्रबन्ध।
- (३) गाँव की सफाई तथा रोगों को रोकने के लिये आवश्यक काम।
- (४) ग्राम-सभा की संगति की रखवाली करना तथा उसका प्रबन्ध करना
- (५) गाँव में पैदायश तथा मृत्यु के आँकड़े रखना।
- (६) मृत्यु लोगों को जलाने के लिये स्थान निर्धारित करना
- (७) मेला तथा हाटों का प्रबन्ध करना।
- (८) गाँवों में प्राइमरी स्कूल स्थापित करना तथा उनको चलाना।
- (९) चारागाहों का स्थान निर्धारित करना तथा उनका प्रबन्ध करना।
- (१०) गाँवों में कुएँ बनवाना, उनको साफ करवाना तथा नहाने-धोने के पानी का भी प्रबन्ध करना।
- (११) नई-नई इमारतें बनाना तथा पुरानों की मरम्मत कराना।

- (१२) कृषि, व्यापार तथा उद्योग को बढ़ाने के लिये काम करना ।
- (१३) जानवरों की संख्या के आँकड़े रखना ।
- (१४) जच्चा तथा बालकों की भलाई के लिये काम करना ।
- (१५) खाद जमा करने के लिये स्थान निर्धारित करना ।
- (१६) सड़कों के किनारे या गाँवों में पेड़ लगवाना ।
- (१७) जानवरों की नस्ल सुधारने के लिये काम करना ।
- (१८) गाँवों में गड्ढों को पटवा कर जमीन एकसी करना ।
- (१९) गाँव की देख-भाल के लिये वालिन्टीयर रखना ।
- (२०) सहकारी समितियों की उन्नत करना ।
- (२१) अकाल के समय गाँव वालों को सहायता देना ।
- (२२) गाँवों में पुस्तकालय तथा वाचनालय स्थापित करना ।
- (२३) गाँवों में अखाड़े खोलना
- (२४) गाँवों में कूड़ा-करकट तथा मैला उठवाने का प्रयत्न करना ।
- (२५) आबादी के २२० गज दूरी तक खालों की सफाई पर प्रतिबन्ध लगाना ।
- (२६) गाँवों में मेल-मिलाप बढ़ाने के लिये संस्थायें खोलना ।
- (२७) रेडियो तथा ग्रामाफोन लगाना ।
- (२८) सफाई रखने के लिये किसी व्यक्ति को शौच स्थान हटाने, ठीक करने या मरम्मत करने की आज्ञा देना ।
- पंचायत के अफसर—काम करने के लिये पंचायत एक सेक्रेटरी नियुक्त कर सकती है। इसके अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को भी वेतन पर रखा जा सकता है।

पंचायत का व्यय—पंचायत अपना खर्च चलाने के लिये निम्नलिखित साधनों से रुपया वसूल कर सकती है :—

- (१) करों द्वारा यदि वह कर प्रान्तीय सरकार ने उचित मान लिये हैं;
- (२) ग्राम-सभा की इमारतों से किराया वसूल कर;
- (३) गाँव का कूड़ा-करकट या मरे हुए जानवर या मैला बेच कर;
- (४) नजूल की जमीन जो प्रान्तीय सरकार ने इसे दे दी है उससे किराया वसूल कर;
- (५) जिला बोर्ड द्वारा सहायता से;
- (६) प्रान्तीय सरकार द्वारा मिली सहायता से;
- (७) रुपया उधार लेकर या दान में लेकर;
- (८) वह रुपया जो कि इस कानून के लगने के पहले गाँव पंचायतों के नाम था लेकर;
- (९) लोगों पर लगाये गये जुर्मानों से; जो इस कानून की धारा १०४ के अन्तर्गत लगाये जा सकते हैं; तथा
- (१०) अदालतों द्वारा पंचायतों को दिलाया हुआ रुपया लेकर ।

पंचायतों द्वारा लगाये जाने वाले कर—प्रान्तीय सरकार ने पंचायतों को निम्नलिखित कर लगाने की आज्ञा दे दी है :—

- (१) काश्तकारों पर लगाये गये लगान पर अधिक से अधिक एक आना फी रुपया के हिसाब से । परन्तु कोई काश्तकार सीर की जमीन जोतता है तो काश्त-

- कार से तीन-चौथाई तथा मीर को जमीन के अधिकारी से एक-चौथाई टैक्स वसूल किया जावेगा ।
- (२) जमींदारों की मालगुजारी पर अधिक से अधिक रुपये में छै पैसे के हिसाब से कर लगाया जा सकता है ।
 - (३) सीर की जमीन पर तथा खुदकाशत कारशकार के ऊपर खेत के निर्धारित लगान पर अधिक से अधिक एक आना रुपया के हिसाब से कर लिया जा सकता है ।
 - (४) व्यापार, उद्योग तथा दुकानदारी पर कर लगाया जा सकता है ।
 - (५) जो व्यक्ति ऊपर दिये हुए कर नहीं देते उनकी इमारतों तथा मकानों पर कर लगाया जा सकता है ।

पंचायत का बजट—पंचायत प्रति वर्ष बजट बना कर ग्राम-सभा की खरीफ मीटिंग के सामने प्रस्तुत किया करेगी तथा पास किये हुए बजट के अनुसार वह काम करेगी। इनको पूरा हिसाब किताब भी रखना पड़ेगा जिनका प्रति-वर्ष आडीटर द्वारा निरीक्षण किया जावेगा ।

पंचायती-अदालत

प्रान्तीय सरकार एक जिले को कई सर्किल में बाटेगी और हर एक सर्किल में एक पंचायत-अदालत स्थापित करेगी । इन अदालतों का अपने क्षेत्र में होने वाली सभी ग्राम-सभाओं पर अधिकार होगा ।

पंचायती-अदालत के पंच—प्रत्येक ग्राम-सभा अपने सदस्यों में से पाँच को चुन कर पंचायती-अदालत में भेजेगी ।

यह अदालत में पंच का काम करेंगे। एक सर्किल की सब ग्राम सभाओं द्वारा चुने हुए पंच अपने में से किसी एक व्यक्ति को सरपंच चुन लेंगे। सरपंच का पढ़ा-लिखा होना आवश्यक है तथा वह अदालत की कार्यवाही को भी लिखने की क्षमता रखता हो।

प्रत्येक पंच अपना औहदा तीन वर्ष तक रख सकता है।

पंचायती-अदालत की कार्यवाही का ढंग—मुकद्दमों को सुनने के लिए सरपंच कम से कम पाँच पंचों की एक अदालत बना दिया करेगा। प्रत्येक अदालत का एक प्रधान होगा जो कि मुकद्दमे की कार्यवाही के नोट लेगा।

प्रत्येक अदालत में एक पंच उस गाँव का होगा जिसमें मुद्दा रहता है तथा दूसरा पंच उस गाँव का होगा जहाँ मुद्दा लय रहता है। तथा तीन पंच अन्य गाँवों के होंगे।

कोई भी पंच या सरपंच उस अदालत में नहीं बैठ सकता जिसमें उसका कोई रिश्तेदार, या नौकर या मालिक या साभ्नीदार एक फरीकेन हो।

अदालत में वकील मुकद्दमे की पैरवी करने नहीं आ सकते।

पंचायती अदालत के अधिकार—पंचायती अदालत को ताजीरात हिन्द (Indian Penal Code) की निम्न धाराओं के अन्दर किये गये अपराधों की सुनवाई का अधिकार प्राप्त है :—

धाराएँ १४०, १६०, १७२, १७४, १७६, २७७, २७९, २८३, २८५, २८६, २८९, २९०, २९४, ३२३, ३३४, ३३६, ३४१, ३५२,

३५६, ३५७, ३५८, ३७९, ४०३, ४११, ४२६, ४२८, ४४७, ४४८, ४०४, ५०६, ५०९, तथा ५९९। यह आवश्यक है कि ३७९, ४०३ तथा ४११ धाराओं वालों अपराधों की रकम पचास रुपये से अधिक नहीं होनी चाहिए।

- (२) Cattle Trespass कानून की धारा २० तथा २४ के अन्दर होने वाले अपराध ।
- (३) संयुक्त प्रांत के जिलाबोर्ड—प्राइमरी-शिक्षा कानून, १९२६ के अन्दर होने वाले अपराध ।
- (४) जुआ एक्ट, १८६७ की धाराएँ ३, ४ तथा ७ के अन्दर होने वाले अपराध ।
- (५) अदालत के क्षेत्र में होने वाले सभी दीवानी अपराधों की सुनवाई पंचायती अदालतों में होगी यदि मुकद्दमा १०० रु० से अधिक का नहीं है। यदि प्रान्तीय सरकार चाहे तो किसी अदालत को ५०० रु० तक के दीवानी मामले तय करने की आज्ञा दे सकती है। परन्तु इससे अधिक के मामले वह तय नहीं कर सकती ।

मुकद्दमा दायर करने का तरीका—मुकद्दमा दायर करने के लिये यह आवश्यक है कि सरपंच को लिखित या जवानी शिकायत की जाय। शिकायत के समय मुकद्दमे के लिये आवश्यक फीस भी देनी होगी। यदि सरपंच उस समय न हो तो उसके स्थान पर जो पंच काम कर रहा हो उसको शिकायत की जा सकती है।

यदि शिकायत जबानी है तो सरपंच उसे फौरन ही लिख लेगा और शिकायत करने वाले का हस्ताक्षर या निसानी अंगूठा ले लेगा।

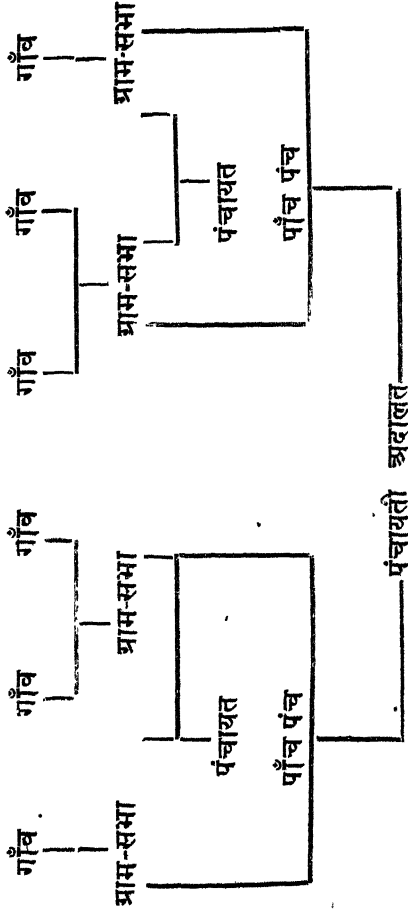
इसके बाद सरपंच एक अदालत की नियुक्ति करेगा तथा मुकद्दमे की सुनवाई की तारीख भी निश्चित कर देगा। तारीख की इत्तिला वह दोनों फरीकेन को भिजवा देगा।

यदि कोई फरीकेन निश्चित समय तथा दिन पर अदालत के सामने उपस्थित नहीं होता तो उसके पीछे भी मुकद्दमा तय हो जावेगा।

ग्राम-संभा, पंचायत तथा पंचायती अदालतों का निर्माण चित्र द्वारा अगले पृष्ठ पर दिया गया है :—

संयुक्त प्रान्त की सरकार का पंचायत राज्य कानून पास करने का कार्य बहुत सराहनीय है। हमारे देश में यह पहली प्रान्तीय सरकार है जिसने यह महत्वपूर्ण कदम उठाया है। यदि यह काम सफल हो गया तो हमारे देश के लिये संयुक्त-प्रान्त पथ-प्रदर्शक के रूप में काम करेगा। सफलता के लिये आवश्यक है कि चुने जाने वाले पंच या सरपंच निहायत ईमानदार, समझदार, पढ़े-लिखे तथा देश सेवक हों। हर्ष की बात है कि ६० प्रतिशत गाँवों में पंचों का चुनाव सर्वसम्मति से हुआ है। इससे पता चलता है कि वास्तव में वे व्यक्ति बहुत मान्य होंगे। यदि पंचों के चुनाव में अच्छे व्यक्ति गये तो गाँव की दशा सुरते ढेर नहीं लगेगी।

संयुक्त प्रान्त की सरकार ने यह कानून प्रान्त भर में लागू किया है। चुनाव सब जाति के लोगों ने एक साथ मिलकर बालिग मताधिकार के अनुसार किया है। ग्राम पंचायत में



[फौजदारी, दीवानी, जानवर सम्बन्धी, सफाई सम्बन्धी तथा

पढ़ाई से सम्बन्ध रखने वाले मुकद्दमे करना]

अल्पसंख्यक तथा नीची जाति वालों के लिये स्थान आबादी के अनुपात में निश्चित कर दिये गये हैं। परन्तु पंचायती अदालत में स्थान नियत नहीं किये गये। प्रांत भर की कुल आबादी (गाँव तथा शहरों को मिलाकर) साढ़े-पाँच करोड़ है। पंचायतों के चुनाव में लगभग २ करोड़ ७६ लाख व्यक्ति भाग लेंगे। यानी प्रान्त की आधी जनता चुनाव में भाग ले रही है।

प्रान्त भर में ३५,००० पंचायतें तथा ८,१०० पंचायती अदालतें हैं। कुल ग्राम-सभाओं के सदस्यों की संख्या २ करोड़ ७६ लाख, पंचायतों के सदस्यों की संख्या १६ लाख तथा पंचायती अदालतों के सदस्यों की संख्या १ लाख ७६ हजार है। एक गाँव के सभी बालिग चाहे वह गरबी हो या धनवान, ऊँची जाति के हों या नीची, बहुसंख्यक हों या अल्प संख्यक, स्त्री हों या पुरुष अपने गाँव की दशा सुधारने में सहायक होंगे।

सारांश

हमारे गाँवों में हिन्दू तथा मुसलमान राजाओं के समय में ग्राम पंचायतों का बड़ा महत्व था। परन्तु अंग्रेजों ने आते ही उस प्रथा को नष्ट कर डाला। लोगों के बहुत कहने पर उन्हें सन् १९१९ के बाद गाँव की सफाई रखने के कुछ कार्य अवश्य दे दिये गये परन्तु उनकी प्रतिष्ठा जाती रही थी।

हमारे प्रान्त की सरकार ने सन् १९४७ में पंचायत राज्य कानून पास कर दिया जिसके अनुसार गावों में पंचायतों की स्थापना हो गई है। प्रत्येक गाँव में एक ग्राम-सभा है जिसमें सभी गाँव के बालिग मत देते हैं। यह अपने काम के लिये एक प्रबंधक कमेटी चुन लेती है

जो पंचायत कहलाती है। पंचायतें मिलकर पंचायती अदालत में पाँच २ पंच भेजेंगी जो मुकद्दमा करेंगी।

पंचायतों का काम गाँव की सफ़ाई रखना, लोगों के स्वास्थ्य के लिये शुद्ध पानी, दवाखाने आदि का प्रबन्ध करना, पढ़ाई के लिये मदरसे खोलना, गाँवों में सड़क बनवाना तथा उनके दोनों तरफ़ पेड़ लगवाना, गाँव वालों के मनोरंजन का प्रबंध करना तथा रेडियो, पुस्तकालय, वाचनालय आदि स्थापित करना है। इसके लिये यह कर लगा सकती हैं तथा इनको जिलाबोर्ड और प्रान्तीय सरकार सहायता भी देती हैं।

ग्राम सभा पाँच २ पंच चुन कर पंचायती-अदालत में भेजती है। ये अदालतें फौजदारी तथा दीवानी मुकद्दमों कर सकती हैं। स्वास्थ्य के नियमों को तोड़ने वाले या शिक्षा के नियमों का उल्लंघन करने वालों को ये सजा भी दे सकती हैं। दीवानी के ये १०० रुपये तक के मामले ही तय कर सकती हैं। प्रत्येक मुकद्दमे को पाँच पंच सुना करेंगे।

संयुक्त प्रान्त की सरकार ने हमारे देश में सबसे पहला ऐसा कानून पास किया है। उनका यह कार्य सर्वथा सराहनीय है।

प्रश्न

१. पंचायत-राज्य कानून की मुख्य २ धाराओं को बताइये। इस कानून से गाँव वालों को क्या २ लाभ होंगे ?
२. ग्राम-सभा का किस तरह चुनाव होता है ? उसके कौन २ से पदाधिकारी हैं ?
३. ग्राम-सभा के कार्यों की व्याख्या कीजिये।
४. ग्राम पंचायत के सदस्य किस तरह चुने जाते हैं ? हमारे प्रान्त में वह किस तरह चुने गये हैं ?

५. ग्राम पंचायत के कार्यों का विस्तारपूर्वक उल्लेख कीजिये ।
६. ग्राम पंचायत अपने खर्चों को किस तरह चलाती हैं ? वह कौन कौन से कर लगाती हैं ?
७. पंचायती अदालत के पंच कितने होते हैं ? वे कैसे चुने जाते हैं और कब तक काम कर सकते हैं ?
८. पंचायती अदालतों के अधिकार क्या हैं ? वह कौन २ से मुकद्दमे तय कर सकती हैं ?
९. पंचायती अदालतों में मुकद्दमे किस तरह तय किये जाते हैं ? अदालत में कितने पंच बैठते हैं ? वह किस २ गाँव के होते हैं ?

हाईस्कूल बोर्ड के प्रश्न

पंचायतों के कामों को बताइये । भारतीय ग्रामीण जीवन में इनका क्या महत्व है ? (१९४७)

भाग ७
मजदूरों की समस्याएँ

[अध्याय : १. मजदूर-बस्तियाँ । २. श्रमिकों की भलाई
के कार्य । ३. मजदूर संघ]

अध्याय तीस

मजदूर-बस्तियाँ

मजदूरों को काम करने के लिये अधिकतर बड़े शहरों में ही रहना पड़ता है क्योंकि मिले बड़े शहरों में ही पाई जाती हैं। हमारे देश में बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद, देहली, कानपुर आदि बड़े शहर हैं और उन सभी शहरों में बहुत सी मिले हैं। बड़े शहरों में बहुत से लोग रहते हैं इस कारण वहाँ की जनसंख्या अधिक होती है। जनसंख्या अधिक होने के कारण वहाँ मकानों की कमी रहती है और इसलिये मकानों के किराये बहुत अधिक होते हैं। यदि आप कभी बम्बई या कलकत्ता या दिल्ली गये हों तो आप जानते होंगे कि वहाँ छोटे २ कमरों के लिये १००-१२५ रु० माहवार किराया देना पड़ता है। जब वहाँ किरायों की यह हालत है तो आप समझ सकते हैं कि मजदूरों की क्या दशा होगी ? वह कैसे मकानों में रहते होंगे और उनको कितना किराया देना पड़ता होगा ? उसी के बारे में हम आपको कुछ बताते हैं।

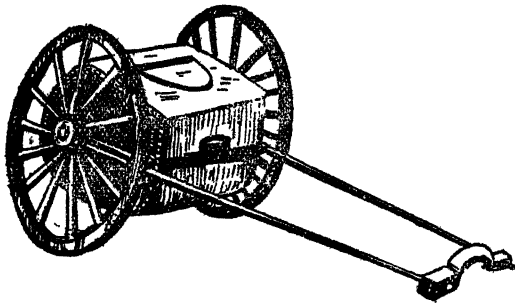
रहने का स्थान—मजदूर जिस जगह रहते हैं वह स्थान बस्ती या चौल कहलाता है। वह शहर भर का सबसे गंदा स्थान होता है। प्रायः वह सड़क के नीचे गड्ढे में होता है और बरसात के दिनों में मेह का पानी उनके घरों में भर जाता है।

उनके घर कच्ची मिट्टी के बने हुए होते हैं। कभी २ मिट्टी के स्थान पर टूटे टीनों के टुकड़े या चीड़ के तख्ते दीवारों में लगा दिये जाते हैं जिससे अन्दर का सामान न दीखे। उनके भोपड़ों की छतें फूस की बनी होती हैं। घर क्या एक कमरा मात्र होता है जो १०-१५ फुट लम्बा और इतना ही चौड़ा होता है। उस कमरे की ऊँचाई १० फुट से ज्यादा नहीं होती। उसकी जमीन मिट्टी की होती है, सीमेण्ट या ईंट की नहीं। क्योंकि यह कमरे सड़क की सतह से नीचे बने हुए होते हैं अतएव उनमें सीलन रहती है। कमरों में रोशनी के लिये खिड़की या रोशानदान नहीं होता। इस कारण इन कमरों में बड़ा अन्धेरा रहता है। स्थानाभाव के कारण इन कमरों के आगे बाँस के टट्टर लगा कर तथा उस पर टाट के पर्दे टाँग कर कुछ झाड़ कर ली जाती है जिससे उनका काम चल जाय। इसी एक कमरे में एक परिवार और प्रायः दो परिवार रहते हैं। एक परिवार में औसतन चार व्यक्ति होते हैं। स्थान की कमी के कारण उनमें आपस में कोई पर्दा नहीं रहने पाता। इसी कमरे में स्थान २ पर फटे-फटाये पर्दे टाँग कर वह सोते समय पर्दे का ढकोसला सा रचते हैं। रोशनी के लिये वह कैरोसीन तेल की लम्प या लालटेन जलाते हैं। लम्प के कारण कमरे की दीवाले काली २ हो जाती हैं। इसी स्थान में मजदूर लोग अपना जीवन बिताते हैं।

शौच-स्थान—उनका रहने का स्थान तो बेहवादार, सीला और गंदा होता ही है, उनकी बस्ती भी बड़ी गंदी होती है। इन घरों में शौच-स्थान या पेशाब घर नहीं होते। इस कारण मजदूर तथा उनके बच्चे घर के आस-पास ही मल-

त्याग देते हैं। रात्रि के समय जहाँ अन्धेरा हुआ वह मल त्यागने के लिये कभी दूर नहीं जाते। इस कारण घरों के आस-पास बड़ी बदबू आती रहती है। म्यूनिस्पल्टी की तरफ से कुछ सार्वजनिक शौच-स्थान बने होते हैं परन्तु वह मात्रा में कम होते हैं। इसलिये जब सुबह के समय बहुत से लोग एक साथ मल त्यागना चाहते हैं तो वह थोड़ी दूर पर मैदान में ही बैठ जाते हैं। इस कारण उनके आस-पास की सारी हवा दूषित हो जाती है। सार्वजनिक शौच-स्थान खुले हुए होते हैं तथा उनकी सफाई ठीक से नहीं होती। उनको केवल एक बार साफ किया जाता है जिससे दिन भर उनमें बदबू आती रहती है।

म्यूनिस्पल्टियों को चाहिये कि वह बस्तियों में काफी मात्रा में सार्वजनिक शौच-स्थान बनवायें। शौच-स्थान टीन के बने हुए हो सकते हैं और उन पर खर्चा भी अधिक नहीं पड़ेगा। इन शौच-स्थानों को प्रतिदिन फिनायल से साफ रखना चाहिये तथा उनके आस-पास चूना डलवा देना चाहिये जिससे कीटाणु मर जायें। मल को बन्द गाड़ी द्वारा ले जाना चाहिए जिसमें



चित्र ३२—एक मैला ढोने वाली गाड़ी

उसके कीटाणु हवा में न फैलें। मल को कभी भी खुला नहीं रखना चाहिये। एक मल ढोने वाली गाड़ी का चित्र पृष्ठ ३७९ में दिया गया है।

पानी की कमी—यही नहीं इन बस्तियों में पीने के पानी का भी ठीक प्रबंध नहीं होता। १५०, २०० आदिमियों की बस्ती में एक नल होता है। उससे काफी पानी नहीं मिलता और मजदूरों में प्रायः झगड़ा हो जाता है। नल पर कोई पानी भरना चाहता है तो कोई नहाना चाहता है। नहाते समय नल का पानी चारों ओर बहता रहता है। इस कारण नल के आस-पास इतनी कीचड़ हो जाती है कि नल तक जाना दूभर हो जाता है। बिना कीचड़ में पैर भरे कोई भी नल तक नहीं पहुँच पाता।

म्यूनिसिपलिटियों को चाहिये कि वह बस्तियों में नलों की संख्या बढ़ा दें। नलों के आस-पास की जमीन पक्की कर दें तथा उसके पास एक नाली बना दें जिससे नल का पानी नाली में होकर बह जाय। ऐसा करने से ही नल के पास की कीचड़ दूर हो सकती है।

नालियों का अभाव—मजदूर लोग घर का गंदा पानी इधर-उधर फेंक देते हैं। उनकी बस्तियों में साफ सड़कें नहीं होती। जगह-जगह पर छोटे २ गड्ढे होते हैं। पानी उन्हीं गड्ढों में भर जाता है और चलने वालों के पैर उसमें भर जाते हैं जिस कारण उनको हुक वार्म तथा खाज की बीमारी हो जाती है। यह पानी बस्ती के बाहर निकल नहीं सकता इस कारण वहीं सड़ता रहता है। मच्छर इसी पर उड़ा करते हैं और बीमारियाँ फैलाते हैं।

बरसात के दिनों में तो हालत और भी खराब हो जाती है। क्योंकि बस्ती नीचे स्थान पर होती है अतएव सड़कों का सब पानी बह कर वहीं भर जाता है। बस्ती में पानी के निकल जाने का कोई मार्ग नहीं बना रहता। वहाँ नालियाँ होती ही नहीं इस कारण पानी भरा ही रहता है। वह मजदूरों के घरों में भी भर जाता है। पानी के कारण जमीन सील जाती है और इनके घर भी सील जाते हैं।

इस बात की आवश्यकता है कि शहर की म्युनिस्पल्टी बस्तियों में पानी के बहाव का ठीक के प्रबन्ध करे। उन्हें यहाँ नालियाँ बनानी चाहिये जिससे गंदा पानी ठीक से बह जाय। आने-जाने के मार्गों को ठीक कर गड्ढों को दूर कर देना चाहिये।

कूड़े की समस्या—मजदूरों को कूड़ा डालने का कोई स्थान नियत नहीं। उनकी जहाँ तबियत होती है वह कूड़ा डाल देते हैं। इससे बस्ती भर में गंदगी फैल जाती है। कभी २ कूड़े का स्थान भी नियत हो जाता है परन्तु वहाँ से कूड़ा कभी हटता नहीं। वहीं पड़ा २ वह सड़ता रहता है और उसकी बदबू हवा में मिलती रहती है। कूड़े को कभी मिट्टी से नहीं ढका जाता। इस कारण इसमें पैदा होने वाले कीटाणु हवा में मिल जाते हैं।

म्युनिस्पल्टियों को चाहिये कि वह कूड़े को जमा न होने दे। नित्य इसको साफ कराना चाहिये तथा उस स्थान पर थोड़ा-सा चूना डाल देना चाहिये। इससे कीड़े मर जाते हैं।

नये मकान—ऊपर दिये गये वर्णन से आप समझ गये होंगे कि मजदूरों को किस नर्क में जीवन व्यतीत करना पड़ता है। कुछ प्रान्तीय सरकारों ने इस तरफ ध्यान दिया है और

द्वारा पानी बाहर ले जाने का प्रबन्ध करें। नालियों द्वारा ही घरों का गन्दा पानी बह जाया करेगा।

कूड़े की समस्या भी बस्तियों में विकट है। कूड़ा इधर-उधर पड़ा रहता है। म्युनिस्पल्टियों को चाहिये कि कूड़ा उठाने का ठीक से इन्तजाम करें।

कुछ मिल-मालिकों ने अच्छे मकान बनाये हैं। वहाँ रोशनी तथा पानी का अच्छा इन्तजाम है। परन्तु इनकी संख्या अधिक नहीं। इस तरह के मकानों की संख्या बढ़ाना आवश्यक है।

प्रश्न

१. हमारे देश के मजदूर किस तरह के स्थानों पर रहते हैं ? उनमें क्या सुधार की आवश्यकता है ?
२. मजदूरों के रहने के घर कैसे हैं ? क्या कुछ मित्रों ने अच्छे मकान भी बनाये हैं ?
३. मजदूरों की बस्तियों में शौच-स्थानों का क्या हाल है ? म्युनिस्पल्टियों को इस दिशा में क्या करना चाहिये ?
४. 'बस्तियों में नालियाँ बनाने की अधिक आवश्यकता है।' क्या यह कथन सत्य है ? इनके बनाने से क्या होगा ?

अध्याय एकतीस

श्रमिकों की भलाई के कार्य

अपने देश के मजदूरों की दशा के बारे में हम आपको पिछले अध्याय में कुछ बता चुके हैं। मजदूर गरीब हैं। खाने के लिये भी उनके पास काफी पैसा नहीं। उनके रहने के घर बड़े गन्दे हैं तथा उनके आस-पास का वातावरण भी ठीक नहीं। अधिक मेहनत तथा कम भोजन के कारण उनका स्वास्थ्य खराब हो गया है। बीमारियों ने उन्हें घेर रखा है। उनके बच्चे भी पतले-दुबले, गन्दे तथा बेपढ़े-लिखे होते हैं। उनकी दशा सुधारने के लिये सरकार ने स्वयं तथा सरकार के दबाव से मिल मालिकों ने कुछ भलाई के काम किये हैं जिनका हाल हम नीचे बताते हैं।

दुर्भाग्य से हमारे देश में मिल मालिकों ने श्रमिकों की भलाई के लिये क्या र किया है उसके बारे में पूरी जानकारी नहीं है। सन् १९३४ के बाद से किसी भी प्रान्तीय-सरकार ने भलाई के कार्यों की सूची तैयार नहीं कराई है। कुछ अच्छे मिल मालिकों ने जिनमें टाटा लोहा तथा फौलाद कम्पनी, जमशेदपुर; कर्नाटक मिल, मद्रास; एलगिन मिल, कानपुर; एम्प्रेस मिल, नागपुर; सैसुन कम्पनी, बम्बई; देहली क्लार्थ मिल, देहली; ब्रिटिश इन्डियन कोपरेशन, संयुक्त प्रान्त आदि प्रसिद्ध हैं मजदूरों की भलाई के लिये काफी काम किये हैं।

परन्तु देश भर के मजदूरों की आवश्यकता को देखकर यह कहा जा सकता है कि यह काम पर्याप्त नहीं।

प्रान्तीय-सरकारों के कार्य—सन् १९३६ में जब काँग्रेसी सरकारें प्रान्तों में आईं तो उन्होंने इस तरफ कुछ ध्यान दिया। बम्बई प्रान्त के प्रसिद्ध श्रम-मन्त्री, श्री गुलजारी लाल नन्दा ने अपनी सरकार से कह कर १ लाख २० हजार रुपये की रकम सन् १९३८-३९ में मजदूरों की भलाई के लिये निश्चित की। इसके बाद उन्होंने कुछ दानियों का पता लगाया जिन्होंने भी कुछ रुपया दान देकर मजदूरों के लिये रहने को मकान बनवाये। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने भी इस तरफ अच्छा काम किया है। अन्य प्रान्तों ने भी इसी तरह की नीति अपनाई है। सभी सरकारें मजदूरों की भलाई के लिये लाखों रुपया प्रति वर्ष व्यय कर रही हैं। संयुक्त प्रान्त की सरकार ने सन् १९४५-४६ में १ लाख, ५७ हजार ६ सौ रुपया श्रमिकों की भलाई पर व्यय किया था।

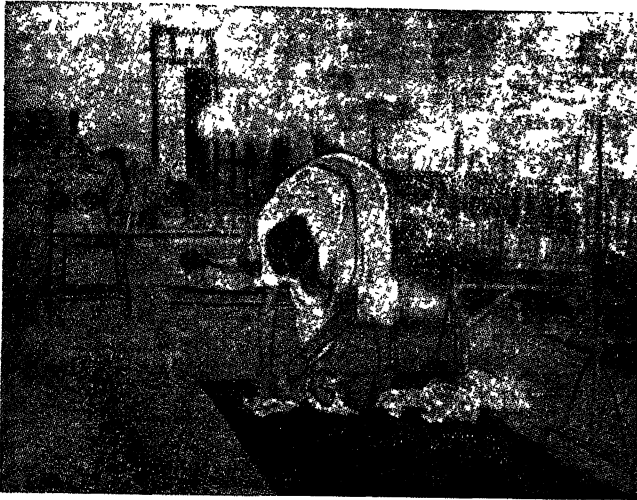
मजदूर भलाई केन्द्र—इस कार्य के साथ साथ प्रान्तीय सरकारों ने प्रत्येक औद्योगिक नगर में मजदूर-भलाई केन्द्र Labour Welfare Centres स्थापित किये हैं। यह केन्द्र तीन तरह के हैं—A, B तथा C. A सेन्टर में श्रमिकों की अनेक तरह की भलाईयों की तरफ ध्यान दिया जाता है। उनके आमोद के लिये रेडियो रहता है, भजन, नोटकी तथा ड्रामाओं का आयोजन किया जाता है; सभी तरह के खेल जैसे फुटबाल, वाली बाल, कैरम, लूडो, कबड्डी आदि का प्रबन्ध किया जाता है; वाचनालय तथा पुस्तकालय स्थापित किये जाते हैं; तथा

लोगों को दवा देने के लिये अस्पताल खोले जाते हैं। व्याख्यानों का भी आयोजन किया जाता है तथा मैजिक लैण्डर्न शो से मजदूरों को काम की अनेक बातें बताई जाती हैं। B सेन्टर में यह सब भलाई के काम इतने ऊँचे पैमाने पर नहीं होते। वह मजदूरों के आमोद की तरफ ही अधिक ध्यान देते हैं तथा वहाँ रेडियो और तरह-२ के खेलों का प्रबन्ध रहता है। दवा का भी प्रबन्ध रहता है। C सेन्टर में काम और भी छोटे पैमाने पर होता है।

संयुक्त प्रान्त में सन् १९४३ में इस तरह के २४ केन्द्र थे, वह कानपुर, आगरा, बरेली, फीरोजाबाद, हाथरस, सहारनपुर अलीगढ़, मिरजापुर, लखनऊ आदि स्थानों पर पाये जाते हैं। कभी २ एक शहर में कई केन्द्र होते हैं। जैसे कानपुर में तीन A केन्द्र, चार B केन्द्र तथा छै C केन्द्र हैं। केन्द्रों की संख्या शहर के औद्योगिक महत्व पर निर्भर है। सन् १९४४ में संयुक्त प्रान्त की सरकार ने अपना मजदूर-भलाई डिपार्टमेंट (Labour Welfare Department) स्थायी कर दिया और अब वही मजदूरों की भलाई का कार्य करता है।

जच्चा की भलाई के कानून—जच्चा की भलाई के लिए अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ ने आरंभ से ही बड़ा जोर डाला। पर भारत सरकार ने कोई भी कानून पास नहीं किया। इस तरफ सबसे पहले बम्बई सरकार ने ध्यान दिया और उसने १९२९ में एक कानून पास किया। ऐसे ही कानून १९३१ में मध्य प्रान्त में, १९३५ में मद्रास में तथा १९३८ में संयुक्त प्रान्त में पास हुए। अन्य प्रान्तों में भी यह पास हो रहे हैं। इसके अनुसार जच्चा होने के कुछ समय पहले से कुछ समय बाद तक (अधिकतर १ महीना या

१३ महीने तक) स्त्रियों को मिल मालिक की तरफ से वेतन मिलता रहता है। वेतन कहीं २ आठ आना रोज है और कहीं २ उस स्त्री के औसतन वेतन के हिसाब से दिया जाता है। उतने दिन वह औरत किसी दूसरी जगह काम नहीं कर सकती। संयुक्त प्रान्त में इस कानून के अनुसार यदि किसी औरत ने छे महीने तक काम कर लिया हो तो इस वेतन को अधिकारी हो जाती है। जब औरतें मिलों में काम करती हैं तो उनके बच्चों की ठीक से निगरानी रखने के लिये मिलों में बालक-गृह खोले गये हैं। एक ऐसे ही बालक-गृह का चित्र नीचे दिया गया है।



चित्र ३४—बालक-गृह

केन्द्रीय-सरकार के कार्य

फैक्टरी एक्ट—केन्द्रीय सरकार ने भी मजदूरों की भलाई के लिये अनेक कानून पास किये हैं। उन्होंने मजदूरों की दशा सुधारने के लिये कई फैक्टरी एक्ट पास किये हैं। पहला कानून सन् १८८१ में पास हुआ। इसके बाद १८९१ में। तीसरा १९११ में पास हुआ और चौथा १९२२ में। उसके बाद सन् १९४५ में एक नया फैक्टरी एक्ट पास किया गया। इन कानूनों द्वारा सरकार मजदूरों के काम के घण्टे निर्धारित कर देती है, उनको बीच में छुट्टी देने पर जोर देती है, बालकों को कारखानों में काम नहीं करने देती, उनको प्रति सप्ताह छुट्टी दिलाती है; उनके काम करने के स्थानों को साफ-सुथरा रखने का अनुरोध करती है तथा कारखानेदारों से उनके पीने के लिये साफ पानी का प्रबन्ध कराती है। इन कानूनों से कारखानेदारों की बुराइयाँ काफी कम हो गई हैं। सरकार के अफसर समय २ पर कारखानों का निरीक्षण करते हैं और यदि कोई कारखानेदार कानून तोड़ता है तो उसे दण्ड देते हैं।

कर्जा कानून—पहले कर्जदार मजदूरों को बहुत तंग करते थे। १९३७ में सरकार ने एक कानून पास कर दिया जिसके अनुसार मजदूर, जिसका वेतन १०० रु० माहवार से कम है, उनकी तनखाह कर्जों के निबटाने में जब्त नहीं की जा सकती। कर्जदारों को कारखानों के आस-पास फिरना भी गैर-कानूनी करार दे दिया गया है।

मजदूर क्षतिपूर्ति कानून—भारत सरकार ने मजदूरों की भलाई के लिये सन् १९२३ में एक कानून पास किया जो कि

मजदूर क्षतिपूर्ति कानून (Workmen's Compensation Act) कहलाता है। यह कानून बाद में कई दफा बदल चुका है।

इस कानून के अनुसार यदि कारखाने में काम करते समय किसी मजदूर को चोट लग जाय या उसकी मृत्यु हो जाय तो मिल-मालिक को श्रमिक को या उसके वारिजों को क्षति देनी पड़ती है। क्षति निर्धारण करने का काम प्रान्तीय-सरकार द्वारा नियुक्त श्रम कमिश्नर (Labour Commissioner) कहते हैं।

यदि किसी मजदूर को मामूली चोट लगी है जिससे वह थोड़े समय के लिये काम पर नहीं आ सकता तो उसको अधिक से अधिक पाँच वर्ष तक क्षति मिलेगी। क्षति की दर १० रु० माहवार से २०० रु० माहवार तक है। श्रमिक जो वेतन पा रहा था उसके अनुसार वह तय की जाती है।

यदि चोट स्थायी है जिससे वह कोई काम नहीं कर सकता तो उसे मुआवजा ७०० रु० से लेकर ५,६०० रु० तक मिल सकता है। मुआवजा केवल एक बार ही मिलेगा। मृत्यु हो जाने पर अधिक से अधिक ४,००० रु० तक क्षति मिल सकती है। मजदूर के वेतन पर वह दर निश्चित होती है।

स्वास्थ्य-बीमा कानून—केन्द्रीय सरकार ने अभी हाल में एक कानून पास किया है जो कि स्वास्थ्य-बीमा कानून कहलाता है।

मजदूर जब बीमार पड़ते थे तो उनकी आमदनी समाप्त हो जाती थी। इस कारण उनके घर में आफत आ जाती थी। गरीबी के कारण वह अपना इलाज भी नहीं करा सकते थे। इस तरह उनकी सब तरफ से दशा बिगड़ जाती थी।

इस कानून के अनुसार अब मजदूरों को आठ आना से सवा रुपया माहवार तक बीमा में देना पड़ेगा। मिल मालिक भी छै आना प्रति माह प्रति मजदूर के हिसाब से बीमा में जमा किया करेंगे। इस धन से बीमारी के समय मजदूरों का मुफ्त इलाज होगा तथा उनको कुछ वेतन भी मिला करेगा। इस तरह बीमारी के समय मजदूरों की हालत खराब न होगी।

न्यूनतम वेतन—सरकार ने मिलों के मजदूरों का न्यूनतम वेतन भी निर्धारित कर दिया है। वेतन उससे कम नहीं हो सकता।

मिलों द्वारा किये गये कार्य

मकान—मजदूरों की भलाई के लिये मिलों ने भी काम किये हैं। कई मिलों ने मजदूरों के रहने के लिये हवादार पक्के मकान बनवाये हैं। वह स्थान उनको सस्ते किराये पर दे दिये जाते हैं। वहाँ पर रोशनी के लिये बिजली, तथा पानी के लिये नल लगे होते हैं। शौच-स्थान भी अलग होते हैं। उनको साफ रखने के लिये मिल-मालिक फिनायल आदि का भी प्रबन्ध करते हैं।

अस्पताल—मजदूरों की स्वास्थ्य-रक्षा के लिये मिलों में अस्पताल खोले गये हैं। अस्पताल में डाक्टर मजदूरों का मुफ्त इलाज करते हैं तथा मुफ्त दवा भी देते हैं। स्त्रियों के लिये लेडी-डाक्टर अलग होती है और बच्चा पैदा करने के लिये एक अलग वार्ड होता है। इन अस्पतालों में मजदूरों के सभी घर वालों का इलाज होता है।

पढ़ाई-लिखाई—मजदूरों के बच्चों को पढ़ाई की भी सुविधा दी जाती है। इसके लिये मिलों ने मदरसे खोले हैं। कहीं-कहीं पर तो हाई स्कूल तक की शिक्षा दी जाती है। मजदूरों के बच्चों से कुछ भी फीस नहीं ली जाती।

आमोद तथा खेल—मजदूर तथा उनके बच्चों के खेल-कूद का भी प्रबन्ध मिल की तरफ से होता है। इसके लिये उनको फुटबाल, वालीबाल, अखाड़ेबाजी आदि के साधन प्राप्त रहते हैं।

अन्य—इनके अतिरिक्त मिलों में मजदूरों को साफ पानी पीने का प्रबन्ध रहता है। कारखानों में रोशनी तथा हवा का समुचित प्रबन्ध रहता है। कारखानों में ही शौच-स्थान तथा पेशाब-घर बने रहते हैं जो कि साफ सुथरे होते हैं। उनके लिये वाचनालय तथा पुस्तकालय भी होते हैं। सभी मिलों में मजदूर 'अफसर' (Labour Officers) होते हैं जिनका काम मजदूरों के हितों को देखना है।

इस तरह केन्द्रीय सरकार, प्रान्तीय सरकार तथा मिल-मालिक सभी ने मिलकर मजदूरों की भलाई की तरफ ध्यान दिया है। क्योंकि मजदूर बड़े २ शहरों में पाये जाते हैं तथा सगठित होते हैं इसीलिये उनकी भलाई करना सरल है। गाँव दूर-दूर हैं तथा एक गाँव में थोड़े से व्यक्ति रहते हैं। इस कारण वहाँ भलाई कार्य सुगमता से नहीं हो सकते। इतना सब होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि केवल बड़ी-बड़ी मिलों के मजदूरों की दशा अच्छी है। जो मिलें फैक्टरी एक्ट के अंदर आ जाती हैं उनको तो सब तरह की भलाई के कार्य करने पड़ते

हैं। बाकी मजदूरों की दशा अच्छी नहीं। उनकी तरफ सरकार को ध्यान देना चाहिये।

सारांश

हमारे देश में प्रान्तीय सरकार, केन्द्रीय सरकार तथा मिल-मालिक सभी ने मिलकर मजदूरों की दशा को सुधारने के प्रयत्न किये हैं। प्रान्तीय सरकारों ने स्थान-स्थान पर मजदूर-भलाई केन्द्र खोले हैं जहाँ पर मजदूरों के आमोद-प्रमोद का सामान रहता है, उनके लिये अस्पताल रहते हैं; ड्रामा, भजन आदि का प्रबन्ध रहता है तथा वाचनालय और पुस्तकालय भी रहते हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने मजदूरों के लिये मकान भी बनवाये हैं। उन्होंने जञ्चा-भलाई कानून भी पास किये हैं।

केन्द्रीय सरकार ने फैक्टरी कानून, कर्जा कानून, मजदूर-क्षतिपूर्ति कानून तथा स्वास्थ्य बीमा कानून मजदूरों की भलाई के लिये पास किये हैं।

मिल मालिकों ने भी मजदूरों के लिये मकान, अस्पताल, मदरसा, खेल-कूद के सामान, वाचनालय आदि खोले हैं।

परन्तु यह लाभ केवल उन मजदूरों को हुआ है जो कि बड़ी-बड़ी मिलों में काम करते हैं। जो मिलें फैक्टरी कानून के अंतर्गत नहीं आती वहाँ मजदूरों की दशा अच्छी नहीं। उनकी दशा सुधारने का सरकार को प्रयत्न करना चाहिये।

प्रश्न

१. हमारे देश में मजदूरों की भलाई के लिये क्या-क्या कार्य किये गये हैं ? विस्तारपूर्वक लिखिये।
२. प्रान्तीय सरकारों ने मजदूरों की भलाई के लिये क्या-क्या काम किये हैं ?

श्रमिकों की भलाई के कार्य

३९३

३. मजदूर-भलाई केन्द्र क्या हैं ? यह कितनी तरह के होते हैं ? इनका क्या काम है ? संयुक्त प्रान्त में यह कहाँ-कहाँ पाये जाते हैं ?
 ४. केन्द्रीय सरकार के मजदूरों की भलाई के कार्यों का उल्लेख कीजिये ।
 ५. मजदूर क्षतिपूर्ति कानून विस्तार से बताइये ।
 ६. क्या आप स्वास्थ्य-बीमा के पक्ष में हैं ? इसमें क्या लाभ है ?
 ७. मिल-मालिकों द्वारा भलाई के कार्यों का वर्णन कीजिये ।
 ८. यदि आपने कोई मिल देखी हो तो वहाँ पर मजदूरों की भलाई के लिये जो कार्य किये गये हैं उनको बताइये ।
-

अध्याय बत्तीस

मजदूर-संघ

श्रम शीघ्र नाशवान वस्तु है। यदि मजदूर अपने श्रम को काम में न लावे तो श्रम नष्ट हो जावेगा। यदि मजदूर एक दिन काम पर न जावे तो उस दिन की उसकी मेहनत बेकार चली जावेगी। वह उस दिन की मेहनत को जोड़कर नहीं रख सकता। इसलिये हर मजदूर के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि जहाँ तक संभव हो वह नित्य ही काम पर जाकर श्रम करता रहे। गरीब होने के कारण उनको रोज काम करके अपना पेट भरना पड़ता है। श्रम के नाशवान होने से तथा अपनी गरीबी के कारण मजदूर वेतन के लिये लड़-भगड़ नहीं सकता। उसके लिये नित्य काम पर जाना आवश्यक है इसलिये वह भगड़ कर करे क्या? इस बात का परिणाम यह निकला कि मिल-मालिकों ने श्रमिकों को बुरी तरह से तंग करना शुरू कर दिया। हमारे देश में ही नहीं सभी देशों में मजदूरों को इतना कम वेतन मिलता था कि वह अपना पेट भी नहीं भर सकते थे। उनकी आर्थिक दशा बहुत ही खराब थी।

उनकी गिरी हुई दशा को देखकर मजदूरों के साथ हमदर्दी रखने वाले विद्वानों ने यह सोचा कि यदि मजदूर अलग-अलग रहें तो वह कुछ भी नहीं कर सकते। परन्तु यदि वह सब मिल कर काम करें और अपनी दशा तथा वेतन बढ़ाने के लिये संगठित होकर आन्दोलन करें तो मिल मालिक अवश्य ही

उनकी बात मान जावेंगे। इसी भावना को लेकर विभिन्न देशों में मजदूर-आन्दोलन आरम्भ हुए। मजदूर संघों की स्थापना भी उसी आन्दोलन का परिणाम है।

मजदूर संघों का काम मजदूरों के आर्थिक हितों की रक्षा करना है। यदि किसी स्थान पर उनके वेतन कम हैं तो उनको बढ़वाने के लिये आन्दोलन करना, यदि किसी मजदूर को कोई बड़ा अफसर तंग कर रहा है तो उस अफसर के खिलाफ रिपोर्ट करना; यदि किसी मजदूर को अकारण निकाल दिया गया है तो उसको पुनः काम पर लगवाना; यदि मिलों में काम करने की हालत खराब है तो सफाई, रोशनी आदि के लिये मिल-मालिक से कहना आदि हैं। मजदूरों के लिये यह आवश्यक नहीं कि वह किसी मजदूर-संघ के सदस्य अनिवार्य रूप से हों। परन्तु उनके आर्थिक हितों की रक्षा के लिये कार्यवाही वहीं संघ करेगा जिसके वह सदस्य हैं। यदि वह किसी संघ के सदस्य नहीं तो कोई भी संघ उनके लिये कुछ भी न करेगा। मजदूरों को संघ के सदस्य बनने के लिये कुछ चंदा देना पड़ता है।

भारतवर्ष में मजदूर आन्दोलन

भारतवर्ष में मजदूर आन्दोलन का आरम्भ सन् १८७५ में हुआ और उसका श्रेय श्री सोराबजी सोपुरजी बंगाली को प्राप्त है। सन् १८७५ में भारत सरकार ने बम्बई के मिलों के मजदूरों की जाँच-पड़ताल के लिये एक कमीशन नियुक्त किया था। उस कमीशन ने यह रिपोर्ट दी कि बम्बई सरकार को मजदूरों की रक्षा के लिये कोई कानून (Factory Laws) बनाने की

आवश्यकता नहीं। इस पर श्री बंगाली ने मजदूर आन्दोलन आरम्भ कर दिया। इन्हीं के आन्दोलन का परिणाम था कि सन् १८८१ में पहला फैक्टरी एक्ट हमारे देश में पास हुआ जिसके अनुसार ७ से १२ वर्ष तरु के बालक मिलों में प्रति दिन ९ घन्टे से अधिक काम नहीं कर सकते थे।

परन्तु यह कानून काफी न था। इसमें परिवर्तन कराने के लिये श्री नारायण मेघजी लोखाडे ने मजदूरों का एक सम्मेलन बम्बई में बुलाया। उसमें उन्होंने अपनी कुछ माँगे रखी और उस पर ५,५०० मजदूरों के हस्ताक्षर कराये। उस माँग की पूर्ति पर जोर डालने के लिये एक दूसरी सभा बम्बई में २४ अप्रैल सन् १८९० में हुई। इस सभा में १०,००० मजदूर उपस्थित थे। इस विराट सभा का ऐसा प्रभाव पड़ा कि मिल-मालिकों ने मजदूरों की कुछ माँगे मान ली और उन्हें साप्ताहिक छुट्टी देना आरम्भ कर दिया।

मजदूर सङ्घ—मजदूर आन्दोलन जोर पकड़ता चला गया और १८९० में श्री लोखाडे ने 'बम्बई-मिल मजदूर-संघ' नामक संस्था स्थापित की। हमारे देश में सबसे पहला यही मजदूर-संघ बना था। सन् १९१० में बम्बई के मजदूरों के एक नये सगठन 'कामगार हितवधेक सभा' की स्थापना हुई। यह भी एक प्रकार का मजदूर-संघ था और इसने मजदूरों को मिलों में अधिक सुविधा दिलाने के लिये आन्दोलन करने को एक "कामगार समाचार" नाम का साप्ताहिक पत्र भी निकाला। इससे मजदूरों में नई चेतना फैली।

पहले महासमर के बाह्य देश में रालेट एक्ट तथा जलियान वाला बाग के कारण राष्ट्रीय हलचल आरम्भ हुई और महात्मा

गांधी आदि नेता पकड़ गये। मजदूर आन्दोलन इससे अछूता न रहा। मजदूर भी छुब्ध हो उठे। रूस के क्रान्तिकारी आन्दोलन ने उनकी आँखें खोल दीं। उन्होंने अपनी शक्ति पहचानी। उन्होंने देखा कि शक्तियों की शोषित जनता भी कुछ कर सकती है, अपने उज्ज्वल भविष्य की कल्पना से उन्हें नई शक्ति मिली। इसी समय उन्हें साम्यवादी (Communist) नेता भी मिल गये और उन्होंने मजदूरों का संगठन आरम्भ कर दिया। परिणाम यह हुआ कि मजदूर आन्दोलन जोरों से चल उठा।

उद्योग-धन्धों में काम करने वाले मजदूरों का सबसे पहला श्रमिक-संघ २७ अप्रैल, १९१८ में श्री बाड़िया के नेतृत्व में मद्रास में खुला। इसके साथ ही मद्रास में ट्राम, प्रेस, रिक्सा खींचने वाले, मोटर ड्राइवर, अलमूनियम के कारखानों के मजदूरों आदि के अलग २ संघ स्थापित हो गये। इसी तरह के संघ अन्य औद्योगिक शहरों में—बम्बई, कलकत्ता, अहमदाबाद में भी बने। ५ फरवरी १९२० को महात्मा गांधी ने अहमदाबाद के सूती कपड़ों के कारखाने का प्रसिद्ध श्रमिक-संघ स्थापित किया जो कि भारत वर्ष भर में सबसे अधिक सुसंगठित है।

अखिल-भारतीय-ट्रेड यूनियन कांग्रेस—सन् १९२० तक मजदूरों का अच्छा संगठन हो चुका था और सभी औद्योगिक केन्द्रों में श्रमिक-संघ स्थापित हो चुके थे। अतएव सन् १९२० में भारतवर्ष भर के मजदूरों को मिलाकर 'अखिल-भारतीय ट्रेड यूनियन-कांग्रेस' का अधिवेशन स्वर्गीय लाला लाजपतराय के नेतृत्व में ३१ दिसम्बर को बम्बई में हुआ। इस अधिवेशन

में उन्होंने काम के घन्टे, वेतन, मकानों की सुविधा, चिकित्सा, अस्पताल, छुट्टी, चोट लग जाने पर हर्जाना आदि के विषय में महत्वपूर्ण माँगे रखीं।

ट्रेड-यूनियन कानून—भारतवर्ष में मजदूर संघों की बढ़ती हुई प्रगति देखकर सन् १९२६ में भारत-सरकार ने एक ट्रेड-यूनियन ऐक्ट (मजदूर-संघ कानून) पास किया जिसके अनुसार यह स्पष्ट हो गया कि यदि कोई मजदूर-संघ अपनी रजिस्ट्री करा लेगा तो उस पर दीवानी या फौजदारी मुकद्दमा नहीं चल सकता। दूसरे शब्दों में संघों को हड़ताल करने का अधिकार मिल गया।

ट्रेड-यूनियन कांग्रेस में फूट—ट्रेड-यूनियन कांग्रेस अभी तक कांग्रेस के मत से सहमत थी और कांग्रेस के नेता ही इसकी देख-रेख करते थे। परन्तु धीरे-धीरे इस अखिल-भारतीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस में दो दल हो गये। जब नागपुर में सन् १९२९ में पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में सभा हुई तो वाम पक्ष वाले अलग हो गये। उन्होंने श्री एन० एम० जोशी की अध्यक्षता में ट्रेड-यूनियन फेडरेशन खोल ली। सन् १९३० में जब कलकत्ता में ट्रेड-यूनियन कांग्रेस का अधिवेशन श्री सुभाशचन्द्र बोस की अध्यक्षता में हुआ तो साम्यवादी (Communist) लोग भी उससे अलग हो गये और उन्होंने लाल-ट्रेड-यूनियन कांग्रेस (Red Trade Union Congress) खोल ली। इस तरह सन् १९३० तक भारतवर्ष में तीन अखिल-भारतीय मजदूर संघ खुल गये (१) ट्रेड-यूनियन कांग्रेस जो कांग्रेस के मत से सहमत था (२) ट्रेड यूनियन फेडरेशन जो वाम पक्षी था तथा (३) लाल-ट्रेड-यूनियन कांग्रेस जो साम्यवादी था।

कांग्रेस सरकार—सन् १९३६ में प्रान्तों में कांग्रेस सरकारें बन गईं। मजदूर प्रसन्न हो उठे। अपने हितों के लिये वह उठे तथा देश भर में हड़ताले हुईं। सरकार ने उनकी उचित माँगों को माना तथा उनके वेतन कुछ बढ़े। प्रान्तीय सरकारों ने उनकी दशा जाँचने के लिये कमीशन भी नियुक्त किये।

आन्दोलन में एकता—साथ ही मजदूर आन्दोलन में एकता कराने के प्रयत्न हुए। साम्यवादियों ने अपनी गलती मानी और सन् १९३६ में लाल-ट्रेड यूनियन कांग्रेस को बंद कर कांग्रेस में मिल गये। सन् १९३८ में ट्रेड-यूनियन फेडरेशन भी ट्रेड-यूनियन कांग्रेस में सम्मिलित हो गई और इस तरह सन् १९३८ में ट्रेड-यूनियन कांग्रेस पुनः सभी मजदूरों की एकमात्र प्रतिनिधि बन गई।

दूसरा महायुद्ध—सन् १९३९ में दूसरा महासमर आरम्भ हो गया। कांग्रेस ने सरकार का विरोध किया क्योंकि उन्होंने भारतवर्ष की बिना मर्जी के उसे युद्ध में ढकेल दिया था। इस कारण कांग्रेस ने युद्ध-कार्य में सहायता देने से इन्कार कर दिया। श्री एम० एन० राय ने सन् १९३९ में एक अलग 'लेबर फेडरेशन' खोल ली और वह सरकार को युद्ध कार्य में सहायता देती रही।

उधर सन् १९४२ में महामना महात्मा गांधी के नेतृत्व में जन-क्रान्ति आरम्भ हुई। ब्रिटिश सरकार का दमन चक्र चला। हजारों मरे, लाखों घायल हुए और सब देश-सेवी जेलों में ठूँस दिये गये। अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी को गैर-कानूनी करार दे दिया गया। उस समय कांग्रेस तथा समाजवादी नेता एक थे। सभी जेल में बन्द थे। उस समय साम्यवादी नेता

रूस के इंग्लैण्ड की तरफ आ जाने के कारण भारत-सरकार के युद्ध-कार्य में सहायक हो गये। कांग्रेसी तथा समाजवादी नेताओं के चले जाने से अखिल-भारतीय-ट्रेड-यूनियन कांग्रेस पर कम्यूनिस्टों का अधिकार हो गया।

मजदूर-सेवक-संघ—जेल से छूटने के उपरांत महात्मा गांधी के कहने पर कांग्रेस के नेता मजदूर आन्दोलन में अधिक भाग लेने लगे। अभी तक वह राजनीति में अधिक लगे रहते थे और मजदूरों का संगठन समाजवादी नेता करते थे। इसलिये सन् १९४६ में सरदार वल्लभभाई पटेल तथा गुलजारीलाल नन्दा (जो बम्बई प्रान्त के श्रम-मन्त्री हैं) के नेतृत्व में मजदूर-सेवक-संघ की स्थापना हुई। कांग्रेस सरकार ने सन् १९४६ में पुनः उत्तरदायी शासन स्थापित कर लिया था। उसी वर्ष देश में हड़तालों का ताँता लग गया। उस वर्ष जितनी हड़तालें हुई थीं इतनी कभी नहीं हुई।

कांग्रेस ने मजदूर-सेवक-संघ तो खोल ही लिया था। सन् १९४७ में जब उस संघ का वार्षिक अधिवेशन देहली में हुआ तो उस समय राष्ट्रीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस (Indian National Trade Union Congress) की स्थापना कर दी गई और आजकल उसके अध्यक्ष श्री हरीहर नाथ शास्त्री हैं। इस तरह कांग्रेस की राष्ट्रीय ट्रेड-यूनियन कांग्रेस बन गई। राय वालों की लेकर फेडरेशन थी ही। ट्रेड-यूनियन कांग्रेस पर कम्यूनिस्टों का प्रभुत्व था। समाजवादियों के सामने समस्या थी कि वह कांग्रेस में मिलकर काम करें या अलग। उन्होंने भी अपना अलग संघ स्थापित कर लिया है जिसके नेता श्री जय अकाश नारायण हैं। इस तरह हमारे देश में आजकल कांग्रेस

या राष्ट्रीय-मतवाली, समाजवादी, साम्यवादी तथा रायवादी चार मजदूर संघ हैं।

मजदूर आन्दोलन की दुर्बलता—हमारे देश का मजदूर आन्दोलन ठीक तरह से संगठित नहीं है। राजनैतिक पार्टियों ने इस पर अधिकार कर रखा है और वह मजदूरों से हितों के दृष्टिकोण से नहीं राजनैतिक विचार से काम करती हैं। यदि 'कम्यूनिस्ट कान्ग्रेस' से नाराज हैं तो वह हड़तालों' अवश्य करावेंगे चाहे मजदूरों का हड़तालों से कोई लाभ न हो। इस कारण यह संघ मजदूरों की अधिक भलाई नहीं कर सके हैं।

दूसरे मजदूरों के नेता स्वयं मजदूर नहीं। वह मध्यवर्ग के पढ़े-लिखे व्यक्ति हैं। उनकी कुछ राजनैतिक सहानुभूतियाँ हैं। इस कारण वह मजदूरों को ठीक रास्ते पर नहीं ले जा रहे।

यह अत्यन्त आवश्यक है कि मजदूर संघों को अपना राजनैतिक बाँना छोड़ देना चाहिये। उनको केवल मजदूरों के आर्थिक लाभ का ध्यान रख कर तथा देश की आर्थिक भलाई का विचार कर ही काम करना चाहिये। तभी वह देश के मजदूर-आन्दोलन को ठीक रास्ते पर ले जा सकेंगे। यदि ऐसा हुआ तो उनके आपस के भेद-भाव भी मिट जावेंगे।

सारांश

श्रम नाशवान वस्तु है। इसलिये श्रमिकों की मोल-तोल करने की शक्ति कम होती है। इस शक्ति को वह संगठन से बढ़ा सकते हैं। इसी लिये मजदूर संघ स्थापित होते हैं। मजदूर-संघों का काम मजदूर की आर्थिक भलाई करना है।

हमारे देश में पहला मजदूर संघ १८६० में बम्बई में श्री लोखाडे ने स्थापित किया। सन् १६१० में कामगर हितवर्धक सभा खुली। सन् १६१८ में उद्योगधन्धों में काम करने वाले मजदूरों का संघ मद्रास में खुला। रिकशा, तांगा, मोटर, प्रेस आदि में काम करने वालों के अलग २ संघ बम्बई, मद्रास, अहमदाबाद आदि शहरों में भी खुल गये। सन् १६२० में महात्मा गांधी ने अहमदाबाद के सूती कारखानों में काम करने वाले श्रमिकों का एक संघ स्थापित किया।

सन् १६२० में अखिल-भारतीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस को स्थापना हुई जो देश भर के मजदूरों के हितों की रक्षा करती थी। सन् १६२६ में बाम-पक्षी इससे अलग हो गये और उन्होंने ट्रेड-यूनियन फेडरेशन खोल ली। कम्युनिस्टों ने भी १६३० में लाल ट्रेड यूनियन काँग्रेस अलग स्थापित करली।

सन् १६३६ में जब काँग्रेस सरकारें प्रान्तों में बनी तो १६३७ में कम्युनिस्ट और १६३६ में ट्रेड-यूनियन फेडरेशन भी ट्रेड-यूनियन काँग्रेस में मिल गईं जो कि पुनः पूरे देश के मजदूरों की प्रतिनिधि हो गईं। परन्तु यह एकता अधिक समय तक न चल सकी। सन् १९-३६ में एम० एन० राय ने 'लेबर फेडरेशन' अलग खोल ली। सन् १६४२ में काँग्रेस तथा समाजवादी नेता जेल में चले गये थे। उस समय ट्रेड-यूनियन काँग्रेस पर साम्यवादियों ने अधिकार कर लिया था। जेल से निकलने पर काँग्रेस वालों ने सन् १६४६ में मजदूर-सेवक संघ खोला और १६४७ में राष्ट्रीय ट्रेड यूनियन काँग्रेस की स्थापना करली। सन् १६४८ में समाजवादियों ने भी एक अलग यूनियन बना ली। इस तरह इस समय हमारे देश में चार मजदूर ट्रेड यूनियन काम कर रही हैं।

देश में यह मजदूर संघ मजदूरों के आर्थिक हितों का ध्यान न करके राजनीति की तरफ अधिक ध्यान देते हैं। मजदूर-नेता अपना प्रभुत्व रखना चाहते हैं। यह बुरी बात है। मजदूरों का भला तभी होगा जब मजदूर संघ राजनीति से पीछा छुड़ा लें।

प्रश्न

१. मजदूर संघ से आप क्या मतलब समझते हैं ? इनका क्या काम है ? इनसे मजदूरों को क्या लाभ हो सकते हैं ?
२. हमारे देश में मजदूर संघों की स्थापना कब हुई ? क्या यह श्रमिक आन्दोलन का एक अङ्ग है ?
३. अखिल-भारतीय ट्रेड-यूनियन काँग्रेस का इतिहास बताइये।
४. आज कल हमारे देश में कितने मजदूर-संघ काम कर रहे हैं ? उनको नीति में क्या भेद है ?
५. क्या हमारे देश के मजदूर संघ ठीक काम कर रहे हैं। आप उनमें क्या सुधार ठीक समझते हैं ?
६. देश के मजदूर-संघ आन्दोलन का इतिहास बताइये।

भाग ८
सहकारिता

[अध्याय : १. सहकारिता ? २. भारतवर्ष में सहकारी आन्दोलन । ३. प्रारंभिक कृषि-सहकारी-ऋण समितियाँ । ४. गैर-ऋण-ग्रामीण सहकारी समितियाँ । ५. बहु-धन्वी सहकारी समितियाँ । ६. सहकारी केन्द्री समितियाँ ।]

अध्याय तैंतीस

सहकारिता

सहकारिता (Co-operation!) हमारे देश के लिये कोई नया आन्दोलन नहीं। प्राचीन समय में हमारा ग्रामीण जीवन इसी सिद्धान्त पर आश्रित था। पहले गाँव के व्यक्ति एक दूसरे की सहायता करना अपना धर्म समझते थे। गाँव प्रत्येक बात में आत्म-निर्भर होते थे और प्रत्येक व्यक्ति की आवश्यकता की पूर्ति गाँव से ही हो जाती थी। पंचायत गाँव की सफाई ही नहीं लोगों के आपस के झगड़े भी दूर करती थी। उस समय में प्रचलित यजमानी प्रथा (जो कि मरी दशा में अब भी देखने को मिलती है) सहकारिता के सिद्धान्त पर ही निर्भर थी। यह यजमानी प्रथा मुगल साम्राज्य के समय तक को चलती रही परन्तु अंगरेजों ने इस प्रथा का अन्त कर दिया। पंचायतों का अन्त कर गाँवों में नई शासन-प्रणाली की नींव डाली। गाँवों को आत्म-निर्भरता के सुपथ से हटाकर उनको शहरों के आर्थिक-जीवन के साथ बाँध दिया। गाँवों को भी स्पर्धा का पाठ पढ़ाया। सहकारिता और सहयोग के स्थान पर व्यक्तिवाद और स्पर्धा की नींव पड़ी। गाँवों का पुराना जीवन, उनकी पुरानी रीतियाँ धीरे २ करके समाप्त हो गईं। उनमें आपस में मिलकर काम करने की भावना न रही। प्रत्येक व्यक्ति यह चाहने लगा कि वह दूसरे से अधिक अमीर हो जाय। इसलिये सब अलग २ होकर काम करने लगे। सामुहिक

कार्य में जो शक्ति थी वह क्षीण हो गई। क्योंकि गाँवों को शहर के आर्थिक-जीवन से बाँध दिया गया था इसलिये भनवानों के सामने गरीब किसान का कोई आस्तित्व न रहा। पूँजीवाद के चढ़ते हुए पौरुष के सामने वह ठहर न सके। जमींदारों के चंगुल में फस कर वह निकल न सके और उनका शोषण आरम्भ हो गया। यह शोषण दो शताब्दियों तक चलता रहा। अन्य देशों के किसान जब उन्नति के पथ पर बढ़ते जा रहे थे, हमारे किसान सूख कर काँटा होते जा रहे थे। उनकी धमनियों में इतना गर्भ रक्त ही न था कि वह आगे बढ़ सकते। वह मृत्यु प्रायः हो गये थे तथा उनका जीवन शुष्क हो गया था। निराशावाद ने उन्हें चारों तरफ से आ घेरा था और अन्धेरे में उन्हें कुछ सूझता न था। तभी फिर से पाश्चात्य देशों से चले हुए सहकारिता आन्दोलन का पाठ उन्हें सुनाये जाने लगा। वास्तव में सहकारिता में ही किसानों की जीवन-आशा छिपी है, इसी में उनकी गरीबी दूर करने की निधि है, ऋण का बोझ हलका करने का उपाय निहित है और उन्नति का मार्ग बताने की क्षमता। यही कारण है कि आजकल सभी समझदार व्यक्ति इस आन्दोलन को काश्तकारों की सभी बुराइयों दूर करने का एक मात्र उपाय बताते हैं।

सहकारिता का अर्थ—जब सहकारिता का इतना महत्व है तो इसका अर्थ समझना भी आवश्यक है। सहकारिता का अर्थ है आर्थिक उन्नति के लिये आपस में मिलकर काम करने लिये के अपनी इच्छा से संगठित होना। इस परिभाषा में तीन बातें ध्यान में रखने लायक हैं। (१) सहकारिता में सब लोग आपस में मिलकर काम करते हैं। व्यक्ति

अपनी इच्छा समूह के अर्पित कर देते हैं और सब व्यक्ति सब की इच्छा से काम करते हैं। (२) सामुहिक रूप से काम करने के लिये किया गया यह संगठन लोगों की मर्जी पर निर्भर है। अर्थात् किसी भी व्यक्ति को इस संगठन में आने के लिये बाध्य नहीं किया जाता। (३) संगठन आर्थिक लाभ के लिये किया जाता है। परन्तु यह आवश्यक है कि आर्थिक लाभ देश के कानून के विरुद्ध काम करके न किया गया हो।

सहकारी आन्दोलन का जन्म—सहकारिता आन्दोलन का जन्म जर्मनी तथा डेनमार्क में उन्नीसवीं सदी में हुआ। उस समय जर्मनी के किसानों तथा मजदूरों की ऐसी ही दशा थी जैसे कि हमारे देश के किसानों की है। किसानों के खेतों की बुरी दशा थी और मजदूर कर्जदारों के चंगुल में बुरी तरह फँसे हुए थे। उनकी दशा देखकर जर्मनी के विद्वानों ने उनकी दशा सुधारने का प्रयत्न किया। श्रीयुत शूलजे-डीलिट्ज ने सहकारिता की प्रथा का मार्ग बताया तथा उन्हीं के बताये अनुसार शहरी सहकारी समितियों की नींव पड़ी। जब जर्मनी में शहरी जनता की भलाई की तरफ ध्यान दिया जा रहा था डेनमार्क में गाँवों में रहने वाले गरीब किसानों की दशा सुधारने के प्रयत्न हो रहे थे। इसी सम्बन्ध में श्रीयुत रैफिसन ने ग्रामीण-सहकारी समितियों की नींव डाली। यद्यपि दोनों ही प्रकार की समितियाँ सहकारिता के सिद्धान्त पर आश्रित हैं फिर भी इनमें कुछ भेद है।

सहकारी समितियों के भेद—ऊपर के वर्णन से आप समझ गये होंगे कि सहकारी समितियों के मुख्य दो भेद हैं—
(१) शहरी सहकारी समितियाँ या शूलजे-डीलिट्ज समितियाँ

तथा (२) ग्रामीण सहकारी समितियाँ या रैफिसन समितियाँ । इन दोनों के भेदों को नीचे स्पष्ट किया जाता है :—

ग्रामीण सहकारी समितियाँ—इन समितियों का काम करने का क्षेत्र छोटा होता है। प्रायः एक समिति केवल एक गाँव में ही काम करती है। इनका मूल धन थोड़ा होता है तथा उनके शेयर कम दामों के होते हैं जिससे प्रत्येक व्यक्ति उसे खरीद सके। प्रत्येक सदस्य या हिस्सा खरीदने वाले की जिम्मेदारी सामुहिक तथा अपरिमित होती है। अर्थात् प्रत्येक सदस्य सब सदस्यों के ऋण का जिम्मेदार होता है। इस कारण इन समितियों के संचालन में अत्यन्त सावधानी से काम करना पड़ता है। यह समितियाँ केवल अपने सदस्यों को ही रुपया उधार दे सकती हैं और वह भी केवल उत्पादक कार्यों के लिये। उपभोग के लिये यह रुपया उधार नहीं दे सकती। रुपया अधिक समय के लिये भी उधार दिया जा सकता है जिससे खेतों में स्थायी उन्नति की जा सके। इन समितियों का लाभ बाँटा नहीं जा सकता, वह जमा होता रहता है।

शहरी सहकारी समितियाँ—इन समितियों का संचालन ग्रामीण-समितियों से बिलकुल विपरीत ढंग पर होता है। इनका काम करने का क्षेत्र काफी बड़ा होता है। इनकी शेयर-पूँजी भी बड़ी होती है और शेयरों के दाम भी अधिक। इनके सदस्यों की जिम्मेदारी सीमित होती है। वह केवल अपने ही ऋण के लिये जिम्मेदार होते हैं। ऋण थोड़े समय के लिये दिया जाता है और केवल समिति के सदस्यों को ही दिया जाता है। समिति का लाभ सदस्यों में आपस में बाँट दिया जाता है; केवल थोड़ा

सा लाभ जमा किया जाता है। इनके संचालन के लिये मैनेजर को वेतन दिया जाता है।

सारांश

सहकारिता आन्दोलन हमारे देश के लिये कोई नई बात नहीं है। पुराने समय में भी हमारा ग्रामीण जीवन सहकारिता के सिद्धान्त पर आश्रित था। परन्तु उस सिद्धान्त का धीरे-धीरे लोप हो गया। अब यह बात स्पष्ट हो गई है कि हम सहकारिता से ही किसान जनता की भलाई कर सकते हैं।

सहकारिता के अर्थ हैं आर्थिक उन्नति के लिये आपस में मिल कर काम करने के लिये अपनी इच्छा से संगठित होना।

संसार में सहकारी आन्दोलन का जन्म जर्मनी तथा डेनमार्क में हुआ। सहकारी समितियाँ दो प्रकार की होती हैं—

(१) ग्रामीण तथा (२) शहरी। ग्रामीण समितियों का क्षेत्र छोटा, शेरों की कीमत कम तथा सदस्यों का उत्तरदायित्व अपरिमित होता है। यह केवल उत्पादक कार्यों के लिये ही रुपया उधार दे सकती हैं और इनका लाभ बाँटा नहीं जाता। शहरी समितियों का क्षेत्र बड़ा तथा सदस्यों का उत्तरदायित्व सीमित होता है। इनका लाभ बाँटा जा सकता है।

प्रश्न

१. सहकारिता की परिभाषा दीजिये और उसके अर्थ को ठीक से समझाइये।
२. सहकारिता तथा संगठन में क्या भेद है ? स्पष्ट कीजिए
३. क्या सहकारिता हमारे देश के लिये नया आन्दोलन है ?

४. सहकारिता आन्दोलन का जन्म कहाँ हुआ ? हमारे देश में यह कब फैला ?
५. सहकारी समितियों के मुख्य भेद क्या हैं ? उनमें आपस में क्या अंतर है ?
६. ग्रामीण तथा शहरी सहकारी समितियों के भेद स्पष्ट कीजिये ।

हाई-स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. सहकारिता के क्या मुख्य सिद्धान्त हैं ? इसने हमारे देश की ग्रामीण जनता की किस प्रकार मदद की है ? (१९४५)
२. किसानों को सहकारिता से क्या लाभ हैं ? सूक्ष्म में बताइये ।
(१९४६)

अध्याय चौतीस

भारतवर्ष में सहकारी आन्दोलन

सहकारी आन्दोलन का इतिहास—हमारे देश में सह-कारिता आन्दोलन केवल गाँव वालों की भलाई के प्रश्न को लेकर उठा और बहुत वर्षों तक उन्हीं तक सीमित रहा। सबसे पहले सन् १८८४ में सर् विलियम वैडरवर्न ने भारत सरकार से अनुरोध किया कि किसानों को ऋण देने के लिये देश में सहकारी आन्दोलन को आरम्भ किया जाय। परन्तु ब्रिटिश सरकार ने भारत सरकार को इस तरफ कदम उठाने की अनुमति नहीं दी और सर् वैडरवर्न के उद्योग निष्फल रहे। परन्तु किसानों की दशा दयनीय होती जा रही थी। यह देख कर मद्रास सरकार ने सन् १८९२ में सर् फ्रेड्रिक निकोलसन को किसानों की गरीबी दूर करने के निमित्त एक योजना बनाने के लिये नियुक्त किया। निकोलसन महोदय ने देश-विदेशों का भ्रमण कर वहाँ के किसानों की दशा का अध्ययन किया। अंत में उन्होंने मद्रास सरकार को यह सलाह दी कि प्रान्त में सहकारी समितियाँ खोली जाँय। मद्रास सरकार ने निकोलसन महोदय की सलाह मान ली तथा उस पर चलने का निश्चय कर लिया। फलतः वहाँ पर निधियों की, जो एक प्रकार से सहकारी ढंग पर ही रूपया उधार देते हैं, की संख्या जोरों से बढ़ने लगी। महामति रानाडे तथा सर् मैकडानल ने भी सहकारी

ऋण-समिति खोलने की आवश्यकता पर जोर डाला और मद्रास सरकार के प्रयत्नों की सराहना की। अन्त में भारत सरकार ने सन् १९०१ में एक कमेटी नियुक्त की जिम्मा कार्य इस बात की जाँच करना था कि देश में सहकारी समितियाँ कहाँ तक सफल हो सकती हैं। अंत में लार्ड कर्जन ने धारासभा में एक बिल भारतवर्ष में सहकारी-ऋण-समितियाँ खोलने के ध्येय से रखा। यह बिल २३ अक्टूबर, सन् १९०३ में पास हो गया और सन् १९०४ में कानून बन गया। यह कानून सहकारी-ऋण-समिति-कानून (१९०४) के नाम से प्रसिद्ध है।

सन् १९०४ का सहकारी-ऋण-समिति कानून—इस कानून के अनुसार एक गाँव या कस्बे के कोई भी दस व्यक्ति मिलकर एक सहकारी-समिति खोल सकते थे। इस समिति का कार्य रुपया जमा करने तथा उधार देने तक ही सीमित था। यह कोई भी अन्य कार्य नहीं कर सकती थी। यह अन्य व्यक्तियों का या सरकार का रुपया जमा कर सकती थी। सरकार से कर्जा भी ले सकती थी। परन्तु यह केवल सदस्यों को ही रुपया उधार दे सकती थी। सरकार समितियों का निरीक्षण करती थी तथा उनके हिसाब-किताब की वार्षिक जाँच-पड़ताल मुफ्त में करती थी। कानून का उद्देश्य लोगों में मितव्ययता, स्वावलम्बन, सहकारिता तथा मित्रता का पाठ पढ़ाना था।

सन् १९०४ के बाद—इस कानून के पास होते ही सहकारी-ऋण-समितियाँ जोरों से बढ़ने लगीं। कानून पास होने

के दो वर्ष के बाद ही समितियों की संख्या ८०० हो गई। परन्तु किसानों की भलाई के लिये यह आवश्यक समझा जाने लगा कि उनको सभी तरह की सहकारी समितियाँ खोलने की आज्ञा हो। सन् १९१२ तक सहकारी ऋण समितियों ने काफी प्रगति कर ली थी। केवल आठ वर्ष के अन्दर ही उनकी संख्या बढ़कर ८१७७ हो गई थी। परन्तु कानून का क्षेत्र संकुचित होने के कारण अधिक उन्नति नहीं हो सकती थी।

सन् १९१२ का कानून—फलतः भारत सरकार ने सन् १९१२ में सहकारी-समिति कानून (II) पास कर दिया। इसके अनुसार लोगों को सब तरह की सहकारी समितियाँ खोलने की आज्ञा दे दी गई। समितियाँ ग्रामीण तथा शहरों दोनों तरह के लोगों की भलाई के लिये खोली जा सकती थीं। इसके साथ सहकारी समितियों को कुछ नये-नये अधिकार भी मिल गये। यह पास हो गया कि किसान की कुर्की के समय उसके सहकारी-समितियों के हिस्से कुर्क नहीं किये जा सकते। यदि एक किसान पर समिति का रुपया चाहिये तथा अन्य किसी व्यक्ति का भी तो पहले समिति का रुपया अदा होगा और बाद में किसी दूसरे का।

सन् १९१२ के बाद—इस कानून के पास होते ही सहकारी आन्दोलन में नई जान आ गई। शीघ्र ही देश में नई-समितियाँ खुलने लगीं। खेती, चकबन्दी, बीज, क्रय-विक्रय, आबपाशी, खेल-कूद, घो-दूध गाँवों की सफाई आदि ऐसा कोई भी विषय न रहा जिसके लिये सहकारी समितियाँ न खुलीं हों। सन् १९१४ में सरकार ने मैक्लागन महोदय की अभ्यन्तता

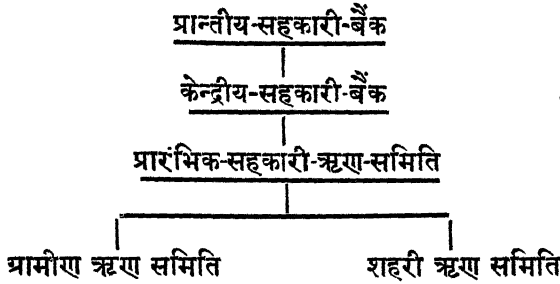
में एक कमिटी नियुक्त की जिसका कार्य सहकारी आन्दोलन की जाँच करना था। इस कमिटी ने अपनी रिपोर्ट सन् १९१५ में सरकार को भेज दी। उस रिपोर्ट में बताई गई सलाह के अनुसार सरकार ने इस आन्दोलन को पुनः संगठित करके इसके दोषों को दूर कर दिया। सन् १९१९ के भारतीय-कानून के अनुसार सहकारी-समितियों का देख-भाल तथा व्यवस्था प्रान्तीय सरकारों के जिम्मे आ गई। तबसे यह आन्दोलन निरंतर उन्नति करता जा रहा है।

सन् १९४०-४१ में संयुक्त प्रान्त में कुल १७ हजार सहकारी समितियाँ थीं। आठ लाख १८ हजार व्यक्ति उनके सदस्य थे तथा समितियों की पूँजी ३३ लाख रुपया थी।

भारतवर्ष में सहकारी समितियाँ—हमारे देश में गाँव तथा शहर दोनों स्थानों में सहकारी समितियाँ पाई जाती हैं। गाँव में पाये जाने वाली समितियों ग्रामीण सहकारी समितियाँ तथा शहर वाली शहरी सहकारी समितियाँ कहलाती हैं। ग्रामीण तथा शहरी समितियाँ दो भागों में बाँटी जा सकती हैं—(१) ऋण समितियाँ तथा (२) गैर-ऋण समितियाँ। इन दोनों तरह की समितियों की सबसे छोटी इकाई प्रारंभिक समितियाँ कहलाती हैं। यह स्थान २ पर पाई जाती हैं।

हमारे देश में अभी तक ऋण समितियों ने सबसे अधिक प्रगति की है। अतः इन समितियों की प्रारंभिक समितियों के अतिरिक्त केन्द्रीय तथा प्रान्तीय बैंक भी पाई जाती हैं। प्रत्येक जिले में एक केन्द्रीय बैंक होती है और जिले भर की प्रारंभिक ऋण समितियाँ उसकी सदस्य होती हैं। प्रान्त भर में एक

प्रान्तीय सहकारी बैंक होती है और प्रान्त भर की केन्द्रीय बैंकों उसकी सदस्य होती हैं। प्रान्तीय बैंकों का रिजर्व बैंक से सीधा सम्बन्ध है। इस तरह हमारे देश में सहकारी ऋण समितियों का निम्न लिखित ढाँचा है:—



सहकारी समिति खोलने का तरीका—किसी गाँव या शहर में सहकारी समिति खोलने का तरीका अत्यन्त सरल है। एक गाँव या एक शहर या एक जाति या एक काम करने वाले कोई भी दस व्यक्ति मिल कर रजिस्ट्रार के नाम एक प्रार्थना पत्र भेज सकते हैं कि वह सहकारी समिति खोलना चाहते हैं। इस पत्र में उन्हें समिति का उद्देश्य, उसके कार्य, उसकी पूँजी, शेयरों के दाम, उत्तरदायित्व का खुलासा, सदस्यों की संख्या तथा उनके शेयरों की संख्या के बारे में लिखना पड़ेगा। इस प्रार्थना-पत्र की जाँच करके रजिस्ट्रार समिति खोलने की आज्ञा दे देते हैं। समिति खोलने पर गाँव, समिति का पता, उसका आफिस, उसके सम्बन्ध आदि का हाल भी रजिस्ट्रार को भेजना पड़ता है। इस तरह से सहकारा समिति खोली जा सकती है।

सारांश

भारतवर्ष में सहकारी आन्दोलन को आरम्भ करने के लिये सन् १८८४ से प्रयत्न होना शुरू हुए। सर वैडरवर्न, महामति रानाडे तथा मैग्दानल ने इस ओर काफी प्रयत्न किये। मद्रास सरकार ने सर् निकोलसन को किसानों की दशा सुधारने के लिये कुछ उपायों को बताने को नियुक्त किया और उन्होंने भी सरकार को सहकारी समितियाँ खोलने की सलाह दी। अतः सन् १९०४ में भारत सरकार ने एक सहकारी-ऋण-समित-कानून पास कर दिया।

इसके अनुसार लोगों को प्रारंभिक-सहकारी-ऋण-समितियाँ बनाने की आज्ञा मिल गई। समितियाँ अन्य किसी काम के लिये नहीं खुल सकती थी। इनका कार्य रुपया जमा करना तथा उधार देना था।

सन् १९०४ के बाद इन समितियों की प्रगति बढ़ी और सन् १९१२ में दूसरा कानून पास किया गया जिसके अनुसार अन्य सब प्रकार की सहकारी समितियाँ बनाने की भी आज्ञा मिल गई। अब किसी भी कार्य के लिये सहकारी सामति खोली जा सकती है।

भारतवर्ष में दो प्रकार की सहकारी समितियाँ हैं :—(१) ग्रामीण तथा (२) शहरी। दोनों का व्यवस्था में काफ़ा अंतर है। ग्रामीण सहकारी समितियाँ के सदस्यों का उत्तरदायित्व अपरिमित होता है तथा शहरी का परामत। दोनों प्रकार का सहकारी समितियाँ ऋण तथा अन्य कार्यों के लिये खुली हैं।

इन प्रारंभिक समितियों के अतिरिक्त केन्द्रीय समितियाँ और प्रांतीय समितियाँ भी हैं। लेकिन यह केवल ऋण समितियाँ ही हैं।

एक सहकारी समिति खोलने के लिये किसी गाँव के या एक जाति के या एक तरह के काम करने वाले दस व्यक्ति मिलकर रजिस्ट्रार के यहाँ एक प्रार्थना-पत्र भेज सकते हैं। प्रार्थना-पत्र में

समिति का उद्देश्य, शेयर-पूँजी आदि के बारे में लिखना पड़ता है। रजिस्ट्रार प्रार्थना-पत्र की जाँच कर समिति खोलने की आज्ञा दे देते हैं।

प्रश्न

१. भारतवर्ष में सहकारी आन्दोलन की आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई ? इसका आरम्भ किनके प्रयत्नों द्वारा हुआ ?
२. सहकारी आन्दोलन का इतिहास लिखिये और बताइये कि उसने कितनी उन्नति की है।
३. सन् १९०४ के सहकारी कानून की मुख्य-मुख्य धाराओं का खुलासा कीजिए।
४. सन् १९१२ के सहकारी कानून की क्या-क्या मुख्य धारयाँ हैं ? इस कानून को पास करने की क्या आवश्यकता पड़ी ?
५. सन् १९१२ के सहकारी कानून के पास होने के बाद से देश में सहकारी आन्दोलन ने कितनी प्रगति की है ? अब इसकी क्या हालत है ?
६. भारतवर्ष में किस-किस तरह की सहकारी समितियाँ पाई जाती हैं ? उनमें क्या भेद है ?
७. भारतवर्ष में पाई जाने वाली सहकारी ऋण समितियों की विभिन्न सस्थाओं का वर्णन कीजिये।

हाई स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. सहकारी ऋण समिति क्या है ? यदि आपको एक ऐसी समिति खोलनी हो तो आप क्या करेंगे ? (१९४३)

अध्याय पैंतीस

प्रारम्भिक ग्रामीण सहकारी ऋण समितियाँ

हमारे देश में सन् १९१२ तक तो केवल सहकारी ऋण समितियाँ ही पाई जाती थीं। सन् १९१२ के बाद से अन्य प्रकार की सहकारी समितियाँ देश में खुलना आरंभ हुईं। परन्तु अब भी देश में ऋण समितियों का बाहुल्य है। सन् १९४०-४१ में कुल ग्रामीण-सहकारी समितियाँ १,२३,९७६ थीं जबकि शहरी-सहकारी समितियाँ कुल १७,५५९ ही थीं। इन ग्रामीण सहकारी समितियों में से १,०४,०८४ समितियाँ, यानी लगभग ८४ प्रतिशत, ऋण-समितियाँ थीं। देश में ग्रामीण तथा शहरी दोनों तरह की सहकारी ऋण समितियों को यदि देखा जाय तो उनमें से ९० प्रतिशत गाँवों में पाई जाती हैं। इसीसे आप ग्रामीण सहकारी ऋण समितियों के महत्व का अनुमान लगा सकते हैं। इसलिये इनके बारे में विस्तार से आपको बतावेंगे।

समिति की सदस्यता—प्रारम्भिक-ग्रामीण सहकारी-ऋण समितियों की सदस्यता प्रत्येक गाँव के रहने वाले को खुली है। किसी भी गाँव के दस व्यक्ति मिलकर एक समिति खोल सकते हैं। यदि किसी भी समय सदस्यों की संख्या दस से कम हो जाय तो वह समिति तोड़ दी जावेगी। समिति के सदस्यों की संख्या १०० से अधिक ही होनी चाहिये। समिति के सदस्य वही हो सकते हैं जो एक गाँव में अथवा पास के गाँवों में रहते हों अथवा एक ही जाति के हों।

सदस्यों के गुण—यों तो सदस्य होने के लिये कानूनन किसी विशेष गुण की आवश्यकता नहीं; परन्तु सदस्य बनाते समय यह देखा जाता है कि व्यक्ति ईमानदार है, उसका चाल-चलन ठीक है, तथा उसमें अन्य कोई अत्रगुण नहीं हैं। यह सब इमलिये देखा जाता है क्योंकि हर एक आदमी के कार्य के लिये समिति के सभी लोग जिम्मेदार होते हैं।

उत्तरदायित्व—ग्रामीण सहकारी ऋण समिति के सदस्यों की जिम्मेदारी अपरिमित होती है। अर्थात् प्रत्येक सदस्य केवल अपना कर्जा ही चुकाने का जिम्मेदार नहीं होता है परन्तु उससे समिति के सभी सदस्यों का कर्जा वसूल किया जा सकता है।

पूँजी—इन समितियों की पूँजी निम्नलिखित साधनों द्वारा प्राप्त होती है—

- (१) सदस्यों द्वारा खरीदे हुए शेयरों की पूँजी से;
- (२) सदस्यों द्वारा जमा किये हुये रुपये से;
- (३) अन्य लोगों द्वारा जमा किये हुये रुपये से;
- (४) सदस्यों से प्राप्त प्रवेश-फीस के रुपये से;
- (५) अन्य समितियों के जमा हुये रुपये या उनसे प्राप्त ऋण से;
- (६) केन्द्रीय-सहकारी-बैंक से लिये हुये कर्ज से;
- (७) सरकार से लिये हुये कर्जों से; तथा
- (८) रक्षित कोष के रुपये से।

इन साधनों में सदस्य का या अन्य व्यक्तियों का या अन्य सहकारी समितियों का जमा किया हुआ रुपया बहुत कम होत

है चाहे उनके पास समिति के कितने भी हिस्से क्यों न हों।

धबन्धकों का वेतन—कानूनन समिति के पंचों को कुछ भी वेतन नहीं दिया जा सकता। वह बिना कुछ लिये हुए ही काम करते हैं। यदि समिति का कोई भी सदस्य पढ़ा-लिखा न हो तो नहीं-खाता रखने के लिये किसी शिक्षित व्यक्ति को वेतन देकर नौकर रखा जा सकता है। परन्तु उसे वोट देने का अधिकार नहीं होगा।

ऋण—समिति केवल उत्पादक कार्यों के लिये ही कर्जा दे सकती है। सन् १९१४ के बाद से इन्हें पुराने कर्जों की अदायगी के लिये भी उधार रुपया देने को आज्ञा मिल गई है। ऋण लम्बे समय तक के लिए भी दिया जा सकता है। परन्तु पूँजी की कमी के कारण वह प्रायः थोड़े समय के ही लिये रुपया उधार देती हैं। विवाह-शादी या उपभोग के लिये यह कर्जा नहीं देती।

कर्जा लेने के लिये सदस्य को एक प्रार्थना-पत्र देना पड़ता है। इस प्रार्थना-पत्र में उसे यह भी लिखना पड़ता है कि वह किस कार्य के लिये रुपया उधार ले रहा है। उसको दो सदस्यों की जमानत देनी होती है।

लाभ—समिति का लाभ सदस्यों में बाँटा नहीं जाता। वह रक्षित-कोष में जमा होता रहता है। समिति के हिस्सेदारों में लाभ का बहुत थोड़ा सा भाग बाँट दिया जाता है। समिति यदि चाहे तो लाभ का दस प्रतिशत भाग दान-पुण्य पर व्यर्थ कर सकती है।

हिसाब-किताब—प्रत्येक समिति अपना हिसाब-किताब ठीक-ठीक तरीके पर रखती है। सरकार भी उसका निरीक्षण मुफ्त में करता है। इसके लिये एक अफसर नियुक्त किया जाता है।

समिति को प्राप्त सुविधायें—इन समितियों को निम्न-लिखित सुविधायें प्राप्त हैं :—

(१) यदि समिति ने किसी सदस्य को बीज या खाद खरीदने के लिये रुपया उधार दिया है तो उस सदस्य द्वारा उत्पन्न फसल से रुपया वसूल करने का समिति का सबसे पहला अधिकार होगा। यदि अन्य किसी व्याक्त का उस सदस्य पर रुपया चाहिये तो समिति का रुपया चुक जाने पर ही वह रुपया वसूल कर सकता है। यही नियम समिति के रुपयों से खरीदे गये गाय-बैल, हल, खेती के औजार, अन्य धन्धों में काम आने वाले आजार या धन्धों के लिये आवश्यक कच्चे माल के बारे में भी लागू होता है।

(२) किसी सदस्य का सहकारी समिति में खरीदा हुआ हिस्सा भी कोई व्याक्त कुक नही कर सकता। सदस्य द्वारा समिति में जमा किये गये रुपये तथा समिति के लाभ का उसका भाग कोई भी व्यक्ति नीलाम नहीं कर सकता। परन्तु यदि समिति का रुपया चाहिये तो वह इस रुपये का ऋण चुकाने के लिये ले सकती है।

(३) समिति के लाभ पर आय-कर नहीं लगता और न सदस्यों को ही समिति द्वारा होने वाले लाभ पर कर देना पड़ता है।

(४) सहकारी समितियों को यदि एक स्थान से दूसरे स्थान पर रुपया भेजना हो तो पोस्ट आफिस चौथाई रेट पर वह रुपया भेज देता है।

(५) समिति के हिसाब-किताब की सालाना जाँच-पड़ताल सरकार द्वारा नियुक्त आडीटर निःशुल्क करते हैं।

(६) सहकारी समितियों को सरकार की रिजर्व बैंक सस्ते सूद पर रुपया उधार देती है।

सारांश

हमारे देश में अब भी सहकारी ऋण समितियों का बाहुल्य है। ऋण समितियों में प्रधानता प्रारम्भिक ग्रामीण ऋण समितियों की है।

इन समितियों के कोई भी दस व्यक्ति जो एक गाँव में रहते हो या एक जाति के हों या एक काम करते हों सदस्य हो सकते हैं। हर एक सदस्य को कम से कम एक शेयर अवश्य ही खरीदना पड़ता है। सदस्यों का उत्तरदायित्व अपरिमित होता है इसलिये यह आवश्यक है कि प्रत्येक सदस्य ईमानदार हो।

यह समितियाँ अपनी पूँजी सदस्यों के शेयर, प्रवेश फीस, जमा किये हुए रुपये तथा उधार लेकर इकट्ठी करती हैं।

इनका प्रबंध सब सदस्यों की एक जनरल कमिटी के हाथ में होता है। यह कमिटी सात-आठ सदस्यों की एक प्रबंधक कमिटी भी नियुक्ति कर लेती है जो समिति का दिन प्रति-दिन का काम चलाती है। प्रबंधकों को काम के लिये वेतन नहीं दिया जाता।

समिति केवल उत्पादक कार्यों के लिये ही कर्जा दे सकती है। इनका लाभ एक रक्षित कोष में जमा कर दिया जाता है और सदस्यों में बाँटा नहीं जाता।

प्रश्न

१. ऋण सहकारी समितियों का ग्रामीण जनता के लिये क्या महत्व है ? इनकी उपयोगिता बताइये ।
२. ग्रामीण सहकारी ऋण समितियों के लक्षण बताइये ।
३. अपरिमित उत्तरदायित्व से आप क्या मतलब समझते हैं ? इसका ग्रामीण सहकारिता आन्दोलन की प्रगति पर क्या प्रभाव पड़ा है ?
४. ग्रामीण सहकारी ऋण समितियाँ अपनी पूँजी किस प्रकार एकत्रित करती है ? क्या उनको पर्याप्त पूँजी मिल जाती है ?
५. ग्रामीण सहकारी समितियाँ केवल उत्पादक कार्यों के लिये ही पूँजी क्यों देती हैं ? इससे क्या लाभ हैं ?
६. ग्रामीण सहकारी समितियों को क्या क्या सुविधायें प्राप्त हैं ? इनसे सहकारिता आन्दोलन को लाभ हुआ है या नहीं ?

हाई स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. एक सहकारी ग्रामीण ऋण समिति के प्रबन्ध तथा कार्य प्रणाली का वर्णन कीजिये । यह समितियाँ किन-किन साधनों से पूँजी इकट्ठा करती हैं ? (१६४५)
२. एक प्रारम्भिक सहकारी ग्रामीण ऋण समिति के प्रबन्ध तथा कार्य प्रणाली का वर्णन कीजिये । भारतीय किसानों को यह कितनी महत्वपूर्ण हैं ? (१६४७)

अध्याय छत्तीस

गैर ऋण ग्रामीण सहकारी समितियाँ

हमारे देश में सन् १९४२ का सहकारिता कानून पास हो जाने पर ही गैर-ऋण सहकारी समितियाँ खुलना आरम्भ हुईं। तब से गैर-ऋण समितियों की संख्या बढ़ती जा रही है। अनेक कार्यों के उद्देश्य से यह समितियाँ खुल रही हैं और इनकी प्रगति क्रमशः बढ़ती ही जा रही है। उदाहरण के लिये सन् १९४०-४१ में देश में १९,६३९ गैर ऋण ग्रामीण सहकारी समितियाँ काम कर रही थीं जब कि कुछ शहरी सहकारी समितियों की संख्या केवल १७,४५९ थीं।

वर्तमान कानून के अनुसार गैर ऋण सहकारी समितियों की जिम्मेदारी परिमित या अपरिमित दोनों ही हो सकती है। प्रायः यह समितियाँ परिमित उत्तरदायित्व के सिद्धान्त को ही मान रही हैं। इसका कारण यह है कि सदस्य एक-दूसरे के ऋण या कार्यों की जिम्मेदारी लेने को तैयार नहीं हैं। देश की वर्तमान स्थिति में अपरिमित उत्तरदायित्व सिद्धान्त के ऊपर जोर देना ठीक भी नहीं। गैर-ऋण सहकारी ग्रामीण समितियों में निम्नलिखित अधिक महत्वपूर्ण हैं :—

सहकारी क्रय-विक्रय समितियाँ

(Co-operative Purchase and Sale Societies)

सहकारी क्रय-विक्रय समितियों का काम किसान के उत्पादक-कार्यों के लिये आवश्यक वस्तुओं का क्रय करना तथा उनके

पैदा किये हुए सामान को बेचना है। कभी यह दोनों काम एक ही समिति करती है तो कभी दो अलग-अलग समितियाँ। जब दो समितियाँ होती हैं तब सामान खरीदने वाली सहकारी-क्रय-समिति तथा सामान बेचने वाली सहकारी-विक्रय समिति कहलाती है। उनके विषय में नीचे बताया जाता है।

क्रय-समितियों की आवश्यकता—किसानों को उत्पादन-कार्य के लिये बीज, हल, खुरपी, चरसा, रस्सी, फाँवड़ा आदि की आवश्यकता पड़ती रहती है। घरेलू उद्योग-धन्धों के लिये भी वह नाना प्रकार के औजार तथा कच्चा माल खरीदते हैं। यह सब आवश्यकताओं की वस्तुयें खरीदने के दो ही उपाय हैं या तो वह बाजार जाकर सब सामान खरीदें या वे गाँव के बनिये से ही खरीद लें। बाजार में सामान खरीदने के लिये यह आवश्यक है कि उसके पास पर्याप्त रुपया हो। फिर वह जानते हों कि सामान कहाँ पर अच्छा मिलता है। इसके बाद सब दुकानों पर वह जाकर भाव का पता लगावे। फिर यह देखे कि दुकानदार ने नाप-तौल में या हिसाब में बेईमानी तो नहीं कर ली। तब कहीं जाकर वह ठीक तरह से सौदा खरीद सकते हैं। परन्तु वह सौदा उन्हें थोक दाम पर नहीं मिलता। गरीब किसानों के पास सामान खरीदने को काफी रुपया नहीं रहता। उन्हें तो सामान उधार चाहिये और शहर में उन्हें कोई रुपया उधार नहीं दे सकता। इसलिये उन्हें गाँवों से ही अपनी आवश्यकता की वस्तुयें खरीदनी पड़ती हैं। गाँव का दुकानदार जानता है कि इनको बाजार का भाव पता नहीं, दूसरे इनकी आवश्यकता भी अधिक है। इस कारण वह वस्तुओं के काफी दाम वसूल कर लेता है। सामान उधार देने के कारण वह सूद

अलग से वसूल करता है। परिणाम स्वरूप गाँव वालों को डेढ़े-दूने दामों पर चीजें खरीदनी पड़ती हैं। ऊपर से सामान भी अच्छे किस्म का नहीं होता। इसलिये गाँव वालों को सभी तरफ से हानि होती है।

ग्रामीण जनता की वस्तुओं की क्रय-सम्बन्धी कठिनाइयों को दूर करने के लिये सहकारी क्रय समितियाँ या क्रय-विक्रय सहकारी समितियाँ खोली जाती हैं।

क्रय-समितियों के काम का ढंग—क्रय समितियों के मन्त्री सदस्यों से उनकी आवश्यकता का ब्यौरा इकट्ठा कर लेते हैं। सदस्य स्वयं भी अपनी आवश्यकताओं की माँग एक प्रार्थना-पत्र पर लिख कर मन्त्री को दे सकते हैं। इस माँग के ब्यौरे को मन्त्री सिलसिलेवार छाँट लेते हैं और फिर समिति की प्रबंधक कमिटी के सामने रखते हैं। कमिटो की आज्ञा से वह स्वयं या किसी एक-दो सदस्यों के साथ बाजार से उचित से उचित दामों पर सब सामान खरीद लेते हैं। क्योंकि वह इकट्ठा बहुत सा सामान खरीदते हैं इसलिये उन्हें थोड़ा दाम पर सामान मिल जाता है। मन्त्री बाजार-भाव तथा दूकानदारों की चालों से भी परिचित होते हैं इसलिये उसको कोई धोका भाँ नहीं दे सकता। सामान लाकर वह सदस्यों को उनकी माँग के अनुसार दे देते हैं और रुपया ले लेते हैं।

समिति सदस्यों को वस्तु सस्ते दाम पर बेच देती है। वह स्वयं थोड़ा सा लाभ लेकर खरीद के मूल्य पर ही सामान बेच देती है। बाद में यह लाभ भी सदस्यों को ही मिल जाता है।

समिति के सदस्य—समिति के कम से कम दस व्यक्ति होते हैं और प्रत्येक को कम से कम एक हिस्सा खरीदना पड़ता है। इस हिस्से का मूल्य समिति द्वारा ही निर्धारित होना है। परन्तु यह कहा जा सकता है कि उसका मूल्य कम ही रखा जाता है जिससे गरीब ग्रामीण जनता उसे खरीद सके। सदस्यों की जिम्मेदारी प्रायः खरीदे हुए शेयर के रूपों तक ही सीमित होती है यद्यपि अपरिमित उत्तरदायित्व की भी सामंतियाँ पाई जाती हैं।

समिति का प्रबन्ध—सब सदस्यों की जनरल कमिटी एक प्रबंधक कमिटी नियुक्त कर लेती है। प्रबंधक कमिटी के चुनाव में या अन्य मामलों में बहुमत से काम किया जाता है। प्रत्येक सदस्य एक ही वोट देता है चाहे उसके हिस्से कितने ही हों। लाभ का कुछ भाग रक्षित-कोष में जमाकर बाकी सदस्यों में बाँट दिया जाता है। यदि समिति बड़ी हुई तो एक वैतनिक मन्त्री रख लिया जाता है।

भारतवर्ष में क्रय-समितियाँ बहुत कम पाई जाती हैं। इनकी कुल संख्या ३०० के लगभग है। बम्बई में यह समितियाँ खाद, बीज और खेती के यन्त्रों की खरीद का काम करती हैं। बंगाल और पंजाब में भी यह समितियाँ अच्छा काम कर रही हैं। यह समितियाँ केवल खेती या उद्योग-धन्धों के लिये आवश्यक सामान ही खरीदती हैं; खाने पहनने के सामान को यह नहीं खरीदतीं।

विक्रय समितियाँ

विक्रय-समिति की आवश्यकता—विक्रय समितियों का महत्व काफी अधिक है क्योंकि यह किसानों को उनकी फसल

का उचित मूल्य दिलाती हैं। फसल की बिक्री वाले अध्याय में आपको बताया जा चुका है कि हमारे किसान यदि गाँव में फसल या साझान बेचते हैं तो महाजन और बनिये अनाज को बहुत कम दामों पर खरीद लेते हैं। ऋण के चंगुल में फंसे हुए किसान अपने अन्नदाता महाजन से कुछ कह भी नहीं सकते। यदि वह बाजार में जाकर मण्डी में सामान बेचते हैं तो आड़तिया उनको तरह-तरह से तंग करता है और उनसे काफी रकम लूट लेता है। अनुमान लगाया जाता है कि कुल दामों का १० से १२ प्रतिशत भाग आड़तिया कमीशन, तुलाई, धर्मखाते, गौशाला प्याऊ वाले आदि नाम से वसूल कर लेता है। अनुमान लगा कर देखा गया है कि जिस वस्तु का बाजार में एक रुपया दाम है उसको बेचने पर किसानों को केवल १० आने मिलते हैं। उसमें से भी १०-१२ प्रांतशत आड़तिया ले लेता है। यानी किसान को रुपये के आठ-ना आने ही मिलने पाते हैं। इसीसे आप लूट का अनुमान लगा सकते हैं।

समिति की कार्य प्रणाली—विक्रय समितियाँ सदस्यों का सब माल ताल कर एक स्थान पर एकत्रित कर लेती हैं। धाम चलाने के लिये वह सदस्यों को उनके माल का आधा दाम उसी समय दे देती हैं। समिति का एक मन्त्री या मैनेजर हाता है जो बाजार भाव का अध्ययन करता रहता है। वह यह भी देखता रहता है कि विभिन्न बाजारों में क्या-क्या भाव है। जैसे ही उसने देखा कि वस्तुओं के मूल्य काफी बढ़ गये हैं वह बाजार में जाकर समान बेच आता है। क्योंकि वह आड़तियों के दाव-पेचों से पराचित होता है इसलिये वह ऐसी

आढ़तिया के पास जाता है जो कम कमीशन ले और बेईमानी भी न करे। कभी-कभी तो वह सीधे दुकानदारों के हाथ समान बेच देता है और आढ़त देने से बच जाता है। इस तरह वह उचित दामों पर तथा कम से कम व्यय पर किसानों का समान बाजार में बेच देता है।

इन समितियों का उत्तरदायित्व सीमित होता है तथा प्रबन्ध ठीक उसी प्रकार चलता है जैसे क्रय समितियों का। वर्ष के अन्त में यह आय-व्यय का हिसाब कर लाभ का लगभग २० प्रतिशत भाग रक्षित-कोष में जमा कर बाकी सदस्यों में बाँट देती हैं।

भारतवर्ष में क्रय-विक्रय समितियाँ—हमारे देश में शुद्ध विक्रय सहकारी समितियों की संख्या लगभग १,२०० होगी। परन्तु आजकल समितियाँ क्रय-विक्रय दोनों काम करती हैं और इन्हीं की संख्या में उन्नति होती जा रही है। सन् १९३९-४० में क्रय-विक्रय समितियों की संख्या लगभग ४,००० थी तथा ४ करोड़ ४६ लाख व्यक्ति उनके सदस्य थे। इन्होंने ११ करोड़ से भी अधिक रुपये के सामान का क्रय-विक्रय किया था। इनमें से युक्त प्रान्त में क्रय-विक्रय सहकारी समितियों की संख्या सबसे अधिक है। सन् १९३९-४० में इनकी संख्या १,५०० थी। दूसरा नम्बर विहार का था जहाँ पर इनकी संख्या १,४२१ थी। बंगाल, मद्रास और बम्बई अन्य महत्वपूर्ण प्रान्त हैं। संयुक्त प्रान्त तथा बिहार में यह समितियाँ अधिकतर ईख की बिक्री का काम करती हैं। मद्रास और बम्बई में रूई का तथा बंगाल में जूट की बिक्री का काम इनके हाथ में है।

संयुक्त प्रान्त में क्रय-विक्रय-सहकारी-समितियों की प्रगति सन् १९३४ के बाद बहुत बढ़ी। धीरे २ ईख की बिक्री का काम इन्हीं के हाथ में आ गया और सन् १९४०-४१ में ८० प्रतिशत ईख इन्हीं समितियों के हाथ से ही बिकी। प्रत्येक समिति का एक क्षेत्र होता है जो लगभग ५ या ७ मील तक होता है। इसी क्षेत्र में एक समिति काम करती है। इनके सदस्यों की जिम्मेदारी परिमित होती है।

सदस्यों को पचास रुपया तक उधार दे दिया जाता है और ईख बेचने पर वह काट लिया जाता है। खरीद की जगह मिलों अपने खरीददारों को भेज देती हैं। परन्तु ईख तौलने वाला व्यक्ति समिति का एक सदस्य ही होता है। समिति को बिक्री के काम के लिये मिलों से कमीशन मिलता है जो कि संयुक्त प्रान्त की सरकार ने पहले पाँच लाख मन ईख पर तीन पाई मन के हिसाब से, दूसरे पाँच लाख मन पर दो पाई मन तथा बाकी पर १ पाई मन के हिसाब से बाँध दिया है।

बिहार में ईख की उत्पत्ति का २१ प्रतिशत भाग और बम्बई में कपास की उत्पत्ति का १५ प्रतिशत भाग इन समितियों द्वारा ही बेचा जाता है। यह काम सहकारी समितियाँ उचित ढंग पर कर रही हैं।

चक्रबन्दी समितियाँ

देश के काश्तकारों की बिगड़ी हुई दशा का एक महत्वपूर्ण कारण उनके खेतों का छोटा तथा छिटका होना है। इस बुराई के कारण किसानों को कितनी हानि होती है इससे आप पूरी तरह परिचित हैं। इस बुराई को दूर करने के लिये प्रान्तीय

सरकारों ने अनेक उपाय निकाले परन्तु वह सब विफल रहे। सहकारिता ही एक ऐसा तरीका है जो इस बुराई को दूर कर सकता है और इस दिशा में सहकारी समितियों ने सराहनीय कार्य भी किया है।

भारतवर्ष में चकबन्दी आन्दोलन—हमारे देश में चकबन्दी-सहकारी-समितियों ने सबसे पहले सन् १९२० में पंजाब प्रान्त में काम करना आरम्भ किया। इन समितियों के मद्दस्यों ने पहले आपस में अपनी मर्जी से भूमि बदल कर खेतों का छिटकापन कम किया। सरकार सहकारी विभाग के कर्मचारी गाँवों में भेजती थी जो किसानों में चकबन्दी के लाभों को बताते थे। आरम्भ में तो इस आन्दोलन ने अधिक प्रगति नहीं की और सन् १९३० तक केवल २,६३,००० एकड़ भूमि की ही चकबन्दी हो सकी।

परन्तु धीरे २ आन्दोलन ने जोर पकड़ा और सन् १९४१ तक पंजाब प्रान्त की लगभग चार प्रतिशत भूमि की चकबन्दी जा चुकी थी। संयुक्त प्रान्त में इन समितियों ने अच्छा काम किया है और लगभग ७७,६७२ एकड़ भूमि की चकबन्दी हो चुकी है। मध्य प्रान्त में ५ लाख एकड़ भूमि की चकबन्दी हो चुकी है और चकबन्दी का व्यय केवल चार आने की एकड़ पड़ा है।

देश में चकबन्दी समितियों की प्रगति—चकबन्दी-सहकारी-समितियों ने देश में अधिक प्रगति नहीं की है। अनुमान है कि पंजाब प्रान्त में लगभग २२ हजार ऐसी समितियाँ हैं और संयुक्त-प्रान्त में उनकी संख्या केवल ९४ ही है। इनके

अधिक सफल न होने के कई कारण हैं। एक तो किसानों को अपने खेतों से बड़ा आकर्षण होता है। जो खेत उनके पास पीढ़ियों से चला आया है उसे वह छोड़ना नहीं चाहते। दूसरे सब भूमि एकसी उपजाऊ नहीं होती। इस कारण अपनी भूमि बदलने में वह डरते हैं। तीसरे, मौसमी काश्तकार को डर रहता है कि यदि वह अपना खेत छोड़ देगा तो उसके सारे हक मारे जावेंगे। खेत के पटवारी और जमींदार भी इसके विरोध में रहते हैं क्योंकि चकबन्दी से किसानों की शक्ति बढ़ जावेगी और वह लोग अपनी मनमानी नहीं करने पावेंगे। यह सब होते हुए भी यह मानना ही पड़ेगा कि इन समितियों की बड़ी आवश्यकता है। यदि किसान स्वयं तैयार न हो तो सरकार को कानूनन भूमि की चकबन्दी करा देनी चाहिये।

रहन-सहन सुधार-सहकारी समितियाँ

Better-Living Cooperative Societies

इन समितियों का प्रधान उद्देश्य सदस्यों के रहन-सहन के दर्जे को ऊँचा करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह सदस्यों के सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक व्यय में आवश्यक परिवर्तन कराती हैं। इस कारण यह सुधार की बातों का प्रचार करती हैं जैसे शादी पर खर्च कम करना, दावतों पर कम व्यय करना, बुरी आदतों को दूर करना, नशीले पदार्थों का सेवन रोकना, धार्मिक कार्यों को कर्जे से न करना, गाँव की सफाई कराना, खेती की उन्नति के मार्ग बताना, गाँव की सड़कों तथा गलियों की मरम्मत कराना, कुओं की मरम्मत कराना, गाँव के तालाबों को गहरा कराना, घरों को साफ-सुथरा तथा हवादार

बनाने के उपाय बताना, धन को उचित ढङ्ग पर व्यय करने के उपाय बताना आदि काम करती हैं ।

रहन-सहन-सुधार समितियों की प्रगति—इस तरह की समितियों की संख्या हमारे देश में अधिक नहीं । सबसे पहले यह पंजाब प्रान्त में स्थापित हुई और वहाँ पर अच्छा काम किया । वहाँ पर इनकी संख्या ३०० है । संयुक्त प्रान्त में भी यह कुछ पाई जाती हैं । पंजाब के सहकारी-विभाग का कहना है कि जिस २ गाँव में ऐसी समितियाँ खुली हैं वहाँ पर इन्होंने अच्छा काम किया है । इन समितियों ने सदस्यों के हजारों रुपये बचाये हैं क्योंकि यह अपव्यय को रोकती हैं । कहीं २ पर इन्होंने लड़की की शादियों पर ५०० रु० से खर्चा घटा कर १००-२०० रु० कर दिया है । मकानों में हवा जाने का समुचित प्रबंध किया है और उनमें खिड़की तथा रोशनदान निकलवाये हैं । कहीं २ पर इन्होंने गोबर की उपली जलाने की मनाही कर उसकी खाद बनवाने का प्रबन्ध भी किया है । इन्होंने गाँवों की सफाई पर भी उचित ध्यान दिया है । कहीं २ पर यह समितियाँ अस्पताल भी चलाती हैं और होशियार दाइयों को नौकर रखती हैं ।

समितियों का प्रबन्ध—इन समितियों का संगठन बड़ा सरल है । गाँव के जो भी रहने वाले समिति के सिद्धान्तों को मानने को तत्पर हों वह सदस्य बन जाते हैं । समितियों के हिस्से नहीं होते और न चन्दा ही । प्रवेश फीस बहुत मामूली सी होती है । रहन-सहन-सुधार के सब काम सदस्यों की सभा में बहुमत से पास हो जाते हैं । श्रमियों का उल्लंघन करने वालों

को दण्ड देना पड़ता है जो समिति के कोष में जमा होता रहता है। ऐसी समितियों की हमारे देश में अत्यन्त आवश्यकता है।

उपभोक्ता-सहकारी-स्टोर्स

इन स्टोर्स का उद्देश्य उपभोग की आवश्यक वस्तुओं को सदस्यों को देना है। स्टोर्स सब सदस्यों का सामान एक साथ लाते हैं इसलिये उन्हें थोक भाव पर सामान मिल जाता है। एक साथ सामान लाने से आने-जाने का व्यय भी कम होता है। वह सामान लाकर सदस्यों को दे देते हैं। इस तरह सदस्यों को सामान काफी सस्ता मिल जाता है। बाद में स्टोर्स का लाभ भी उन्हीं में बँट जाता है। फिर सामान भी अच्छा होता है। इस तरह से सदस्यों को सब तरफ से फायदा है।

स्टोर्स का प्रबन्ध—सहकारी स्टोर्स के सदस्यों की जिम्मेदारी सीमित होती है। स्टोर्स के हिस्से होते हैं और प्रत्येक सदस्य को कम से कम एक हिस्सा खरीदना पड़ता है। यह आवश्यक है कि सदस्य सामान स्टोर्स से ही खरीदें। स्टोर्स केवल सदस्यों को ही सामान बेचते हैं। वह सामान बाजार भाव पर बेचते हैं परन्तु सामान अच्छी किस्म का देते हैं। पच्चीस प्रतिशत लाभ रक्षित कोष में जमा कर बाकी सदस्यों में बाँट देते हैं। सब सदस्यों की एक जनरल मीटिंग एक प्रबन्धक कमिटी नियुक्त कर लेती है जो स्टोर्स के दिन-प्रति-दिन के काम की देखभाल करती है।

स्टोर्स का जन्म—उपभोक्ता स्टोर्स सबसे पहले इंग्लैण्ड में चले। इनको चलाने का श्रेय राडकेल नामक स्थान के

अट्टाईस जुलाहों को है। राइकेल स्टोर्स की स्थापना सन् १८४४ में हुई और इसने शीघ्र ही काफी उन्नति करली। इसकी उन्नति देखकर इंग्लैण्ड में भी उपभोक्ता स्टोर्स खुल गये। यह देखकर वहाँ के फुटकर दुकानदारों ने थोक दुकानदारों से यह कहा कि वह इन स्टोर्स को थोक दामों पर सामान न दे। जब सहकारी स्टोर्स ने देखा कि थोक व्यापारी उनको सामान थोक दाम पर नहीं दे रहे हैं तो उन्होंने मिलकर थोक-सहकारी-स्टोर्स खोल लिये। सय उपभोक्ता स्टोर्स इसके सदस्य थे और खरीद के अनुपात में थोक-स्टोर्स का लाभ इनमें बाँट दिया जाता था। इस तरह इन्होंने थोक व्यापारियों का भी लाभ छीन लिया। धीरे-धीरे इन्होंने कारखाने खोलकर सामान बनाना भी आरम्भ कर दिया। इसीसे आप समझ सकते हैं कि इन्होंने कितनी उन्नति की होगी।

भारतवर्ष में स्टोर्स की प्रगति—भारतवर्ष में सहकारी उपभोक्ता स्टोर्स अधिक उन्नति नहीं कर पाये हैं। पिछले महासमर के समय जब सरकार ने अनाज पर तथा उपभोग के अन्य पदार्थों पर नियन्त्रण लगा दिया था उस समय कुछ स्टोर्स अवश्य खुले थे। पर युद्ध समाप्त होते ही, जैसे ही देश में मन्दी आई और वस्तुओं पर से नियन्त्रण हटा, यह स्टोर्स भी कम होने लगे और बहुत से बंद हो गये। सन् १९३९ के महासमर में भी यही हुआ। उस समय भी स्टोर्स काफी खुले। पर फिर भी यह उन्नति नहीं कर सके। युद्ध के समाप्त होने पर जब प्रान्तीय सरकार ने सन् १९४७ में सरकारी कर्मचारी तथा १०० रु० माहवार से कम वेतन पाने वाले व्यक्तियों को कन्ट्रोल भाव पर राशन देना शुरू किया उस समय संयुक्त प्रान्त की सरकार

बै यह नियम निकाला कि राशन केवल उन व्यक्तियों को मिलेगा जो सहकारी उपभोक्ता-स्टोर्स के सदस्य होंगे। परिणाम-स्वरूप उस समय मुहल्ले-मुहल्ले में उपभोक्ता स्टोर्स खुल गये। पर यह केवल कन्ट्रोल का सामान—अन्न, चावल, लकड़ी आदि ही रखते हैं, अन्य आवश्यक वस्तुएँ नहीं। सरकार द्वारा इतना प्रोत्साहन पाने पर भी स्टोर्स अधिक न खुले और बाद में सरकार को यह नियम बदल देना पड़ा।

स्टोर्स की असफलता के कारण—भारतवर्ष में इन स्टोर्स के सफल न होने के कई कारण हैं। धनवान व्यक्ति इस तरफ आकर्षित नहीं होते क्योंकि इनसे कोई विशेष लाभ उनको नहीं होता।

शिक्षित तथा मध्य वर्ग के लोग आकर्षित होते परन्तु शहर में उनको इतनी दूकानें मिल जाती हैं और उन पर इतनी तरह की वस्तुयें मिल जाती हैं कि उन्हें इन स्टोर्स की तरफ कोई आकर्षण नहीं रहता। यह स्टोर्स प्रायः मजदूर तथा किसान जनता में ही अधिक सफल हो सकते हैं। इंग्लैण्ड में भी यह मजदूरों से ही आरम्भ हुए। परन्तु भारतवर्ष के किसान तथा मजदूर दोनों ही कम पढ़े लिखे तथा गरीब हैं। वह अपना काम बनिये से उधारसामान लेकर चलाते हैं। यह स्टोर्स सामान उधार नहीं देते। दूसरे मजदूर तथा किसानों के पास इतना रुपया नहीं कि वह स्टोर्स का एक भी हिस्सा खरीद सकें। उचित प्रबन्ध की कमी के कारण भी स्टोर्स सफल नहीं हो सके हैं और कई को काम बन्द करना पड़ा है।

भारतवर्ष के सफल स्टोर्स में मद्रास प्रान्त के ट्रिपलीकेन् स्टोर ने काफी सफलता प्राप्त की है। यह स्टोर ९ अप्रैल सन्

१९०४ को खोला गया था। आरम्भ में यह बड़े छोटे पैमाने पर चला था और इसमें केवल दो कर्मचारी ही काम करते थे। परन्तु धीरे-२ इसने उन्नति करना शुरू किया और आजकल इसकी बीस शाखायें काम कर रही हैं। इसकी लगभग एक लाख की पूँजी है। मैसूर में भी बंगलोर स्टोर्स 'अच्छा' काम कर रहा है।

अन्य गैर ऋण-सहकारी-समितियाँ

ऊपर बताई गई समितियों के अतिरिक्त गाँवों में अन्य सहकारी समितियाँ भी हैं। इनमें सिंचाई समितियाँ, कृषि-सुधार समितियाँ, बीज या खाद समितियाँ, गाय-बैल समितियाँ, आदि प्रसिद्ध हैं। कहीं-२ सहकारी ढंग पर गौशालायें तथा ग्रामीण उद्योग धन्धे भी चलते हैं। इन सभी समितियों का उद्देश्य अपने सदस्यों को, जिस कार्य के लिये यह खोली गई हैं, उसमें लाम पहुँचाना है। इनके सदस्यों का उत्तरदायित्व सीमित होता है। सिंचाई-सहकारी-समितियाँ बंगाल में अधिक पाई जाती हैं और इनका उद्देश्य सिंचाई के साधनों में उन्नति करना है। यह सदस्यों की सहायता तथा रूपया उधार लेकर कुएँ तथा टैंक खुदवाती हैं जिससे सिंचाई का उचित प्रबंध हो सके। आजकल बंगाल में ऐसी समितियों की संख्या १००० से ऊपर है। कृषि-सुधार-समितियों ने पंजाब में सराहनीय काम किया है। बीज या खाद समितियाँ तथा गाय-बैल समितियाँ भी वहीं पाई जाती हैं। संयुक्त प्रान्त में दूध सहकारी समितियाँ तथा घी समितियाँ अच्छा काम कर रही हैं। संयुक्त प्रान्त में ७० सहकारी-दूध समितियाँ हैं। यह बारह साल से काम कर रही हैं और काफी दूध प्रति वर्ष बेचती हैं।

सहकारिता आन्दोलन के सफल न होने के कारण

बड़े दुर्भाग्य की बात है कि सहकारिता आन्दोलन, जिससे इतने लाभ हैं तथा जिसने संसार में इतनी उन्नति की है, हमारे देश में अधिक सफल नहीं हो सका है। इसके निम्नलिखित कारण हैं :—

(१) हमारे देश के किसान बहुत ही गरीब हैं। इस कारण उनके पास इतना रुपया नहीं कि वह इन समितियों के सदस्य बनने के लिये समिति के हिस्से खरीद लें तथा प्रवेश फीस दे सकें। रुपये की कमी के कारण समितियाँ ठीक काम नहीं करने पाती।

(२) किसान पढ़े-लिखे नहीं हैं। इस कारण वह अब भी इसके लाभ नहीं समझ पाये हैं। यह आन्दोलन सरकार के सहयोग से चला तथा उन्होंने चलाया। लोगों में स्वयं इसके लिये रुचि न बढ़ी। इस कारण यह आन्दोलन प्रगति नहीं कर सका है। सरकार के ऊपर यह आन्दोलन अब भी आश्रित है। भारत सरकार ही इस आन्दोलन की कर्णधार है।

(३) पढ़े-लिखे न होने के कारण किसान, समितियों का प्रबन्ध ठीक से नहीं कर सकते। प्रामीण-सहकारी-ऋण-समितियों को जिम्मेदारी अपरिमित होती है। इस कारण यदि उनका प्रबन्ध ठीक न हो तो सभी सदस्यों को भारी नुकसान उठाना पड़ता है।

(४) गाँव में आपस की रिश्तेदारी के कारण समितियों का रुपया प्रायः मारा जाता है और प्रबन्ध कमेटी के सदस्य रुपया न देने वालों के खिलाफ कोई कारवाई नहीं करते।

उनको यह डर रहता है कि कहीं हमारे रिश्तेदार नाराज न हो जाँय। समिति की भलाई का ध्यान उन्हें नहीं रहता।

(५) आजकल एक समिति केवल एक ही काम करती है। यदि किसान को रुपया उधार लेना है तो वह एक समिति का सदस्य बने, यदि खेत की चकबन्दी करनी है तो दूसरी का, यदि सामान खरीदना है तो तीसरी का और यदि फसल बेचनी हो तो चौथी का। इस तरह से उसको अपनी भलाई के लिये कई समितियों का सदस्य बनना पड़ता है। सदस्य बनने के लिये उसे हर समिति को प्रवेश फीस देनी पड़ती है तथा उसके हिस्से खरीदने पड़ते हैं। इसमें उसका काफी रुपया व्यय हो जाता है। उधर एक समिति केवल एक काम करती है इस कारण उसे अधिक लाभ भी नहीं होने पाता। अतएव यह आवश्यक है कि एक समिति के एक कार्य करने के स्थान पर बहु-कार्य वाली समितियाँ खोली जाँय। अर्थात् एक ही समिति किसानों की फसल को बेचे तो वही उनको बीज तथा वही उनके खेतों की चकबन्दी करके सिंचाई का प्रबन्ध कर दे। ऐसा होने पर ही किसानों को भलाई हो सकेगी और सहकारिता आन्दोलन अधिक उन्नति कर सकेगा।

सारांश

ऋण-समितियों के अतिरिक्त हमारे देश में अनेक गैर-ऋण-सहकारी समितियाँ भी हैं। इनमें महत्वपूर्ण क्रय-विक्रय समितियाँ, चकबन्दी समितियाँ, रहन-सहन सुधार समितियाँ, उपभोक्ता-सहकारी समितियाँ, सिंचाई समितियाँ, बीज समितियाँ आदि हैं।

क्रय समितियों का कार्य केवल उत्पादक-कार्य के लिये आवश्यक सामानों को लाकर सदस्यों को सस्ते दाम पर देना है। यह समितियाँ

थोक दाम पर तथा अच्छा सामान सदस्यों को सस्ते दाम पर देकर उनको बड़ा लाभ पहुँचाती हैं। हमारे देश में इन्होंने अच्छा काम किया है।

विक्रय समितियों का काम सदस्यों की फसल या उद्योग धन्धों द्वारा बने हुए सामानों को उचित मूल्य पर बेचना है। हमारे देश में गाँव के बनिये तथा शहर के आड़तिये किसानों को काफी लूटते हैं। यह समितियाँ उनको इस लूट से बचा लेती हैं। हमारे प्रान्त में यह ईख की बिक्री में काफी महत्वपूर्ण स्थान रखती हैं और लगभग ८० प्रतिशत ईख इन्हीं के हाथों बिकती है। बिहार, मद्रास, बंगाल, बम्बई में भी यह प्रसिद्ध हैं।

चक्रवन्दी समितियों का काम खेतों के छोटे तथा छिटकेपन को दूर करना है। यह पंजाब प्रान्त में शुरू हुई और वही अब भी बहुतायत से पाई जाती हैं। हमारे प्रान्त में भी यह विजनौर तथा सहारनपुर के जिलों में अच्छा काम कर रही हैं।

रहन-सहन सुधार समितियों का काम सदस्यों की आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थिति का सुधार करना है। इसलिये वह अनेक काम करती हैं जैसे शादी पर कम खर्च करना, दावत पर कम खर्च करना, नशीली वस्तुओं का सेवन रोकना, घर में रोशनी तथा हवा का प्रबन्ध करना, गाँव की सफाई करना आदि।

उपभोक्ता-सहकारी-स्टोर्स का काम सदस्यों को उपभोग की वस्तुओं को सस्ते दामों पर देना है। यह सामान तो बाजार भाव पर ही देते हैं पर इनका लाभ सदस्यों में हर वर्ष बँट जाता है। यह सबसे पहले इङ्ग्लैण्ड में चले। भारतवर्ष में इनका प्रचार अधिक नहीं हो सका है।

इनके अतिरिक्त सिंचाई समिति, बीज-खाद समिति, गाय-बैल समिति, कृषि-सुधार समिति, आदि भी प्रसिद्ध हैं।

दुर्भाग्य से हमारे देश में सहकारी आन्दोलन अधिक सफल नहीं हो सका है। इसके कारण किसानों की गरीबी, उनका बेपढ़ होना, आपस की रिश्तेदारी, उचित प्रबन्ध की कमी आदि हैं।

प्रश्न

१. गैर-ऋण-सहकारी समितियों तथा ऋण समितियों में क्या भेद है ? हमारे देश की भिन्न २ गैर-ऋण सहकारी समितियों के नाम बताइये।
२. क्रय-समितियों का क्या उद्देश्य है ? हमारे देश में यह किन प्रान्तों में अधिक पाई जाती हैं ? इनसे किसानों को क्या लाभ हुए हैं ?
३. विक्रय समितियों को किस प्रकार खोला जाता है ? इनके क्या प्रधान लक्षण हैं ?
४. हमारे देश में क्रय-विक्रय समितियों की क्या आवश्यकता है ? क्या इनसे कुछ लाभ हुआ है ?
५. 'चक्रवन्दी सहकारी समितियों की देश को बड़ा आवश्यकता है'। इस कथन की व्याख्या कीजिये। हमारे देश में इन समितियों ने कितनी उन्नति की है ?
६. यदि आप चक्रवन्दी सहकारी समिति खोलना चाहते हैं तो आप क्या करेंगे ? यह समिति किस तरह काम करती है ? इनकी मुख्य २ बातें स्पष्टतया लिखिये।
७. उपभोक्ता-सहकारी स्टोर्स खोलने की क्या आवश्यकता है ? इनका क्या उद्देश्य है ?

८. सहकारी-उपभोक्ता-स्टोर्सों के प्रबन्ध का वर्णन कीजिये । यह सबसे पहले कहाँ प्रसिद्ध हुए ?
९. हमारे देश में सहकारी उपभोक्ता-स्टोर्स ने कितनी उन्नति की है ? यह क्यों सफल नहीं हो सके हैं ?
१०. कुछ गैर-ऋण-सहकारी-समितियों का वर्णन कीजिये ।
११. हमारे देश के सहकारी आन्दोलन में क्या २ खराबियाँ हैं ? इसने किस कारण उन्नति नहीं की है ? आप इसके सुधार के लिये क्या करना चाहेंगे ?
१२. एक-कार्य या अनेक-कार्य वाली सहकारी समितियों में से आप किसके पक्ष में हैं और क्यों ?

हाई-स्कूल बोर्ड के प्रश्न

१. औद्योगिक केन्द्रों में उपभोक्ता-सहकारी स्टोर्स की आवश्यकता बताइये । आपके प्रान्त में इस तरह की सहकारिता क्यों सफल नहीं हो सकी है ? (१९४३)
२. (अ) सहकारी क्रय-विक्रय समिति या (ब) सहकारी-स्टोर्स के सिद्धान्तों को बताइये । (१९४४)
३. आपके प्रान्त में कौन २ सी गैर-ऋण-सहकारी-ग्रामीण समितियाँ काम कर रही हैं ? गाँव वालों की दशा सुधारने में वह किस तरह मदद पहुंचाती हैं ? (१९४६)
४. किसी रहन-सहन सुधार मिति के प्रबन्ध तथा कार्य प्रणाली का वर्णन कीजिये । (१९४६)
५. एक उपभोक्ता सहकारी स्टोर्स के प्रबन्ध तथा कार्य प्रणाली का वर्णन कीजिये । (१९४८)
६. सहकारिता ने भारतवर्ष में अधिक उन्नति क्यों नहीं की है ? (१९४८)

अध्याय सैंतीस

बहु-धंधी सहकारी समितियाँ

पिछले अध्याय मे आपको बताया जा चुका है कि हमारे देश में एक सहकारी समिति केवल एक ही काम करती है। यदि कोई खेतों की चकबन्दी करती है तो दूसरी सामान क्रय करती है और तीसरी सामान बेचती है। सिंचाई के साधनों को बढ़ाने का चौथा समिति काम करती है और अच्छे बीज पाँचवीं समिति देती है। इस तरह से किसान को अपनी दशा सुधारने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि वह दस-बीस सहकारी समितियों का सदस्य बने। किसानों की दशा इतनी खराब हो गई है कि केवल एक दिशा में सुधार होने से कोई लाभ नहीं। सबसे पहले आवश्यकता इस बात की है कि उनके खेतों की पैदावार बढ़ाई जाय। इसके लिये आवश्यक उनको अच्छे बीज मिलें, उनके खेतों में खाद पड़े, उनके खेतों का छिटकापन दूर हो तथा सिंचाई के साधन बढ़ें। साथ में यह भी आवश्यक है कि खेती के औजार अच्छे हों तथा उनके बैल बीमार तथा कमजोर न हों। किसानों का स्वास्थ्य भी अच्छा होना चाहिये जिससे वह मेहनत से काम कर सकें। इसके लिये गाँव की सफाई, घर की सफाई, अस्पतालों की स्थापना तथा अच्छे घरों का निर्माण आवश्यक है। परन्तु यह सब तभी सम्भव है जब उनकी आमदनी बढ़े। आमदनी बढ़ाने के लिये यह आवश्यक है कि उनकी फसल बेचने का अच्छा प्रबन्ध हो तथा उनका ऋण का बोझ

हलका हो। परन्तु ऋण से छुटकारा बिना रुपये दिये नहीं हो सकता। इस तरह आप देखते हैं कि किसानों के प्रत्येक कार्य एक-दूसरे से सम्बन्धित हैं। कोई भी एक बुराई दूर करने के लिये यह आवश्यक हो जाता है कि उनकी सभी बुराइयों को एक-एक करके दूर किया जाय। इसलिये आज कल विद्वानों का यह मत हो रहा है कि सहकारी समितियाँ एक ही काम न करके कई काम एक साथ करें। इसी कारण बहु-धन्धी सहकारी समितियाँ खोलने का प्रयत्न किया जा रहा है।

बहु-धन्धी समितियों से लाभ—बहु धन्धी सहकारी समितियों से कई लाभ हैं। वह निम्नलिखित हैं :—

(१) किसानों की दशा सुधारने के लिये यह आवश्यक है कि उनकी सभी बुराइयों को एक-साथ दूर किया जाय। एक-एक बुराई दूर करने से कुछ भी हाथ न लगेगा और यह काम बहु-धन्धी समितियाँ ही कर सकती हैं।

(२) किसानों के पास इतना धन नहीं कि वह कई समितियों के सदस्य एक साथ बन जायें। वह प्रत्येक का हिस्सा नहीं खरीद सकते और न प्रवेश-फीस ही दे सकते हैं। यदि कोई बहु-धन्धी समिति हुई तो वह उसके सदस्य अवश्य बन जावेंगे।

(३) किसानों की समस्यायें एक दूसरे से काफी सम्बन्धित हैं। इसलिये यदि कई समितियाँ काम करती हैं तो उनमें गहरे सहयोग की आवश्यकता है। यह हमेशा सभव नहीं होता। इसलिये बहु-धन्धी सहकारी समितियाँ अच्छा काम कर दिखावेंगी।

(४) गाँवों में पढ़े-लिखे मनुष्यों की कमी के कारण सभी समितियों को अच्छे कार्यकर्ता नहीं मिलते। यह कठिनाई दूर हो जावेगा।

(५) गाँव के लोग परम्परा से एक संस्था या गुरु को मानते आये हैं। इसलिये वह यह भी पसन्द करते हैं कि उनकी आर्थिक तथा सामाजिक उन्नति के लिये एक ही संस्था हो जो उनके पूरे जीवन में ओत-प्रोत हो तथा जिसमें देश के सच्चे सेवक काम करें।

संयुक्त-प्रान्त की बहु धन्धी सहकारी-समिति योजना

संयुक्त प्रान्त की कान्ग्रेस सरकार ने सन् १९४५ में प्रान्त का कार्य भार संभालते समय यह घोषणा की थी कि उसको उस समय तक चैन नहीं आवेगा जब तक किसानों की सच्ची तथा ठोस उन्नति न हो। इस काम को पूरा करने के लिये उन्होंने एक नई योजना बनाई है जो अप्रैल, १९४७ से कार्य-रूप में परिणित की जा रही है।

योजना का उद्देश्य—यह योजना ग्रामीण जनता की आर्थिक भलाई सामने रख कर बनाई गई है। यह सारे प्रान्त में अन्न, दूध, घी, कपड़ा आदि का उत्पादन बढ़ाने के लिये काम करेगी जिससे जनता के कष्ट कम हो जाँय।

उद्देश्य की पूर्ति का तरीका—इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये प्रान्तीय सरकार ने अपने विभिन्न विभाग जैसे कृषि, सहकारिता, पशु, उद्योग तथा ग्राम-सुधार को मिलाकर एक सूत्र में बाँध दिया है जिससे इस योजना में सद्का सहयोग प्राप्त हो सके। अभी

तक यह सब विभाग अलग-अलग और अलग-अलग ही जनता के संपर्क में आते थे। एक ही काम को कभी दो विभाग दुहराया करते थे। एक गाँव में विभिन्न विभाग के कर्मचारी पहुँचते थे और अलग-अलग काम करते थे। उनमें सहयोग न था। इससे धन का भी अपव्यय होता था और किसानों को भी अधिक लाभ नहीं होता था।

अब सरकार ने सब विभागों को मिलाकर उन्नति के कामों का भार सहकारी विभाग पर डाल दिया है। सारा सगठन सहकारी बीज-गोदाम का केन्द्र मान कर किया गया है। जिले के हर सहकारी-बीज-गोदाम के आस-पास के १०-१५ गाँवों को मिलाकर एक मंडल बना दिया गया है। प्रत्येक गाँव में एक बहु-धन्धी सहकारी-समिति खोली गई है। मंडल की सभी बहु-धन्धी समितियाँ मिलकर काम करेंगी और सरकार के सभी उन्नति विभाग इन समितियों के सहयोग से ही गाँवों का सुधार करेंगे।

इन समितियों का काम अन्न, कपड़ा, दूध, घी, आदि की पैदावार बढ़ाना है। खेती की उन्नति के लिये यह किसानों को अच्छे बीज, खाद, हल तथा अन्य आवश्यक औजार देती है। दूध की मात्रा बढ़ाने के लिये यह दुधारू गायों की सख्या बढ़ाने का प्रयत्न करती हैं तथा उनके चारे और खली का प्रबन्ध करती हैं। गायों की नस्ल सुधारने का काम भी यह करेंगी। गाँव में यह चर्खे का प्रचार करती हैं और किसानों से सूत कातने और कपड़ा बुनने पर जोर डालती हैं। किसानों को सस्ते चर्खे और अच्छी रुई भी बँटती हैं।

इनके कार्य का तरीका—सहकारी बीज गोदाम के आस-पास के गाँवों को चुन लिया गया है और प्रत्येक गाँव में एक बहु-धन्धी समिति खोली जा रही है। गाँव के हर परिवार का एक कर्ता इसका सदस्य होता है। जोतने के समय से लेकर फसल तैयार होने के समय तक यह समितियाँ सदस्यों को हर एक उत्पादन के लिये आवश्यक पदार्थ देने का प्रबन्ध करती हैं। नकद रुपया न देकर यह सामान देना आधिक ठीक समझती हैं। ज्यों २ फसल तैयार होती जावेगी किसान अपनी फसल समिति के सुपुर्द करते जावेंगे। समिति उनके अनाज को बेच कर और हिसाब-किताब ठीक कर उनको बाकी रुपया दे देगी।

बहु-धन्धी सहकारी समितियों की प्रगति—संयुक्त प्रान्त में इस योजना का पहला वर्ष सन् १९४७ से आरम्भ हुआ। प्रत्येक बीज भंडार के आस-पास के गाँवों में यह समितियाँ खोली गई हैं। यह समितियाँ उसी गाँव में बनाई गई हैं जिस गाँव के कम से कम ७०-८० प्रतिशत लोग सम्मिलित हो गये हैं। प्रान्त में १९४७ के अन्त तक ९०० मंडल बने और १०,००० बहु-धन्धी सहकारी समितियाँ खुल चुकी हैं। इन समितियों को गाँव वालों ने अच्छी तरह अपनाया है। सहकारी विभाग का लक्ष्य है कि प्रति वर्ष १०,००० बहु-धन्धी सहकारी समितियाँ खोली जायँ। इस कार्य में उनको अवश्य सफलता मिलेगी और किसानों का भी इससे लाभ होगा।

सारांश

किसानों की दशा सुधारने के लिये आजकल यह आवश्यक समझा जाता है कि बहु-धन्धी सहकारी समितियाँ खोली जायँ।

किसानों की समस्याये' एक दूसरे पर काफी निर्भर हैं। अतएव एक काम को सुलभाने के लिये अनेक काम करना आवश्यक पड़ जाता है।

इनसे बहुत से लाभ हैं। किसानों को अनेक समितियों का सदस्य नहीं बनना पड़ता, उनका धन बच जाता है, काम भी सुगमता से हो जाता है और पढ़े-लिखे मनुष्यों की कमी की समस्या भी हल हो जाती है।

संयुक्त प्रान्त की सरकार ने सन् १९४७ में एक ग्राम उन्नति योजना निकाली है जिसके अनुसार सरकार के विभिन्न विभाग मिलकर काम करेंगे। यह काम सहकारी-विभाग को सौंपा गया है।

इस योजना की आधार बहु-धन्धी सहकारी समितियाँ हैं। प्रत्येक सहकारी बीज भंडार के आसपास के १०-२० गाँवों को मिलाकर एक मंडल बना दिया गया है। सन् १९४७ तक इम तरह के ६०० मंडल थे। प्रत्येक गाँव में एक बहु-धन्धी सहकारी समिति खोली गई है। इस तरह की सन् १९४७ तक १०,००० समितियाँ खुल गई थीं। यह गाँवों में कपड़ा, अन्न, घी, दूध, आदि का उत्पादन बढ़ाने का काम अच्छे ढंग पर कर रही हैं।

प्रश्न

१. बहु-धन्धी सहकारी समितियों से आप क्या समझते हैं? इनकी देश को क्या आवश्यकता है?
२. बहु-धन्धी सहकारी समितियों के लाभ बताइये।
३. संयुक्त प्रान्त की सरकार ने बहु-धन्वी सहकारी समितियाँ

खोलने के लिये क्या योजना निकाली है ? उस योजना को बताइये ।

४. संयुक्त-प्रान्त में बहु-धन्वी सहकारी समितियों ने कितनी प्रगति की है ? उनका क्या काम तथा उद्देश्य है ? यह कहाँ तक सफल हो सकी हैं ?

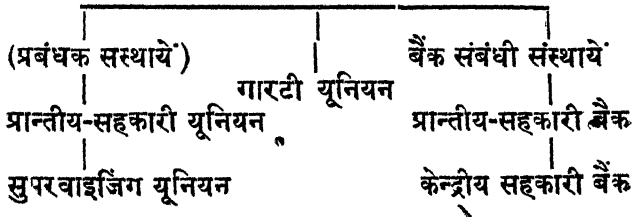
अध्याय अड़तीस

सहकारी केंद्रीय समितियाँ

हमारे देश में प्रारंभिक सहकारी संस्थायें तो हैं ही, इनके आतिरिक्त केन्द्रीय सहकारी समितियाँ भी हैं जो प्रारम्भिक संस्थाओं के कार्यों का निरीक्षण करती हैं तथा उनका धन से भी सहायता देती हैं। केन्द्रीय सहकारी समितियों का खुलना सन् १९१५ से आरम्भ हुआ है।

केन्द्रीय सहकारी संस्थायें दो प्रकार की हैं—(१) प्रबन्धक संस्थायें जिनका काम सहकारी समितियों के काम का निरीक्षण करना है तथा (२) बैंक-सम्बन्धी संस्थायें जो बैंक सम्बन्धी काम करती हैं। इन दोनों के बीच गारटी यूनियन आती हैं जो समितियों को रुपया उधार दिलाने में सहायता देती हैं परन्तु बैंक सम्बन्धी काम नहीं करतीं। प्रबन्धक समितियों में सुपरवाइजिंग यूनियन तथा प्रांतीय सहकारी यूनियन प्रसिद्ध हैं। बैंकों में प्रांतीय सहकारी बैंक तथा केन्द्रीय-सहकारी बैंक प्रसिद्ध हैं। इस तरह केन्द्रीय सहकारी संस्थाएँ निम्नलिखित हैं :—

केन्द्रीय-सहकारी संस्थायें



गारंटी यूनियन

(Guarantee Union)

इन यूनियनों का जन्म सबसे पहले बर्मा में हुआ। बर्मा में इन्होंने अच्छा काम किया। इनके सराहनीय कार्य को देखकर सबसे पहले यह मद्रास प्रांत में खोली गई। इसके बाद यह मध्य-प्रांत, पंजाब, बिहार, उड़ीसा, बङ्गाल तथा सयुक्त प्रांत में फैल गई।

इनका काम—गारंटी यूनियन प्रारंभिक सहकारी ऋण यूनियन तथा केन्द्रीय बैंक को आपस में मिलाने का काम करती है। यह स्वयं रुपया जमा करने का या उधार देने का काम नहीं करती परन्तु यह कुछ प्रारंभिक सहकारी ऋण समितियों को, जिनकी साख पर केन्द्रीय बैंक रुपया उधार देने को तैयार नहीं होती, अपनी जिम्मेदारी पर रुपया दिला देती है।

इनका प्रबन्ध—गारंटी यूनियन एक सहकारी संस्था है। परन्तु इनकी स्वयं कोई पूँजी नहीं होती। प्रारंभिक सहकारी-ऋण समितियाँ इसको सदस्य होती हैं। एक यूनियन के सदस्यों की संख्या लगभग ३० या ४० होती है। यह यूनियन केवल अपने सदस्यों की ही साख की जिम्मेदारी लेती हैं। गारंटी यूनियन की आम सभा में यह तय हो जाता है कि प्रत्येक प्रारंभिक सहकारी ऋण समिति को कितने रुपया तक उधार देने की गारंटी की जाय। उससे अधिक रुपये उधार देने की जिम्मेदारी वह नहीं लेती। गारंटी यूनियन के सदस्यों की जिम्मेदारी सीमित होती है।

वहाँ यह बता देना आवश्यक है कि हमारे देश में सहकारी ऋण समितियों की जिम्मेदारी अपरिमित है। अतएव सहकारी

ऋण-समिति के सभी सदस्य समिति के ऋण को चुकाने के लिये बाध्य हैं। इसलिये गारटी यूनियन को तभी रुपया देना पडता है जब ऋण-समिति की पूँजी तथा अन्य धन से और समिति के सदस्यों से उधार रुपया वसूल न हो सके। इस कारण गारटी यूनियन की वाम्तव में जिम्मेदारी कम रहती है।

भारतवर्ष में इनकी प्रगति—इन यूनियन ने हमारे देश में अच्छी उन्नति नहीं की है यद्यपि बर्मा में यह अब भी महत्वपूर्ण काम कर रही हैं। इसके कई कारण हैं। आरम्भ से ही इस संस्था से आवश्यकता से अधिक आशा की जाने लगी थी। इसका परिणाम यह निकला कि जब यह उतना महत्वपूर्ण कार्य न कर सकी तो इनकी बदनामी होना आरम्भ हो गया। इन यूनियन के पास धन की कमी थी। स्वयं इनके पास कोई पूँजी न थी। यह तो केवल प्रारम्भिक सहकारो-ऋण-समितियों पर निर्भर रहती हैं। जितनी वह (इस यूनियन के सदस्य के नाते) आज्ञा देतीं उनसे ही धन की यह गारटी कर सकती हैं। इस कारण यह अधिक रुपया उधार न दिला सकीं। प्रबन्ध की कमी और भ्रामीण जनता की कम पढ़ाई से उत्पन्न अज्ञानता के कारण इनकी प्रगति अधिक नहीं हो सकी है।

सुपरवाइजिंग यूनियन या सहकारी नियंत्रण समितियाँ

भारतवर्ष में सभी प्रान्तों में यह आवश्यक समझा गया है कि एक तालुका या दो-तीन तालुकों में केन्द्रित जितनी भी सहकारी समितियाँ हैं (चाहे वह किसी भी उद्देश्य के लिये हों) उनको मिलाकर एक सहकारी समिति बना ली जाय। ऐसी समिति को सुपरवाइजिंग यूनियन कहा जाता है। ऐसा हो जाने

पर ही अधिक धन इकट्ठा किया जा सकता है, लोगों को आवश्यकता के समय अधिक धन द्वारा सहायता की जा सकती है, खेती की उन्नति की जा सकती है और सभी सहकारी समितियों के कार्य तथा प्रबंध पर निगरानी रखी जा सकत है। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये नियंत्रण समितियाँ खोली गई हैं।

इनका प्रबन्ध—नियंत्रण यूनियन भी सहकारी समितियाँ हैं। एक तालुका में होने वाली सभी सहकारी समितियाँ इनको सदस्य होती हैं। सभी सदस्य समितियाँ निरीक्षण समिति को अपना एक-एक सदस्य भेजती हैं। सब सदस्य मिलकर आम कमिटी बनाते हैं और वह फिर एक प्रबन्धक कमिटी भी बना लेते हैं जा समिति का नित्य प्रतिदिन का काम देखती है।

नियंत्रण समिति के काम प्रामीण सहकारी समितियों के कामों पर नियंत्रण रखना, उनको उचित मार्ग बनाना, उन्हें उन्नति के पथ पर ले जाना, सब सदस्यों को आवश्यक पूँजी दिलाने का प्रबन्ध करना और इसलिये केन्द्रीय तथा प्रान्तीय सहकारी बैंकों से सम्बन्ध स्थापित करना, सदस्य समिति के प्रबन्धकों को उचित सहकारी शिक्षा देना, सदस्य समिति के माल को खरीदना तथा बेचना, अपने क्षेत्र में सहकारिता का प्रचार कर नई २ खुलने वाली समितियों का उचित ढंग से प्रबन्ध करना आदि हैं।

हमारे देश में यह समितियाँ अच्छा काम कर रही हैं। बम्बई प्रान्त में इनकी संख्या सबसे अधिक है यद्यपि यह पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त को छोड़ कर सभी प्रान्तों में पाई जाती हैं। पंजाब तथा संयुक्त प्रान्त में समितियों की देखभाल स्वयं प्रान्तीय सहकारी यूनियन करती हैं।

प्रान्तीय-सहकारी-यूनियन

भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तीय-सहकारी यूनियन पाई जाती है। जिन प्रान्तों में निरीक्षण समितियाँ हैं वहाँ पर निरीक्षण समितियाँ इनकी सदस्य बनती हैं तथा इसके बताये अनुसार अपने तालुका में सहकारी आन्दोलन का निरीक्षण करती हैं। परन्तु पंजाब तथा सयुक्त-प्रान्त में सभी प्रारम्भिक ग्रामीण समितियाँ इनकी सदस्य होती हैं। प्रान्त में सहकारी आन्दोलन चलाने तथा उसकी देख-भाल करने की यही जिम्मेदार होती हैं।

इनके कार्य—इनका मुख्य कार्य प्रान्त में सहकारी आन्दोलन को निरंतर उन्नतिशील बनाना है। प्रान्त के सहकारी आन्दोलन का यह नेतृत्व करती हैं। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह सालाना जलसा करती हैं, पत्र-पत्रिकाये निकालती हैं, प्रचार केन्द्र खोलती हैं, सहकारी शिक्षा के लिये स्कूलों का प्रबन्ध करती हैं, प्रान्त की सहकारी समितियों को संगठित करती हैं, उनका निरीक्षण करती हैं तथा उनकी सहायता करती हैं। इस तरह प्रान्त में सहकारी आन्दोलन चलाने तथा उसे बढ़ाने में इनका महत्वपूर्ण स्थान है।

केन्द्रीय-सहकारी-बैंकिंग संस्थायें

आपको बताया जा चुका है कि हमारे देश में सहकारी आन्दोलन ऋण से ही अधिक सम्बन्ध रखता है। यही कारण है कि हमारे देश में सहकारी ऋण-समितियों का संगठन अच्छे पैमाने पर हो गया है। केन्द्रीय ऋण-समितियों में निम्नलिखित संस्थाये महत्वपूर्ण हैं :—

केन्द्रीय-सहकारी बैंक

आप प्रारम्भिक सहकारी ऋण समितियों के बारे में तो

जानते ही हैं। परन्तु यह समितियाँ अधिक रुपया इकट्ठा नहीं कर सकती। इसलिये एक ऐसी समिति की आवश्यकता प्रतीत हुई जिसकी साख अधिक हो तथा जो अधिक रुपया जमा कर सदस्यों को उधार दे सके। इसी कारण केन्द्रीय बैंकों का निर्माण हुआ।

इनका क्षेत्र—केन्द्रीय बैंकों का क्षेत्र भिन्न रहता है। बंगाल, बिहार तथा पंजाब में हर तालुका या तहसील में एक बैंक पाई जाती है, परन्तु बम्बई, संयुक्त प्रान्त, मद्रास या मध्य प्रान्त में एक जिले में या कई तहसीलों में मिलाकर एक बैंक पाई जाती है।

इनकी पूँजी—यह बैंके बड़े शहरों के धनवान तथा पूँजीपतियों का रुपया जमा करती हैं, सदस्य ऋण समितियों की पूँजी जमा करती हैं, प्रान्तीय सहकारी बैंकों से रुपया उधार लेती हैं और आवश्यकता पड़ने पर सदस्य बैंकों को रुपया उधार देती हैं। इनकी पूँजी के साधन तीन हैं। (१) शेयर पूँजी, (२) जमा तथा उधार रुपया, तथा (३) रक्षित कोष। इस समय हमारे देश में ६११ केन्द्रीय बैंक तथा केन्द्रीय यूनियन हैं और उनकी कुल पूँजी २९ करोड़ ३२ लाख रुपया है। वह निम्नलिखित साधनों से प्राप्त हुई है :—

		करोड़ रुपया
(१) शेयर पूँजी	...	२.६७
(२) उधार तथा जमा रुपया		
व्यक्तियों का	१३.९२
ऋण समितियों का	३.२७
प्रान्तीय बैंकों का	४.५१
सरकार का	०.५८
(३) रक्षित कोष		४.३७
कुल		<u>२९.३२</u>

केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा केन्द्रीय सहकारी यूनियन में थोड़ा अन्तर है। सहकारी बैंक की तो केवल प्रारम्भिक सहकारी ऋण समितियाँ ही सदस्य हो सकती हैं लेकिन यूनियन के सदस्य बैंक तथा व्यक्ति दोनों हो सकते हैं। इनके अतिरिक्त इन दोनों के संगठन, प्रबन्ध तथा काम में कुछ भी अंतर नहीं है।

प्रबन्ध—केन्द्रीय बैंक या केन्द्रीय यूनियन के सभी हिस्सेदारों की एक साधारण सभा होती है। यह सभा एक प्रबन्धक कमिटी को नियुक्त करती है। इस प्रबन्धक कमिटी के सदस्य डायरेक्टर्स तथा प्रबन्धक कमिटी बोर्ड-ऑफ डायरेक्टर्स कहलाती है। प्रत्येक हिस्सेदार केवल एक ही वोट दे सकता है चाहे उसके कितने ही हिस्से क्यों न हों। बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स में कई डायरेक्टर होते हैं परन्तु उनमें सबसे महत्वपूर्ण मैनेजिंग डायरेक्टर होता है। वही दिन-प्रति-दिन के काम की देख-भाल करते हैं तथा इन्हीं की सलाह से सब काम होते हैं। बैंक के डायरेक्टरों को कुछ भी वेतन नहीं मिलता। प्रायः जिले का अफसर जिलाधीश बैंक का चेयरमैन होता है।

रुपया उधार देने का तरीका—यह बैंक गैर-सदस्यों से रुपया उधार ले लेती हैं तथा उनका रुपया जमा कर लेती हैं। परन्तु उनको रुपया उधार नहीं देती। रुपया केवल सहकारी समितियों को ही उधार देती हैं। प्रायः केन्द्रीय बैंक के डायरेक्टर यह निश्चित कर देते हैं कि प्रत्येक सहकारी समिति को अधिक से अधिक कितना रुपया उधार दिया जाय। उसी हिसाब से उनको रुपया उधार मिलता है। यह रुपया थोड़े समय के लिये ही उधार देती हैं।

केन्द्रीय बैंक अथवा यूनियन के सदस्यों की जिम्मेदारी सीमित होती है। बैंक के लाभ का २५ प्रतिशत भाग इस कोष

में जमा कर दिया जाता है और बाकी हिस्सेदारों को प्रतिवृष बाँट दिया जाता है।

प्रान्तीय-सहकारी-बैंक तथा यूनियन

एक जिले में एक केन्द्रीय सहकारी बैंक काम करती है। इसके ऊपर प्रान्तीय-सहकारी-बैंक होती है। प्रान्त भर में केवल एक प्रान्तीय बैंक होती है और उस प्रान्त की सभी केन्द्रीय बैंक उस प्रान्तीय बैंक की सदस्य होती है। हमारे देश में इन बैंकों की स्थापना सन् १९१५ के बाद हुई।

इस समय हमारे देश के प्रत्येक प्रान्त में एक प्रान्तीय सहकारी बैंक है। सयुक्त प्रान्त में यह सबसे बाद में (सन् १९४५) में खुली। इनके अतिरिक्त यह मैसूर और हैदराबाद में भी पाई जाती हैं। यह बैंक भी दो प्रकार के होते हैं— प्रान्तीय-सहकारी-यूनियन जिनके हिस्सेदार केन्द्रीय बैंक तथा व्यक्ति दोनों ही होते हैं तथा बैंक जिनके हिस्सेदार केवल केन्द्रीय बैंक ही होती हैं। पंजाब और बंगाल में प्रान्तीय-सहकारी-बैंक पाई जाती हैं। बाकी प्रान्तों में यूनियन हैं। इनके हिस्सेदारों की जिम्मेदारी सीमित होती है।

प्रान्तीय सहकारी बैंक काफी अधिक पूँजी इकट्ठा कर सकती है। इनकी पूँजी के साधन कई हैं जैसे (१) शेरर पूँजी (२) जमा तथा उपार रुपया जो केन्द्रीय बैंक, यूनियन, व्यक्तियों या सरकार से लिया गया हो, (३) रक्षित कोष, तथा (४) रिजर्व बैंक से उधार। सन् १९४०-४१ में हमारे देश में केवल १० प्रान्तीय-सहकारी बैंक था। उस समय उनकी पूँजी इस प्रकार थी :—

खालकर प्रान्तीय सहकारी बैंकों का लाभ कम करने की कोई आवश्यकता नहीं। इसी कारण ऐसी बैंक अभी तक नहीं खुली है।

सारांश

हमारे देश में प्रारम्भिक बैंकों के साथ २ केन्द्रीय सहकारी बैंक भी हैं। केन्द्रीय सहकारी बैंकों के अतिरिक्त केन्द्रीय सहकारी समितियाँ भी हैं जिनका कार्य निरीक्षण का है।

केन्द्रीय सहकारी संस्थाओं में गारंटी यूनियन भी हैं। इनका कार्य सहकारी बैंकों के उधार दिये जाने वाले रुपये की गारंटी करना है। प्रारम्भिक सहकारी ऋण समितियाँ इनकी सदस्य होती हैं और उन्हींको उधार दिये गये रुपये की यह जिम्मेदारी लेती हैं। इनकी स्वयं कोई पूँजी नहीं होती और यह बैंक-सम्बन्धी कोई भी काम नहीं करतीं।

सुपरवाइजिंग यूनियन का काम निरीक्षण का है। एक तालुका में स्थापित सभी सहकारी समितियाँ इसकी सदस्य होती हैं। उन्हींके कामों की यह निगरानी रखती हैं, उनको ठीक तरह से काम करने का उचित मार्ग दिखाती हैं, केन्द्रीय सहकारी बैंकों से सम्बन्ध स्थापित कर उधार रुपया देने का प्रबन्ध कराती हैं तथा सहकारिता सम्बन्धी शिक्षा देने का भी प्रबन्ध कराती हैं।

इनके ऊपर प्रान्तीय-सहकारी-यूनियन भी होती हैं। सभी सुपरवाइजिंग यूनियन इसकी सदस्य होती हैं। परन्तु क्योंकि युक्त प्रान्त तथा पंजाब में सुपरवाइजिंग यूनियन नहीं है इसलिये वहाँ प्रारम्भिक-सहकारी-ऋण समितियाँ ही इसकी हिस्सेदार होती हैं। इनका कार्य प्रान्त में सहकारिता आन्दोलन चलाना तथा उसकी देख-भाल करना है।

सहकारी बैंक सम्बन्धी केन्द्रीय बैंक दो हैं—(१) केन्द्रीय बैंक तथा (२) प्रान्तीय सहकारी बैंक। केन्द्रीय बैंक एक तालुका या दो

एक तहसील में या एक जिले में एक होती हैं। प्रत्येक प्रांशिके-सहकारी-श्रमण समिति इनकी सदस्य होती है तथा केन्द्रीय बैंकों को रुपया उधार देकर उनकी सहायता करती हैं। यह केवल उत्पादक कार्य के लिये ही रुपया उधार देती हैं तथा थोड़े समय के लिये भी। इनकी पूँजी हिस्से के रुपये; जनता, सहकारी समिति तथा प्रान्तीय बैंकों द्वारा जमा किये रुपयों से; सरकार द्वारा उधार मिले रुपयों से तथा रक्षित कोष से पूरी होती है। इनका प्रबन्ध जनरल कमिटी द्वारा नियुक्त बोर्ड-आफ-डाइरेक्टर करते हैं। यह बैंक गैर-सदस्यों से रुपया उधार ले सकती हैं परन्तु उनको रुपया उधार नहीं दे सकती।

केन्द्रीय सहकारी बैंकों के ऊपर प्रान्तीय बैंक होती हैं। प्रान्तीय सहकारी बैंक एक प्रान्त में एक होती है तथा प्रान्त भर की केन्द्रीय बैंक इसकी हिस्सेदार होती हैं। इस समय भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में एक सहकारी बैंक है। इनका काम केन्द्रीय बैंकों को रुपया उधार देना है। शेयर पूँजी से, जमा किये हुए रुपयों से तथा उधार लिये गये रुपयों से इकट्ठी की हुई रकम को ही यह उधार देते हैं। हमारे देश में यह बैंक बड़ा सराहनीय काम कर रही हैं।

अभी तक हमारे देश में कोई अखिल-भारतीय-सहकारी बैंक नहीं है क्योंकि इसकी आवश्यकता नहीं समझी गई है।

प्रश्न

१. हमारे देश में किम २ तरह की केन्द्रीय सहकारी समितियाँ हैं ? उनका खुलासा कीजिये।
२. गारंटी यूनियन हमारे देश में क्या काम करती है ? क्या यह सफल हो सकी है ?
३. गारंटी यूनियन तथा सुपरवाइजिंग यूनियन में क्या भेद है ? इनके कार्यों का वर्णन कीजिये। •

४. सुपेस्वाइजिंग यूनियन किस प्रकार खोले जाते हैं ? इनका प्रबन्ध किस प्रकार होता है ?
५. प्रान्तीय सहकारी समितियाँ क्या काम करती हैं ? इनका महत्त्व बताइये । इनका प्रबन्ध किस प्रकार होता है ?
६. केन्द्रीय सहकारी समितियों के प्रबन्ध तथा कार्य-प्रणाली का वर्णन कीजिये । इनके क्या २ काम हैं ?
७. केन्द्रीय सहकारी बैंक तथा केन्द्रीय सहकारी यूनियन में क्या अंतर है ? क्या इनके कार्यों में भी कुछ अंतर है ?
८. केन्द्रीय बैंकों का सहकारी आन्दोलन में क्या स्थान है ? यदि कोई सहकारी केन्द्रीय बैंक आपने देखी है तो उसका वर्णन कीजिये ।
९. प्रान्तीय-सहकारी बैंक के कार्य तथा प्रबन्ध के बारे में बताइये । इनके काम का क्षेत्र क्या है ?
१०. प्रान्तीय सहकारी बैंक कहाँ २ से पूँजी इकट्ठा करती है । इनका सहकारी आन्दोलन में क्या स्थान है ?
११. क्या हमारे देश में कोई अखिल-भारतीय-सहकारी बैंक की आवश्यकता है ? इसको अभी तक क्यों नहीं खोला गया है ?

हाई-स्कूल-बोर्ड के प्रश्न

१. केन्द्रीय सहकारी बैंक क्या है ? इसके विधान तथा कार्य के बारे में कुछ बताइये । (१९४४)
२. केन्द्रीय सहकारी बैंक के प्रबन्ध तथा कार्य का वर्णन कीजिये । (१९४६)
३. निम्नलिखित में किन्हीं तीन पर टिप्पणी कीजिये :—
सहकारी भूमि-सहायक बैंक; प्रान्तीय सहकारी यूनियन; गारंटी यूनियन, प्रान्तीय सहकारी बैंक; रहन-सहन सुधार समिति, क्रय-विक्रय समितियाँ । (१९४५)